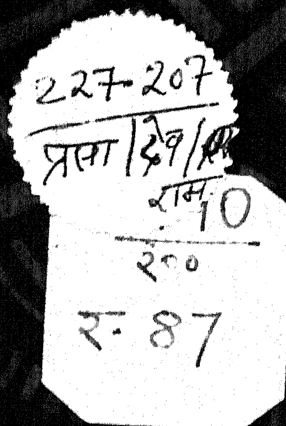
रामचरितमानस की काव्यभाषा



डॉ. रामदेव प्रसाद



विभू प्रकाशन

सी. ११, श्याम एंक्लेव, ज्ञानी बॉर्डर,
साहिबाबाद-२०१००५

रामचरितमानस की काव्यभाषा

[भागलपुर विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉ० रामदेव प्रसाद

एम० ए० (लब्धस्वर्णपदक) पी-एच० डी०

हिन्दी विभाग

पटना विश्वविद्यालय, पटना

प्रकाशक : वि.भू. प्रकाशन साहिबाबाद-२०१००५
प्रथम संस्करण : सितंबर १९७८
मुद्रक : ए० बी० प्रिंटर्स नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२,

मूल्य : पचास रुपये (५०.००)

सन्त श्री पोषण दास जी

जिनके ऋण से उऋण कभी न हो सकता हूँ,
इन महान गुरुवर को है सविनय समर्पित

आभार

बचपन से ही मुझे रामचरितमानस के सुरम्य वातावरण में पलने का अवसर मिला। मानस के प्रति आस्था और श्रद्धा दिन-दिन बढ़ती गई। एम० ए० कक्षा के 'विशेषपक्ष' में तुलसीदास को रखा। तभी से मैं सोच रहा था कि तुलसी पर ही कुछ कार्य करूंगा। 'राम सदा सेवक रुचि राखी' पूज्य गुरुवर डॉ० सियाराम तिवारी का सफल निर्देशन मुझे मिला, यह मेरे लिये परम सौभाग्य की बात है।

आदर्श सफल शिक्षक, पूज्यवर डॉ० शिवनन्दन प्रसाद (रीडर, स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग, भागलपुर विश्वविद्यालय) की कृपा बराबर मेरी जिज्ञासित गुत्थियों को सुलझाकर पथ-प्रदर्शन करती रही। उनके प्रति नतमस्तक हूं। छंद शास्त्र के श्रेष्ठ अधिकारी विद्वान् डॉ० गौरीशंकर मिश्र (रीडर, स्नातकोत्तर हिंदी-विभाग, भागलपुर विश्वविद्यालय) की शरण में जाकर तुलसी के छंदों के संबंध में उचित ज्ञान-दृष्टि पायी एवं डॉ० माहेश्वरी सिंह 'महेश' (भूतपूर्व रीडर, स्नातकोत्तर हिंदी-विभाग, भागलपुर विश्वविद्यालय) के सुझावों और आदेशों से लाभ उठाया। एतदर्थ, इन दोनों गुरुओं को हार्दिक अभिनन्दन है। आदरणीय अग्रज प्रो० किरीटभूषण मिश्र (व्याख्याता अंग्रेजी विभाग, पी० के० राय मेमोरियल कॉलेज, धनवाद) का आभारी हूं। अंग्रेजी साहित्य के तथ्य-ग्रहण में अड़चन आई, तो उनसे भी लाभान्वित हुआ। दामोदर (छात्र, अंतिम वर्ष, संस्कृत विभाग, भागलपुर, विश्वविद्यालय) के स्नेह ने प्रोत्साहन का काम किया, इन्हें साधुवाद है। विभिन्न अर्वाचीन तथा प्राचीन, पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों, आचार्यों एवं विद्वानों का आभारी हूं, जिनके ग्रंथों से मैंने विशेष लाभ उठाया।

परम पूज्यवर गुरुदेव संत श्री पोषणदास जी के समक्ष मैं अपनी विनय-भावना किस प्रकार व्यक्त करूं। मेरे पास शब्द नहीं हैं। वे अपने पद्म कोमल करों से खींच कर मुझे रामचरितमानस—सरोवर तक बरबस ले आये। उनके विमल त्याग अहैतुकी कृपा एवं आदर्श गुरुत्व के कारण ही यह शोधकार्य संपन्न हो सका। वे मेरे जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि हैं। जो कुछ सुन्दर भाव इस प्रबंध में हैं, वे उनके हैं, जो त्रुटियां हैं, वे मेरी हैं।

रामनवमी —**रामदेव प्रसाद**

१९७८

विषय-सूची

भूमिका

(क) पूर्ववर्ती कार्य और उसकी सीमा

रामचरितमानस की काव्य-भाषा का सांगोपांग अध्ययन अबतक नहीं हुआ था। आलोचना-ग्रंथों में विद्वान् आचार्यों ने इस तथ्य की ओर अत्यंत संक्षेप में संकेत भर किया है।

एडविन ग्रीव्स के 'नोट्स ऑन दि ग्रामर ऑव रामायण ऑव तुलसीदास' में मानस की भाषा के कुछ व्याकरणिक रूपों का विवेचन है। विश्वेश्वरदत्त शर्मा के 'मानस-प्रबोध' में वाक्य और शब्द-प्रयोग पर कुछ लिखा गया है। 'रामचरित मानस की भूमिका' में रामदास गौड़ ने प्रसंगवश कुछ ध्वनियों तथा व्याकरणिक रूपों पर लिखा है। 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका में आचार्य शुक्ल ने जायसी और तुलसी की भाषा का तुलनात्मक रूप प्रस्तुत करते हुए दोनों महाकवियों के भाषाधिकार तथा भाषा-दक्षता का विवेचन किया है। इसमें व्याकरणिक रूपों के साथ-साथ काव्यभाषा के कुछ तथ्यों का स्पष्ट संकेत मिलता है। इससे 'मानस' की काव्यभाषा पर अध्येताओं का ध्यान गया। इनकी सरल, वैज्ञानिक पद्धति ने दोनों महाकवियों की भाषा-सम्बन्धी धारणा को स्पष्ट कर दिया—यह इस ग्रंथ की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। रामनरेश त्रिपाठी की ख्यातिप्राप्त आलोचना कृति है–'तुलसीदास और उनका काव्य'। इसके दो भाग हैं। पहले में जीवन का और दूसरे में काव्य का विवेचन है। काव्य-विवेचन के क्रम में उन्होंने कवि के शब्द-भांडार और छन्द का विवेचन किया है तथा कवि के संगीत, गणित, ज्योतिष आदि के ज्ञान का भाषा पर पड़ने वाले प्रभाव पर भी प्रकाश डाला है। साथ ही कुछ मुहावरे, लोकोक्तियों, सूक्तियों का भी संग्रह है। 'तुलसीदास' में डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने 'भाषा-शैली' शीर्षक में भाषा-अध्ययन के दो संभावित रूपों का संकेत करते हुए उनकी कृतियों के काल-क्रम के अनुसार भाषा-शैली का संक्षिप्त विवेचन किया है, भाषा का यह अध्ययन कवि के व्यक्तित्व के क्रमिक विकास का ही रूप प्रस्तुत करता है, उनकी काव्यभाषा के विविध अंगों का नहीं।

'विश्व साहित्य में रामचरितमानस' में राजबहादुर लमगोड़ा ने मानस की भाषा के कलापक्ष का सुन्दर उद्घाटन किया है। उनका ध्यान तुलनात्मक पक्ष पर अधिक है। अपने प्रतिपाद्य की पुष्टि के लिए रस अलंकार आदि का वर्णन किया है। संक्षिप्त रहते हुए भी इनका संकेत महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। 'तुलसी के चार दल' में रामलला नहछू, बरवै रामायण, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल—इन्हीं चार कृतियों का विवेचन सद्गुरुशरण अवस्थी ने किया है। 'मानस व्याकरण' का तो

शीर्षक ही द्योतित करता है कि इसमें पं० विजयानन्द त्रिपाठी ने व्याकरणिक रूपों का वर्णन किया है। व्याकरण भी भाषा का एक प्रधान मापदंड है। लेकिन तुलसी की भाषा-सम्बन्धी धारणा को भी त्रिपाठी जी ने गलत रूप में समझा। वे समझते हैं कि अथ से इति तक 'मानस' प्राकृत भाषा में है।[1] पर तथ्य इससे बहुत दूर है। 'ए ग्रामर ऑव हिन्दी लैंग्वेज' में केलॉग ने कई हिन्दी बोलियों के व्याकरणिक अध्ययन के क्रम में मानस की भाषा का अध्ययन भी ओल्डपूर्वी और ओल्ड बैसवाड़ी के रूप में किया है, जो भाषा वैज्ञानिक अध्ययन का ही एक सोपान है। डॉ० ए० जी० ग्रियर्सन ने 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इंडिया' के खंड ६, अध्याय १ में कवि की भाषा-दक्षता का मात्र संकेत किया है। 'एवोल्यूशन ऑव अवधी' में डॉ० बाबूराम सक्सेना ने अवधी के विकास-क्रम का अध्ययन किया है और अवधी रचनाओं में प्रधानतः 'मानस' की अवधी का भी रूप दिया गया है। यह उनका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'गोस्वामी तुलसीदास' नामक ग्रंथ में कवि के काव्यांगों का विश्लेषण किया है। इसी अध्ययन के सिलसिले में तुलसी की काव्य-पद्धति, अलंकार-विधान, उक्ति-वैचित्र्य, भाषा पर अधिकार आदि की सोदाहरण आलोचना की गई है, जिससे तुलसी की भाषा पर विस्तृत प्रकाश पड़ता है। उनका यह विश्लेषण सर्वांगपूर्ण न होते हुए भी कम महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता। तुलसी के ये प्रधान आलोचक हैं, जिन्होंने गहराई के साथ तुलसी को परखा है।

'गोसाईं तुलसीदास' में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने तुलसी के अन्य व्यक्तित्वों की विवेचना के साथ प्रधानतया उनको 'कवि' माना है। उन्होंने बीच-बीच में उनके साहित्यिक मापदंडों, उनकी भाषा तथा शब्द-योजना पर गूढ़ विवेचन किया है।

'तुलसीदास और उनका युग' नामक ग्रंथ में डॉ० राजपति दीक्षित ने तुलसी से संबद्ध सामाजिक मत, धर्म-भावना, सांप्रदायिकता, परंपरागतभक्ति, उपासना-पद्धति, संदर्भण-कला, तथा साहित्यिक उपहार का अध्ययन किया है। 'साहित्यिक उपहार' शीर्षक के अन्तर्गत तुलसी की भाषा, रस-नियोजना, उपमा-विधान, शब्द-शक्ति, प्रकृति-चित्रण तथा छंद-विधान का विस्तृत वर्णन उपस्थित किया गया है। उनका दृष्टिकोण तुलसी के चतुर्दिक अध्ययन पर आधारित है; संपूर्णतः भाषा पर नहीं। परन्तु अपाने उचित संदर्भ में तुलसी की भाषा का जो विवेचन किया है, वह मूल्यवान है।

चन्द्रबली पांडेय की आलोचना-कृति है 'तुलसीदास'। इसमें जीवन-वृत्त, रचना, मानस की विशिष्टता, चरित्र-चित्रण, भक्ति-निरूपण, मंगल-विधान, काव्य-दृष्टि, भाव-व्यंजना, काव्य-कौशल, वर्ण्यविचार आदि पर विश्लेषण किया गया है। भाषा की दृष्टि से अनेक रसों, अलंकारों का वर्णन किया यगा है।

तुलसी की भाषा के अध्ययन के क्षेत्र में डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव का शोध-प्रबन्ध है—'तुलसीदास की भाषा'। यह तुलसी की भाषा का प्रधानतः भाषा-वैज्ञानिक

और व्याकरणिक अध्ययन है। इस क्षेत्र में यह कृति अभीतक उत्कृष्ट समझी जाती है। इसके चतुर्थ अध्याय में कवि की भाषा के कलात्मक सौंदर्य की अभिव्यक्ति की ओर लेखक का झुकाव रहा है। इसमें उन्होंने शब्द-शक्ति, ध्वनि, गुण, रीति, अलंकार, दोष आदि का संक्षिप्ततः विवेचन किया है। परन्तु 'मानस' काव्यभाषा का अध्ययन उनका उद्देश्य नहीं था, इसलिए यह पक्ष उपेक्षित रहा।

डॉ० रामदत्त भारद्वाज के शोध-प्रबंध 'गोस्वामी तुलसीदास' में प्रासंगिक रूप से कवि के काव्य-रूप, भाषा, शब्द-चयन, रचना-शैली, दोष आदि पर गवेषणाकी गई है। अपने सीमित क्षेत्र के कारण लेखक को कवि की काव्यभाषा के अन्यान्य अंगों पर विवेचना करने का अवसर नहीं मिला।

इस दिशा में कुछ हद तक श्लाघ्य प्रयास डॉ० राजकुमार पांडेय का कहा जा सकता है, जिनका शोध-प्रबंध है 'रामचरितमानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन'। 'मानस' के अन्य पक्षों के विश्लेषण के साथ-साथ इनकी भाषा का भी सम्यक् निरूपण किया गया है। इसमें लेखक ने विविध तथ्यों के अनुरूप भाषा का भी संक्षिप्त अध्ययन किया है। भाषा के काव्यशास्त्रीय रूपों का आकलन इसमें हुआ है, जैसे शब्द-शक्ति, गुण, रीति अलंकार, छंद आदि। इन तत्वों का विवेचन वस्तुतः मानस के काव्यशास्त्रीय अंगों को प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि इनका अध्ययन भाषावैज्ञानिक और व्याकरणिक नहीं है, काव्यशास्त्रीय अध्ययन है, तथापि संपूर्ण अंश में काव्य-भाषा का अध्ययन नहीं है।

डॉ० उदयभानुसिंह की 'तुलसी काव्य-मीमांसा' भी इसी प्रकार की कृति है। इस ग्रन्थ के नवम अध्याय में शब्दार्थ-संतुलन, पर्यायवाची शब्द, शब्द-निर्माण, शब्द-शक्तियां, ध्वनि-वक्रोक्ति, गुण अलंकार एवं भाषा में व्याप्त मुहावरे, कहावत, व्याकरण, प्रांजलता आदि का वर्णन किया गया है। भाषा की चित्रात्मक, छंद और शैली पर भी लिखा गया है। विद्वान् आलोचक ने सधे चिंतन से तुलसी के कला-पक्ष को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। 'मानस' की भाषा की साहित्यिकता के सम्बन्ध में ग्राउज ने भी केवल संकेत किया है।[1] डॉ० ग्रियर्सन भी मानते हैं कि तुलसीदास विविध शैलियों के विन्यास में निष्णात थे।[2] एडविन ग्रीव्ज के अनुसार तुलसी का भाषा पर उसी प्रकार अधिकार था जिस प्रकार कुंभकार को अपने हाथ की मिट्टी पर।[3] पाश्चात्यालोचकों में ए० पी० बारान्निकोव का स्थान उच्च है। 'मानस की रूसी भूमिका' में तुलसी के विविध प्रसंगों पर विवेचन किया गया गया है। कवि-व्यक्तित्व को भी काफी परखा है। 'रामायण की प्रबंधात्मकता' और 'तुलसीदास की कविता का विशिष्ट रूप' में कला-पक्ष का सुन्दर नियोजन दिखाई पड़ता है। छन्दों पर भी विचार किया है। इन्होंने 'मानस' की भाषा के विवेचन में भाषा के तीन रूप माने हैं— संस्कृत, अवधी और ब्रजी। उनके अनुसार तीनों का विशिष्ट प्रयोजन है। इतना होने पर उनका उद्देश्य था 'मानस' की वास्तविकता से पाश्चात्य पाठकों को अवगत कराना। अपनी उद्देश्य-पूर्ति का उनका कार्य सफल कहा जा सकता है, पर मानस की काव्यभाषा का सर्वांगपूर्ण विवेचन इनमें नहीं है।

(ख) प्रस्तुत कार्य का औचित्य

इस तरह प्राच्य और पाश्चात्य आचार्यों, विद्वानों, आलोचकों ने तुलसी की भाषा पर कुछ कार्य किए, संकेत दिए ; पर उनमें भाषा वैज्ञानिक और वैयाकरणिक दृष्टि ही प्रधान रही है। आलोचना-ग्रन्थों में काव्यशास्त्रीय दृष्टि से विचार हुआ भी है तो आलोचक शब्द-शक्ति, गुण, रीति आदि से आगे नहीं बढ़े हैं। सर्जनात्मक दृष्टि से तुलसीदास की भाषा का अध्ययन नहीं हुआ। सर्जन के अनेक पक्षों को ध्यान में रखते हुए यहां रामचरित मानस की काव्यभाषा के अध्ययन का प्रयास है और यही इस कार्य का औचित्य है। प्रबंध के शीर्षक में 'काव्यभाषा' शब्द का समावेश उसे भाषा-वैज्ञानिक और वैयाकरणिक अध्ययन के भ्रम से बचाने के लिए है।

भाषा ही भावाभिव्यक्ति का माध्यम है। तुलसीदास के जीवनकाल में ब्रजी ही काव्य की भाषा थी; अवधी तो जन-सामान्य की बोली थी जिसका प्रयोग जायसी आदि कवियों ने किया। इस बोली को साहित्यिक भाषा बनाने का श्रेय तुलसी को है। इसके लिए उनको संघर्ष करना पड़ा। एक ओर तो पण्डितवर्ग जो जन-भाषा की कविता को हेय दृष्टि से केवल देखते ही नहीं थे, बल्कि अपनी शक्ति भर घोर विरोध करते थे। दूसरी ओर एक बोली को साहित्यिक परिष्कृत भाषा का रूप देने का आग्रह था उनमें। संस्कृत के पंडितों की हेय दृष्टि के अनेक संकेत मिलते हैं—

१. भाषाभनिति भोरि मति मोरी।
हंसिबे जोग हंसे नहीं खोरी ॥ १।६।४

२. भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी।
रामकथा जग मंगलकरनी ॥ १।१०।१०

३. गिरा ग्राम्य सिय राम जस,
गावहिं सुनहिं सुजान। ११० (ख)

४. राम सुकीरति भनिति भदेसा,
असमंजस अस मोही अंदेसा ॥ १।१४।१०

५. तौ फुर होउ जो कहेउँ सब
भाषा भनिति प्रभाउ ॥ १।१५

'इसी भाषा-भनिति' को अनेक कलात्मक युक्तियों से परिष्कृत भाषा का सांचा प्रदान किया। तुलसी ने तो जनभाषा को सहर्ष अपनाया, क्योंकि अधिकाधिक लोगों तक राम का चरित्र पहुंचाना था। लोकप्रियता के लालच से केशव ने जनभाषा में लिखकर ग्लानि का अनुभव किया—

भाषा बोलिन जानही, जिनके कुल को दास।
भाषा-कबि भो मंदमति, तिहि कुल केसवदास ॥[1]

तुलसी ने भाषा की सरलता और सर्वग्राह्यता पर अधिक बल दिया—

१. कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई ॥१।१४।६

२. सरल कबित कीरति बिमल,
सोइ आदरहिं सुजान ।१।१४ क

३. सरल बरन भाषा सरल,
सरल अर्थ मय मानि । वै० सं० ८

तुलसी महाकवि थे, पर भक्त-महाकवि । अपने 'राम' के चरित्र को हृदय-हृदय तक
पहुंचानने के लिए उन्होंने अथक काव्य-परिश्रम किया । उन्होंने अपनी सभी कृतियों के
माध्यम से प्रधान कार्य यही किया है । इस महत् कार्य के साथ-साथ भाषा का कला-
त्मक विधान भी सम्पन्न होता गया । इन पर तुलसी को ध्यान नहीं देना पड़ा, बल्कि
इनकी विशद प्रतिभा के तनिक स्पर्श से ही ये गुण स्वयं आ गए । उनका प्रधान दृष्टि-
कोण अनुभूति (वस्तु) पर था—

भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी ।१ १०।१०

लेकिन बिना अभिव्यक्ति के अनुभूति की सार्थकता कहां ? इसलिए अभिव्यक्ति-पक्ष
पर भी उनका ध्यान गया और उन्होंने स्वीकार किया—

तुम्हारी कृपा सुलभ सोउ मोरे ।
सिअनि सुहावनि टाट पटोरे ॥१।१४।११

(ग) विषय का सैद्धांतिक उपस्थान

काव्यभाषा अन्ततः एक भाषा है । पर उसे केवल भाषा कहना अलम् नहीं है ।
काव्यभाषा एक संरचित भाषा है । जिस प्रकार घट मात्र मृत्तिका नहीं है, मृत्तिका
को एक विशेष प्रक्रिया के द्वारा दिया हुआ एक विशेष रूप है, उसी प्रकार सामान्य
भाषा को दिया हुआ एक विशेष रूप ही काव्यभाषा है । काव्यभाषा सामान्य भाषा का
विशिष्टीकरण है । जहां भी क्रिया अथवा प्रक्रिया की बात होती है वहां कृत वस्तु के
अनेक पक्ष हो जाते हैं । अतः काव्य और काव्यभाषा के भी अनेक पक्ष हैं ।

काव्यभाषा का पहला पक्ष है काव्य के रचयिता का व्यक्तित्व । काव्यभाषा
कवि की अर्जित सम्पत्ति है, उत्तराधिकार में प्राप्त वस्तु नहीं । कवि भाव, साहित्यिक
धारणाएं, लय, साहित्य-रूप आदि सब कुछ परम्परा से प्राप्त कर लेता है; केवल
अपनी भाषा का उसे स्वयं निर्माण करना पड़ता है ।[1] यही कारण है कि काव्यभाषा
में कवि की प्रकृति और उसका व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित रहता है । इस तरह काव्य-
भाषा कवि का परिचय है, उसके बड़प्पन की पहचान है ।

जिस प्रकार काव्यभाषा कवि से सम्बद्ध होती है उसी प्रकार वह सहृदय से
भी संयुक्त रहती है । भाषा, काव्य का वह उपादान है जिस पर सबका अधिकार होता
है । सामान्य भाषा एक सार्वजनिक वस्तु है । सामान्य भाषा से काव्य-रचना करना
सार्वजनिक वस्तु से वैयक्तिक कार्य लेने के समान है । अन्यान्य कलाओं से काव्यभाषा
की यही भिन्नता भी है । अन्यान्य कलाओं के जो उपकरण होते हैं, उनका उपयोग
करते हुए कलाकार को इसकी चिन्ता नहीं होती कि इस उपकरण का ऐसा उपयोग
होना चाहिए कि आस्वादक को कोई असुविधा न हो । पर कवि को इसकी चिन्ता
करनी पड़ती है । काव्य-रचना के लिए भाषा का उपयोग कवि का वैयक्तिक कार्य है,

पर भाषा का प्रयोग करते समय वह पाठक की अवहेलना नहीं कर सकता है, क्योंकि काव्यास्वादन की प्रक्रिया में सहृदय के समक्ष सबसे पहले भाषा आती है। अतः काव्यभाषा का सम्बन्ध कवि और पाठक, दोनों से है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसी कारण निदेश दिया था कि भाषा का प्रयोग पाठक के स्तर को ध्यान में रखकर होना चाहिए।[7]

यद्यपि काव्यभाषा कवि की वैयक्तिक सृष्टि है, उसका एक पृथक् अनुशासन है, तथापि उसमें व्याकरण का भी एक अपना स्थान है। काव्यभाषा में व्याकरण का महत्व दो कारणों से है। प्रथमतः अभिव्यक्ति की पूर्णता के लिए व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है, मात्र शब्दों को चुन लेने से कवि अपनी विवक्षा को प्रकट करने में समर्थ नहीं हो जाता। काव्य शब्दों का अम्बार मात्र नहीं होता है। द्वितीयतः, शब्द का रूप परिवर्तन और उसका विन्यास व्याकरण का अध्येतव्य विषय है और इन दोनों का महत्वपूर्ण उपयोग काव्य में होता है। अतः छन्द आदि के कारण व्याकरण की अवज्ञा करने के लिए यद्यपि कवि कभी-कभी बाध्य हो जाता है, तथापि सामान्यतया वह व्याकरण का अनुशासन स्वीकार करता है और अभिव्यंजना में उसका उपयोग करता है।

इस प्रकार एक ओर तो काव्यभाषा, सामान्य भाषा के व्याकरण को स्वीकार करती है तो दूसरी ओर अपना स्वतन्त्र अनुशासन रखती है। अतः काव्यभाषा बोल-चाल की भाषा अथवा लोकभाषा से उसी प्रकार विशिष्ट रहती है जिस प्रकार लहर जल से विशिष्ट रहती है। काव्यभाषा के स्वरूप को समझाने के लिए जल और तरंग का उपमान बड़ा सटीक है। जिस प्रकार तरंग जल होते हुए भी उससे विशिष्ट है उसी प्रकार काव्यभाषा लोकभाषा होते हुए भी उससे विशिष्ट है। फिर, जिस प्रकार लहर अन्ततः जल ही है, उसी प्रकार काव्यभाषा भी मूलतः सामान्य भाषा ही है। सत्य यह है कि काव्यभाषा लोकभाषा के अन्तर से ही ऊपर उठती है। अतः लोक-भाषा से उसके मूल का विच्छिन्न होना उसके लिए घातक है।

किसी भी कला में उसके उपकरण और उसके आकार का अनिवार्य सम्बन्ध होता है। उपकरण ही आकार ग्रहण करता है। इसलिए प्राथमिक महत्व तो उपकरण का ही है, परन्तु कला-रचना के पूर्ण हो जाने पर सामने आकार ही बच जाता है, उपकरण आंखों से ओझल हो जाता है। अतः आकार का भी कम महत्व नहीं है। यही नहीं, वांछित आकार देने में उपकरण की उपयोगिता को विस्मृत नहीं किया जा सकता है। सभी उपकरणों से सभी कलाओं की सृष्टि नहीं हो सकती। जो हो, काव्य कला के सम्बन्ध में रूप और भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। रूप की दृष्टि से काव्य-भाषा के दो स्थूल वर्ग हैं—महाकाव्य की भाषा और गीतिकाव्य की भाषा। महा-काव्य की भाषा का अपना विशिष्ट स्वरूप होता है। उसके परिचायक तत्वों में भाषा भी एक है।

भाषा को लेकर महाकाव्य की एक समता नाटक से है। जिस प्रकार नाटक

में भाषा का निर्धारण उसके पात्र भी करते हैं, उसी प्रकार महाकाव्य की भाषा के निर्धारकों में उसके पात्रों का भी स्थान होता है।

भाषा किस प्रकार काव्य का रूप ग्रहण करती है, यह छन्द-रचना में दृष्टव्य है। छन्द भाषा का ही एक विधान है। सभी छन्द सभी भाषाओं के लिए उपयुक्त नहीं होते। काव्यस्वाद के लिए छन्द का ज्ञान भले आवश्यक न हो, पर काव्य एवं काव्य-भाषा के अध्ययन की पूर्णता के लिए छन्द की दृष्टि से उसका अध्ययन आवश्यक है।

काव्यभाषा की इसी सैद्धांतिक पीठिका पर आगे के अध्यायों में रामचरित-मानस की भाषा का अध्ययन किया गया है।

संदर्भ

१. पं० विजयानन्द त्रिपाठी, मानस व्याकरण, मानस-संघ, रामवन, सतना, प्रथमावृत्ति प्राक्कथन, पृ० २।
२. एफ० एस० ग्राउज, दि रामायण ऑव तुलसीदास, कानपुर, १८८०, इन्ट्रोडक्शन, पृ० १।
३. ए० जी० ग्रियसंन, मोडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान, कलकत्ता, १८८९, पृ० ४२।
४. एडबिन ग्रीब्ज, का निबंध, गोसाईं तुलसीदास का जीवनचरित, ना० प्र० सभा, काशी, तीसरा भाग, १८९९, पृ० ५६।
५. केशवदास, कविप्रिया, २।१७, केशव ग्रंथावली, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, इलाहाबाद १९५४ ई०।
६. क्लिपेंथ ब्रुक्स, दि वेल रौट अर्न (लंदन १९६०), पृ० १९७।
७. महावीर प्रसाद द्विवेदी, साहित्यालप (पटना, १९२९), पृ० १३२।

(ख

इस
पर
दृषि
है त
से
हुए
क
वै

है
व
ह
ह
ह

तुलसीदास का व्यक्तित्व और रामचरितमानस की काव्य भाषा

'व्यक्ति' में 'त्व' प्रत्यय के योग से भाववाचक संज्ञा व्यक्तित्व बनी है, जिसका अर्थ होता है व्यक्ति से सम्बद्ध सभी गुण-दोष। काव्य में यह अंगरेज़ी 'पर्सनेलिटी' के पर्याय के रूप में प्रचलित है। यह 'पर्सनेलिटी' लेटिन के 'पर्सोना' से बना है जिसका पहले अर्थ था—नाटक में लगाए जाने वाले नकली चेहरे। बाद में मूल पात्र के अर्थ में इसका प्रयोग होने लगा। आज 'पर्सनेलिटी' से व्यक्ति की शारीरिक सभी विशेषताएं एवं उसकी प्रवृत्तियां मानी जाती हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने ढंग से इसको परिभाषित किया है। किसी ने जन्मजात और अर्जित प्रवृत्तियों को व्यक्तित्व कहा है[1], किसी ने प्रवृत्तियों के समवाय को व्यक्तित्व माना है।[2] काव्य-निहित पात्र का व्यक्तित्व शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के संगठनों पर आधारित रहता है। उसकी रुचि, क्रिया-कलाप, कार्यक्षमता सामाजिक व्यवहार आदि के द्वारा व्यक्तित्व का विकास होता है।[3] मनोवैज्ञानिकों ने समस्त मानसिक प्रवृत्तियों को व्यक्तित्व के अंतर्गत समेट लिया। व्यक्ति की विशेषताओं, प्रवृत्तियों को चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१. शारीरिक पक्ष,
२. बौद्धिक पक्ष,
३. भावात्मक पक्ष,
४. व्यावहारिक पक्ष।

साहित्य का सम्बन्ध वैसे सभी पक्षों से कुछ न कुछ है, परन्तु बौद्धिक और भावात्मक पक्ष से अधिक है। कवियों का सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक दृष्टिकोण तथा विभिन्न आत्मगत प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति का प्रबल माध्यम है काव्य, और काव्य अंततः भाषा ही है। लेकिन भाषा के सभी रूप को काव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती—यह तो ध्रुव सत्य है। यदि भाषा में अर्थ-संप्रेषणीयता की शक्ति नहीं है, तो वह काव्यभाषा की कोटि में नहीं आ सकती। जैसे "देखो सूर्यास्त हो गया है, चन्द्रमा का उदय हो रहा है और पक्षी अपने घोंसले में लौट रहे है, भाव-प्रकाशन होने पर भी इन वाक्यों में सौन्दर्य नहीं है, अतः यह काव्य नहीं, वार्ता है।"[4] आदि कवि वाल्मीकि के बारे में भट्टतौत ने कहा है—

"तथाहि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादिकवेर्मुनेः ।
नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना ।।"

आदि वाल्मीकि की कविता तब तक लोक में उदित नहीं हुई जब तक उन्होंने नित्य प्रति दर्शन को वर्णन का रूप नहीं दिया । "सृष्टि में ब्रह्म की जो व्यापक सत्ता है, वही काव्य में कवि की रहती है । सृष्टि के अणु-परमाणु में ब्रह्म व्याप्त है, परन्तु वह लक्षित कहीं भी नहीं होता । काव्य के वर्ण-वर्ण में कवि का आत्म-भाव परिव्याप्त रहता है, किन्तु वह स्पष्ट कहीं लक्षित नहीं होता ।'"[५] साहित्य के प्रायः चार तत्त्व माने जाते हैं—

१. विचार या बुद्धि-तत्त्व (दि इंटेलेक्चुअल एलिमेंट)
२. भाव-तत्त्व (दि इलिमेंट ऑव इमोशन)
३. कल्पना तत्त्व (दि इलिमेंट ऑव इमेजिनेशन)
४. भाषा-शैलीतत्त्व (दि इलिमेंट ऑव एक्सप्रेशन)

साहित्यकार का व्यक्तित्व इन चारों तत्त्वों से न्यूनाधिक रूप में संबद्ध है । कवि की रचना में ऐतिहासिक, भौगोलिक, पौराणिक विवरण बुद्धि पर आधारित है । मानव की जीवन-सृष्टि, सामाजिक विचार-धारा, राजनीतिक मान्यता, दार्शनिक स्वीकृति, धार्मिक मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति कवि अपने काव्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से करता है । वर्णन के ये सारे तत्त्व बौद्धिक हैं, जिनसे कवि की आत्माभिव्यक्ति होती है ।

साहित्यकार अपने पात्रों के माध्यम से जो नाना प्रकार की भावमयी स्थितियां उत्पन्न करता है, वह भी कवि की ही होती है । दो कवियों की तुलना से तो यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है । जैसे, तुलसी के 'रामचरितमानस' में भक्ति का प्राबल्य है तो बिहारी की 'सतसई' में प्रणय-भावना का । इस भांति साहित्यगत भावात्मक स्थल भी कवि का ही अप्रत्यक्ष व्यक्तित्व है ।

कल्पना से भी व्यक्तित्व का घनिष्ठ सम्बन्ध है । क्योंकि कवि की कल्पना अज्ञात वस्तुओं को रूप प्रदान करती है ।[६] जिस कवि की कल्पना जितनी ही उन्नत, संयत और संस्कृत होगी, उसका व्यक्तित्व उन्हीं तथ्यों के अनुकूल प्रतीत होता है ।

शैली से तो व्यक्तित्व का घनिष्ठ सम्बन्ध आंग्ल-विद्वानों ने घोषित ही किया है । 'शील' से शैली शब्द बना है । इसका अर्थ है—स्वभाव या प्रकृति । साहित्य मे शैली का अर्थ है विशेष काव्य-रचना-प्रणाली या अभिव्यंजना प्रणाली । आज यह अंगरेजी 'स्टाइल' के पर्याय के रूप में प्रचलित है । गेटे शैली को लेखक के मस्तिष्क की सच्ची अनुकृति मानता है ।[७] चेस्टरफील्ड ने शैली को विचारों का परिधान कहा है ।[८] यह मानव-प्रकृति के अंतरंग के प्रतीक तथा व्यक्तित्व के प्रकाशन की स्थायी साधना है ।[९] बुफों के अनुसार शैली लेखक की प्रकृति का एक अंग है ।[१०] यह भाषा का विशिष्ट रूप है जो लेखक के भावों और विचारों को अच्छी तरह संप्रेषित करती है ।[११] प्रसिद्ध मनो-विश्लेषक युंग ने व्यक्तित्व के दो मुख्य भेद माने हैं—अंतर्मुखी और बहिर्मुखी । इन्हीं के आठ उपभेदों के आधार पर हर्बर्ट रीड ने 'इंग्लिश प्रोज स्टाइल' में यह स्पष्ट किया

है कि साहित्य के रूप-विधान एवं शैलीगत गुणों में साहित्यकार का व्यक्तित्व किस प्रकार निहित रहता है।

डॉ० गुलाबराय ने कवि के दो व्यक्तित्वों की चर्चा की है—एक लौकिक और दूसरा साधारणीकृत सहानुभूतिपूर्ण कलाकार का व्यक्तित्व। लौकिक व्यक्तित्व में वह साधारण मनुष्य की भांति सुख में हंसता है और दुख में रोता है; किन्तु उसका कलाकार का व्यक्तित्व उसके रोने में भी सुरीला राग भर देता है।[१२] क्रोचे ने भी कवि के दो प्रकार के आत्मभाव (पर्सनेलिटी) को माना है—

१. लौकिक और संकल्पात्मक (इंपिरिकल ऐंड वोलिसनल),
२. अलौकिक स्वच्छंद और आदर्श (स्पोन्टेनियस ऑर आइडियल पर्सनेलिटी कंस्टीच्युटिंग दि वर्क ऑव आर्ट।)

साहित्य में द्वितीय प्रकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है, प्रथम तो गौण ही रहता है।

अरस्तू ने कवि के व्यक्तित्व के आधार पर काव्य के दो भेद किए हैं। कवि का व्यक्तित्व सामान्यतः दो प्रकार का होता है—गंभीरचेता एवं उदात और क्षुद्र विनोदी। इस व्यक्तित्व के अनुसार काव्य दो प्रकार के हो गए हैं—वीरकाव्य और व्यंग्य काव्य।

काव्यभाषा में कलात्मक अभिव्यक्ति के साथ-साथ कवि की आत्माभिव्यक्ति भी होती रहती है। इस तरह अपनी आत्मा का स्फुरण उनका समूचा काव्य ही है। इसलिए "कलाकार के व्यक्तित्व के अतिरिक्त शैली में भाषा की सांस्कृतिक विशेषता भी अपना महत्त्व रखती है। व्यक्तित्व का जितना महत्त्व है, उतनी ही भाषा की मर्यादा का भी।"[१३] पुष्प अपने जन्मदाता पादप के गुण-धर्मों को छिपा नहीं सकता, साहित्य भी साहित्यकार की मनोवृत्तियों को अप्रकट नहीं रख सकता।[१४] डॉ रांगेय राघव ने भी कवि के दो व्यक्तित्व की चर्चा की है। एक है, व्यावहारिक और दूसरा है साहित्यिक जो अपने देश, काल, वर्ग, जाति के बंधन से आगे निकल जाने की सामर्थ्य स्थायित्व रखता है।[१५] कवि की रचनाओं में उसके जीवन का जो अनुभव है, उसका मूल आधार है भाषा, जिसे पाकर वह अपने भावों को व्यक्त करता है। इसी तरह प्रत्येक साहित्यिक व्यक्ति का एक साहित्यिक व्यक्तित्व होता है, जो काव्यभाषा के माध्यम से प्रस्तुत होता है। अतः कवि के व्यक्तित्व और उसकी काव्यभाषा का एक उदात सम्बन्ध होता है। काव्यभाषा और कवि के व्यक्तित्व में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। "काव्यभाषा में निर्मित होता है और भाषा स्वयं व्यक्तियों की व्यक्तिगत अनुभूतियों की देन है। स्वयं भाषा भी उन अनुभूतियों के रूप में बदलती रहती है। भाषा के बिना व्यक्ति की अनुभूतियां नहीं हो सकती और न अनुभूतियों के बिना भाषा ही हो सकती है।"[१६] किसी भी भाषा का सम्यक् ज्ञाता और सुप्रयोक्ता उस भाषा के कवि ही होते हैं।[१७] प्रत्येक व्यक्ति का एकअपना शब्द-भांडार होता है और उस भांडार के प्रत्येक शब्द का अर्थ, उच्चारण और प्रयोग उस व्यक्ति का अपना होता है।[१८] प्रत्येक कवि का शब्द-प्रयोग अलग रहता है और इसी विशेषता से कवि विशिष्टता

प्राप्त करते हैं। इसलिए कि कवि की भाषा उसकी अपनी बोली होती है।[२०] कवि के व्यक्तित्व से भाषा का सम्बन्ध रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विचार से भी पुष्ट होता है। उनका कहना है कि प्रत्येक कवि की भाषा का अपना एक विशिष्ट माध्यम होता है, इसलिए नहीं कि सम्पूर्ण भाषा इसकी अपनी निर्मिति होती है, बल्कि इसलिए कि वह भाषा का वैयक्तिक प्रयोग करता है।[२१] वस्तुतः भाषा कवि की प्रकृति और उसके व्यक्तित्व को रूपायित करती है। भाषा सदैव अति सामान्य होती है। महान् कवि के पावन स्पर्श से ही यह विशिष्ट होती है और इसी विशिष्ट भाषा के दर्पण में कवि का व्यक्तित्व झलकता है। इस तरह हम देखते हैं कि भाषा और कवि का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कवि जो कुछ भी कहता है, अपने दृष्टिकोण से कहता है "इसलिए कलाकार के व्यक्तित्व का ज्ञान उस हद तक, जिस हद तक वह उसकी कृतियों में प्रतिबिंबित होता है, हमारे लिए आवश्यक है।"[२२] शैली से कवि का सारा व्यक्तित्व प्रकट हो जाता है। शब्द-चयन, शब्द-प्रयोग, वाक्य योजना, स्वर, लय, आदि कवि की प्रकृति की तुरत पहचान करा देते हैं। भाषा से कवि का सम्पूर्ण रूप व्यक्त हो जाता है। हडसन भी इसे स्वीकार करते हैं।[२३] कवि की कृतियों पर उसके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट रहती है।[२४]

महाकवि की रचनाओं में तो भाषा अति उदात्त, सुष्ठु एवं प्रांजल होती है। कवियों के व्यक्तित्व के अनुरूप ही उनकी भाषा की बनावट दीखती है। महाकवि की भाषा ही वह सबल माध्यम है जिससे उस समय की राजनीतिक, साहित्यिक, दार्श-निक, धार्मिक आदि प्रवृत्तियां एवं उसमें कवि की आस्था-अनास्था आदि प्रतिबिंबित हो उठते हैं। अतः भाषायी मापदंड द्वारा कवि के व्यक्तित्व के अनेक रूप स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं।

रामचरितमानस की गणना विश्व के श्रेष्ठ महाकाव्यों में है। तुलसीदास का जीवन-चरित्र या लौकिक व्यक्तित्व अधिकतर विद्वानों के अनुमान से ही निर्मित है। उस पर विश्वास के साथ निर्भर करना कठिन है। लेकिन भाषा के माध्यम से तुलसी के कलाकार हृदय का व्यक्तित्व सुरक्षित है और जब तक उनकी कृतियाँ रहेंगी, तब तक सुरक्षित रहेगा। भाषा के रूप में तुलसी के अगाध पांडित्य, अनन्य भक्त, सुजान राजनीतिज्ञ, सूक्ष्म दार्शनिक, आदर्श मानव, दयालु, सहिष्णु, आदर्शवादी प्रगतिशील प्रभृति अनेक व्यक्तित्वों के दर्शन होते हैं। इस तरह भाषिक आधार पर तुलसी के ये व्यक्तित्व सामने आते हैं—

१. कविरूप,

२. भक्त-रूप (धार्मिक, उपदेशक),

३. दार्शनिक रूप,

४. समाज-सुधारक,

५. पंडित रूप—(क) पौराणिक, (ख) ज्योतिषी, (ग) गणितज्ञ, (घ) संगीतज्ञ, (ङ) काव्यशास्त्रीय।

व्यक्तित्व के ये सारे रूप 'मानस' में मिश्रित एवं समन्वित हैं और सम्पूर्ण

कृति में इस प्रकार बिखरे हुए हैं कि एक-एक को निश्चित परिधि में लाकर परीक्षण करना अति दुष्कर कार्य है। क्योंकि "कवि को तो नाना रूप धारण करने पड़ते हैं। वह रावण के मुख में बैठकर राम को गालियां देता है और राम के मुख में बैठकर सज्जनों और दुष्टों के लक्षण भी गिनाता है। वह शूर्पणखा के मुख से बोलता है और अनुसूया के भी। वही लक्ष्मण भी बन जाता है और परशुराम भी।"[२४] तुलसी के व्यक्तित्व-प्रकाशन के रूप में भाषा-शैली के अध्ययन का संकेत डॉ० माताप्रकाश गुप्त ने भी किया है।[२५] महाकवि वस्तुतः प्रजापति होता है जो इच्छानुसार अपनी रचना से ही संसार को बदल सकता है—

अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्त्तते॥

जिस कवि का व्यक्तित्व जितना ही महान् होगा उसकी रचना उतनी ही शाश्वतता प्राप्त करेगी। इस दृष्टि से तुलसी का व्यक्तित्व अति महान् सिद्ध होता है। साहित्य में प्रतिबिंबित व्यक्तिगत अनुभूतियों का आधार है कवि की भाषा। "साहित्य की भाषा का प्रवाह दो कूलों के बीच से होकर बहना है। एक कूल पर रहता है रचनाकार और दूसरे कूल पर रहता है विषय। इन्हीं दोनों कूलों के बीच में प्रत्येक साहित्यकार की भाषा रहती है और प्रायः अधिकांश की भाषा प्रथम के निकट रहती है।"[२६]

तुलसी : भक्त रूप

यदि तुलसीदास एक ओर महाकवि हैं, तो दूसरी ओर महाभक्त भी हैं। वे महाभक्त-कवि हैं। कवि के हृदय में भक्ति की जो पावन सरिता प्रवाहित हुई, रामचरित-मानस उसी का प्रतिफलन है। काव्य की अनेक विधाएं तो उनके लिए साधन मात्र हैं, साध्य है राम की अनन्य भक्ति, जिसे उन्होंने 'चातक' के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया है।

कवि न होउं नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ॥

प्रथम सोपान के अन्त में उन्होंने कहा है—

कबि कुल जीवनु पावन जानी। राम सीय जसु मंगल खानी॥
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी॥[२७]

तुलसी की भक्ति-भावना का उनकी काव्य-कला के साथ बड़ा ही सुन्दर समन्वय हुआ है, और ऐसा समन्वय शायद ही कोई कर सका।[२८] ग्राउज के विचार से समस्त रामचरितमानस हिन्दू परमार्थ के दार्शनिक ईश्वरवाद के विरुद्ध भक्तिपूर्ण प्रतिरोध है।[२९] आल्चीन का भी कहना है कि तुलसीदास स्वतन्त्र चिंतक थे, जिनकी विचार-धारा भक्ति से प्रभावित थी, दार्शनिक दृढ़ता से नहीं।[३०] कवि की भक्ति का एक अंग उनकी धार्मिकता भी है।

अब हमें देखना है कि एक भक्त के रूप में तुलसीदास की भाषा का क्या स्तर है। भक्ति-भावना के साथ-साथ 'मानस' में प्रयुक्त विविध स्तुतियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है, क्योंकि प्रत्येक भक्त अपने पूज्य आराध्य की स्तुति करता ही है।

तुलसी के भक्त-रूप की भाषा में हम संस्कृत तत्सम शब्दावली का माधुर्य पाते हैं। भक्ति, हृदय की परम कोमल और गहन अनुभूति है। इस समय आध्यात्म से चतुर्दिक वातावरण में ही हृदय रमा करता है। भक्ति एक विशुद्ध प्रांजल वृत्ति है। अतः भक्त की भाषा में तत्सम शब्दावली की सरसता दिखाई पड़ती है।

मुनिवर अत्रि के आश्रम पर श्री राम आते हैं। मुनि ने सश्रद्धा, सविनय पूजन किया, और उनकी जो स्तुति की, उसकी भाषा में एक भक्त का रूप साकार हो उठता है—

नमामि भक्तवत्सलं कृपालुशील कोमलं ।
भजामि ते पदांबुजं अकामिनां स्वधामदं ।।
निकामश्यामसुन्दरं भवांबुनाथमंदरं ।
प्रफुल्ल कंजलोचनं मदादिदोषमोचनं ।।
....
अनूपरूपभूपतिं नतोऽहमुर्विजापतिं ।
प्रसीद मे नमामि ते पदाब्जभक्ति देहि मे ।।[11]

यहां हम संस्कृत शब्दावली का प्राचुर्य पाते हैं। वाक्य सरल और मिश्र, दोनों प्रकार के हैं। भावातिरेक की भाषा के कारण कहीं-कहीं स्वतः स्फुरित अलंकार भी हैं। दीनता की पराकाष्ठा में हृदय की पवित्रता लक्षित होती है।

देवताओं ने राम की स्तुति की; जिसमें एक भक्त-हृदय का स्पंदन मिलता है—

खल खंडन मंडन रम्य छमा। पद पंकज सेवित संभु उमा ।।
नृपनायक दे वरदानमिदं। चरनांबुज प्रेम सदा सुभदं ।।[12]

रावण-वध के पश्चात् शिवजी, श्री राम की स्तुति करते हैं। इस स्तुति में भी हम एक भक्त-हृदय के दर्शन करते हैं—

मामभिरक्षय रघुकुलनायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक ।।
मोह महा घनपटल प्रभंजन। संसय बिपिन अनल सुररंजन ।।
....
अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर ।।
मुनिरंजन महिमंडल मंडन। तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन ।।[13]

पुनः अयोध्या में जब शिव, श्री राम की स्तुति करते हैं, तब भी एक अनन्य भक्त की भाव-भंगिमा परिलक्षित होती है—

जय राम रमारमनं समनं। भवताप भयाकुल पाहिजनं ।।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत मागत पाहि प्रभो ।।[14]

भक्त की भाषा में सर्वत्र दीनता के भाव दिखाई पड़ते हैं, कार्पण्यता और हार्दिक पवित्रता लक्षित होती है, बनावट या छल-कपट का स्पर्श नहीं। शब्द और वाक्य छोटे होते हैं। भाषा में तत्समता अधिक समाविष्ट रहती है। 'मानस' के अन्त में भी कवि ने भाषा का यही रूप प्रकट किया है—

मो सम दीन न दीनंहित तुम्ह समान रघुबीर ।
अस बिचारि रघुबंसमनि, हरहु विषम भवभीर ।।
कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रियजिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम ।।[३५]

भक्तवर नारद की प्रार्थना की भाषा में भी तुलसी का भक्त-रूप प्रकट होता है—

मामवलोकम पंकजलोचन । कृपा बिलोकनि सोचविमोचन ।
नील तामरस स्याम कामअरि । हृदय कंज मकरंद मधुप हरि ।[३६]

इसका भी भाषिक रूप संस्कृत तत्सम शब्दावली के माधुर्य से ओतप्रोत है । जहां संस्कृत छंदों में भक्तों ने स्तुति की है, वह भी अति प्रांजल है, सरस और रमणीय है । यहां मात्र दो उदाहरण दिए जा रहे हैं –

१. नीलाम्बुजश्यामलकोमलांगं सीतासमारोपितवाम भागं ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुबंशनाथं ।।[३७]

२. अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यं ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ।।[३८]

उपर्युक्त संस्कृत श्लोकों की भाषा बड़ी सरस है । संस्कृत व्याकरण के नियम का थोड़ा स्खलन रहते हुए भी भाषा हममें रसमग्नता तो ला ही देती है ।

तुलसी के सन्त व्यक्तित्व का भक्त-रूप में विलयन हो गया है । मिथक, बिम्ब और दृष्टान्त के अभाव में काव्यात्मक धार्मिक भाषा टिक नहीं सकती । "तुलसी ने धार्मिक भाषा और काव्यभाषा के अन्तर को दूसरे ढंग से समझा है, जब कहते हैं कि देश-काल और अवसर के अनुकूल वचन बोलना चाहिए । उनके द्वारा रची गई प्रार्थनाएं और संवाद एक ओर तो क्रमशः मनोवैज्ञानिक सम्बन्धों और नैतिक सम्बन्धों को कर्म में सम्पादित करने का आह्वान है, तो दूसरी ओर धार्मिक प्रतीकों और दृष्टान्तों के प्रकाशक हैं ।"[३९]

अतः सम्पूर्ण रामचरितमानस के भाषिक आधार पर तुलसी के व्यक्तित्व का एक रूप यह प्रतिभासित होता है कि वे एक निष्कपट, सहृदय और अनन्य भक्त हैं, दीनता ही उनके सम्पूर्ण जीवन का संबल है । जन-भाषा के कवि होते हुए भी जब ये भक्त की जिह्वा से बोलते हैं तो इनकी भाषा संस्कृत की तत्समता, पौराणिक, धार्मिक मिथ प्रतीक, बिम्ब तथा मिथयुक्त हो जाती है । संस्कृत के प्रति इनकी अगाध श्रद्धा दिखलाई पड़ती है । अतः डॉ० श्यामसुन्दरदास के शब्दों में "गोस्वामी जी संस्कृतज्ञ और शास्त्रज्ञ थे ।"[४०] तुलसी शक्तिमान दार्शनिक कवि हैं, उन्होंने आध्यात्मिक अनुभूति को रसात्मक वाङ्मय के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।[४१]

कहीं-कहीं भक्ति-विवेचन की भाषा आद्यन्त साहित्यिक हो जाती है । रूपकों का जमघट दिखाई पड़ता है । रण-क्षेत्र में राम को पैदल देख कर अधीर हुए विभीषण को समझाने के लिए कवि ने राम के मुख से ऐसी ही भाषा का प्रयोग कराया है—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना । जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्यसील दृढ़ ध्वजा पताका ।।
....

कवच अभेद विप्र गुरु पूजा । एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥
सखा धर्ममय असरथ जाकें । जीत न कहँ न कतहुँ रिपु ताकें ॥
महा अजय संसार रिपु जीति सकै सो बीर ।
जाकें असरथ होइ दृढ़ सुनहुं सखा मति धीर ॥[३२]

तुलसी की संवाद-शैली में पात्रों, घटनाओं एवं आध्यात्मिक अनुभूतियों के फलस्वरूप राम-कथा की महत्ता बढ़ गई है। इसमें भी कवि की धार्मिक भाषा दिखाई पड़ती है।

दार्शनिक रूप

प्राचीन काल अगाधता का काल था। कवि-व्यक्तित्व के लिए दार्शनिक, सामाजिक, धर्मज्ञ राजनीतिक, पंडित शास्त्रज्ञ आदि होना परस्पर-विरोधी नहीं, बल्कि आवश्यक गुण माने जाते थे। तुलसी एक ऐसे ही महान् व्यक्ति थे। उनके रामचरितमानस में दार्शनिक विचार मिलते हैं पर वे "पारिभाषिक या शास्त्रीय अर्थ में दार्शनिक नहीं थे। वे दार्शनिक कवि थे। वे काव्य में दर्शन-शास्त्र की निबंधना करने वाले कवि थे।"[३३] मानस में अनेक दार्शनिक मतों की झलक मिल जाती है, पर दर्शन-शास्त्र का विवेचन करना तुलसी का अभीष्ट नहीं था। सरल शैली में गहन दार्शनिक सिद्धान्तों को कवि ने बड़ी स्पष्टता से व्यक्त किया है। "तत्कालीन साहित्य में कोई भी ऐसा कवि नहीं है, जिसने दर्शन-शास्त्र का परिचय इतनी दक्षता के साथ किया हो।"[३४]

रामचरितमानस में बिखरे दार्शनिक विचारों को एक स्थल पर रख कर पर्यवेक्षण करने पर यह पता चलता है कि कवि के दार्शनिक विवेचन की भाषा, भक्त की भाषा की अपेक्षा दूसरे प्रकार की है। इसमें संस्कृत की तत्सम शब्दावली की रमणीयता के साथ भाषा तार्किक एवं सैद्धान्तिक हो जाती है। ऐसे स्थलों की भाषा में पारिभाषिक शब्दावली की झलक पायी जाती है। तार्किक शब्दों के कारण विचार-गाम्भीर्य की व्याप्ति सर्वत्र दिखाई पड़ती है भाषा का रूप 'मानस' में वहां पाया जाता है, जहां कवि ने ब्रह्म, माया, जीव, जगत की प्रसंगानुसार विवेचना की है। ऐसे वर्णन बहुत है, यहां कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

लवनिमेष महु भुवन निकाया । रचे जासु अनुसासन माया ॥[३५]
रामुब्रह्म परमारथरूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ॥[३६]
रामब्रह्म व्यापक जग जाना । परमानंद परेस पुराना ॥[३७]
सबकर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीश जान गुन धामू ॥[३८]
विस्वरूप रघुबंसमनि करहु बचन बिस्वासु ।
लोककल्पना वेद कर अंग-अंग प्रति जासु ॥[३९]
श्रुति सेतु पालकराम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।
जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की ॥
....

राम स्वरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर।
अबिगत अकथ अपार, नेति-नेति नित निगम कह ॥[50]
जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहुँ नाथ हम तव सगुन जसु नित गावहीं ॥[51]

दार्शनिकता की इस भाषा में बुद्धि और कल्पना, तर्क की गहराई में चली जाती है, पर कहीं थाह नहीं मिलती है, वह खो जाती है। माया, जगत्, जीव के विवेचन की भाषा भी इसी स्तर की है; यथा—

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीवनिकारा।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानुहु भाई ॥[52]
जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।
जनमु मरनु जहँ लगि जगजालू,। सपति बिपति करमु अरु कालू ॥
....

जागें लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जियँ जोइ ॥[53]
उमा कहौं मैं अनुभव अपना। सत हरिभजन जगत सब सपना ॥[54]

'मानस' के सप्तम सोपान में वेद-स्तुति के माध्यम से जगत्-सम्बन्धी विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। इसकी भाषा भी तत्सम प्रधान है। विचार-प्राधान्य के कारण भाषा में तार्किकता अधिक है। साथ ही साथ रूपकों के जमघट के कारण भाषा अलंकृत हो गई है—

अव्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट् कंध साखापंचबीस अनेक पर्न सुमन घने ॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत् पुल्लत नवल नित संसार बिटप नमामहे ॥''[55]

ईश्वर को स्वतंत्र और जगत् को उनके अधीन मानकर चलनेवाले तुलसी इसीलिए ऐसा नमन करते हैं—

सीय राम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।

जहां जीव का वर्णन है, वहां भी भाषा एक प्रकार की पायी जाती है, यथा—

ईश्वर अंसजीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
सो माया बस भयउ गुसाईं। बंध्यो कीट मर्कट की नाईं ॥[56]
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी ॥
परबसजीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता ॥[57]
आकर चारि लक्ष चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥[58]
हरष विषदग्यान अग्याना। जीव धरम अहमिति अभिमाना ॥[59]

इस भांति भाषा के द्वारा दार्शनिक व्यक्तित्व भी प्रकट होता है, जिसमें गहन तार्किकता, सूक्ष्मज्ञान, सूत्र पद्धति, विचार गांभीर्य आदि सन्निहित हैं। वाक्य-सघटनता सर्वत्र है। पारिभाषिक शब्दावली की भी झलक पाई जाती है। तुलसीदास किसी भी दार्शनिक

मतवाद के अनुयायी नहीं हैं, बल्कि एक स्वतन्त्र चिन्तक के रूप में सामने आते हैं। पारिभाषिक और तार्किक शैली का एक सुन्दर उदाहरण देखें जिसमें बिम्ब प्रतीक और अलंकार भी आ गए हैं—

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा ॥
प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटै अपारा ॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारा। उर गृह बैठि ग्रंथि निरुआरा ॥
छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तब यह जीव कृतारथ होई ॥
छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघ्न अनेक करै तब माया ॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरै बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई ॥
कलबल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा ॥[६०]
ज्ञानपंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा ॥
जों निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई ॥[६१]

यहां दार्शनिक विवेचन भी काव्यात्मक शैली के कारण अत्यन्त सरस हो गया है। भाषा की विशेषता के कारण ही दार्शनिकता की नीरसता कहीं नहीं प्रतीत होती है।

कवि रूप

गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी साहित्य के अति महान् कवि हैं। इनकी प्रबन्ध पटुता के पावन-स्पर्श से साहित्य का कोना-कोना चमत्कृत हो उठा। इनके कथ्य की निगूढ़ता और अभिव्यक्ति की कुशलता ने उन्हें युग-युग तक अमर बना दिया। उनके रामचरितमानस में प्रयुक्त रस, गुण, रीति, वृत्ति शब्द-झंकृत, ध्वनि, वक्रोक्ति, अलंकरण, मुहावरे, लोकोक्तियां आदि से उनके कवि रूप की गरिमा आगे भी बढ़ जाती है। 'मानस' में तुलसी का कवि-व्यक्तित्व प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है। भक्ति का कोई सिद्धांत-ग्रंथ उनका ग्रंथ नहीं है। मानस में कवि भक्ति, दार्शनिक, समाज-सुधारक आदि में कौन-सा रूप प्रधान है, यह प्रथमसोपान के मंगलाचरण से ही स्पष्ट हो जाता है—

वर्णानामर्थसंघाना रसानां छंदसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ बंदे वाणीविनायकौ ॥१। श्लोक-१

इसमें सर्वप्रथम 'वाणी' अर्थात् सरस्वती की वंदना की गई है। यदि कवि के भक्त-रूप की प्रधानता होती तो सबसे पहले राम-वंदना होती, लेकिन ऐसा नहीं है—"भक्त तुलसीदास के उपास्य राम थे, सामाजिक तुलसीदास के मान्य गणेश थे और सारस्वत तुलसीदास की पूज्या वाणी थीं। वाणी के लिए 'वर्णानां' कर्त्तृत्व ठीक घटित होता है। अतः 'मानस' में तुलसीदास का सरस्वत रूप ही प्रधान है।"[६२]

मानस में जगह-जगह पर उनके ही मुख से कवि-रूप की पुष्टि हो जाती है—

अस मानस मानस चखचाही। भइ कवि बुद्धि बिमल अवगाही ॥१।३६।६
संभु प्रसाद सुमति हिअं हुलसी। रामचरित मानस कवि तुलसी ॥१।३६।१

"तुलसी का रामचरितमानस एक प्रबंध काव्य है, उसमें सरस और नीरस सब प्रकार

की रचना हुई है, पर उसके नीरस पद्य भी अपना महत्त्व रखते हैं । वे प्रसंग के अनुरोध से यथास्थान बैठकर रस की व्यंजना करने में सहायक होते हैं । इसलिए उन्हें सरस ही कहा जाएगा ।[१३] मानस की काव्यमयी प्रवाहयुक्त कथा, विविध चित्रमयता, सरलता, गेयता, लयबद्धता एवं सांगीतिकता आदि में आकर्षण की अधिक शक्ति है ।[१४]—

कवि रूप में तुलसी की साहित्यिक भाषा तो विश्व के हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध है । डॉ० ग्रियर्सन, तुलसी की शैली का उदाहरण देना समुद्र में से एक ग्लास पानी लेने के समान समझते हैं । उनके अनुसार इसकी शैली विषय के साथ बदलती है । राम माता से विदा लेते हैं, यह दृश्य अपार करुणाजनक है । युद्ध-वर्णन में कठोर भाषा का जन्म हुआ है । अवसरानुकूल चेतन सूत्र-शैली का प्रयोग किया गया है । यह सूत्र शैली कालिदास की सर्वोत्तम उपमा-गर्भित शैली से भी अधिक सुन्दर है ।[१५] इसकी भाषा साहित्य के स्तर की है, जहां पर त्यागी-तपी कवि का साधन और साध्य दोनों एकाकार हो जाते हैं । मानस में कुछ ही स्थल ऐसे हैं, जहां पर कवि की भाषा इतिवृत्तात्मक हो गई है । और सर्वत्र भाषा का रूप साहित्यिक है । मानस की प्रारम्भिक पंक्तियों से ही इस प्रवृत्ति के दर्शन होने लगते हैं । गुरु-वंदना में प्रयुक्त कवि की भाषा का सौष्ठव देखें—

बंदौं गुरु पद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू । समन सकल भवरुज परिवारू ॥
....

जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्धि सुजान ।
कौतुक देखहिं सैल बन भूतल भार निधान ॥ १॥

यहाँ 'बंदौं' शब्द से भक्ति प्रकट है, लेकिन इस दोहे में भक्ति भी बिल्कुल साहित्यिक भाषा में अभिव्यक्त हुई है । यहां भक्तरूप गौण और कविरूप प्रधान हो गया है । रूपक अलंकार के साथ-साथ पहली पंक्ति के बाद की सारी पंक्तियां विशेषण रूप में प्रयुक्त हुई हैं, जिसके चमत्कार की सृष्टि हो गयी है । संस्कृत तत्सम पदावली की प्रधानता आद्यंत है । गुरु को कविवर ने बहुत ही ऊंचा स्थान दिया है । गुरु की गरिमा के अनुकूल भाषा की गरिमा विद्यमान है ।

मानस में सर्वत्र शताधिक अलंकारों का प्रयोग सूक्ष्म मनोभावों के चित्रण में प्रयुक्त कल्पना की रमणीयता एवं रस, गुण, रीति आदि ने रामचरितमानस की भाषा कवि तुलसीदास के कविरूप की विदग्धता का संकेत प्रस्तुत करती है—

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना । ज्ञान नयन निरखत मन माना ॥
रघुपतिमहिमा अगुन अबाधा । बरनब सोइ बर बारि अगाधा ॥
रामसीअ जस सलिल सुधा सम । उपमा बीचिबिलास मनोरम ॥
पुरइनि सघन चरु चौपाईं । जुगुति मंजु मनि सीप सुहाईं ॥
छंद सोरठा सुन्दर दोहा । सोइ बहुरंग कमलकुल सोहा ।
अरथ अनूप सुभाव सुभासा । सोइ पराग मकरन्द सुबासा ॥
....

पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग बिहारु ।
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु ।।१।३७।

रामचरितमानस-सर के वर्णन में तुलसीदास का कवि-हृदय फूट पड़ा है। यहां के वर्णन की भाषा बिल्कुल उच्चतम साहित्यिक स्तर की भाषा हो गई है। चौपाई का प्रत्येक चरण रूपक के सुरम्य ताल पर जैसे थिरक-थिरक कर आगे बढ़ रहा हो। हिमालय के मानसरोवर पर कोई विरल ही साहसी साधन निरत पथिक पहुंच पाता है। रामचरितमानस-सर भी अगम है, जिसकी प्राप्ति राम की कृपा पर निर्भर है। रूपकों की दीर्घता के कारण यहां तुलसी के विशाल साहित्यिक हृदय का परिचय मिलता है। विशुद्ध संस्कृत तत्सम-शब्दावली का सरस प्रयोग यहां देखने को मिलता है। वाक्य तो प्रांजल है, लघु हैं, पर रूपकों की माला यहां बन गई है। भाषा बिल्कुल साहित्यिक हो गई है। विश्वनाथप्रसाद मिश्र के अनुसार रूपकों की योजना प्रसंगानुकूल है। मानस में करुणा पूर्ण प्रसंग के लिए सरिता के रूपक हैं। प्रसंग की गम्भीरता प्रकट करने के लिए समुद्र के रूपक हैं या समुद्र की उपमा दी गई है। किसी भयंकरता, दाहकता की सूचना के लिए अग्नि का रूपक प्रयुक्त है। कोई उलट फेर लक्षित करने के लिए संध्या का निर्देश है—"सांझ समै सानन्द नृप गयउ कैकयी गेह" में 'सांझ' का प्रयोग भावी-उलट-फेर का सूचक है।[1] रूपक चाहे बड़े हों या छोटे, उनमें साधर्म्य-निर्वाह की जो कुशलता परिलक्षित होती है, उससे ऐसा अनुमान होता है कि वे काव्य-जगत के अनोखे पारखी थे। सम्पूर्ण मानस ही विविध अनूप प्रसाधनों से जड़ित है। वर्णन के साहित्यिक पक्ष तो सर्वत्र बिखरे हैं, सब की विवेचना यहां संभव नहीं। कुछ यहां दिए जाते हैं। वन्दना-प्रकरण में जब तुलसीदास रामकथा का वर्णन करने लगते हैं तो उनकी भाषा में उपमाओं की लहरें मन-प्राण को आकृष्ट कर लेती हैं—

रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिअ सुभग सिंगारू ।।
जनमंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के ।।
....

हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक सालि पाल जलधर से ।।
अभिमतदानि देवतरुबर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से ।।
सुकवि सरद नभ मन उडगन से। रामभगत जन जीवन धन से ।।
सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जग हित निरुपधि साधु लोग से ।।
सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से ।।

श्री राम का चरित सुन्दर चिंतामणि है और सन्तों की सुबुद्धि रूपी स्त्री का सुन्दर श्रृंगार है। यह राम-कथा ज्ञान, वैराग्य और योग के लिए सद्गुरु है और संसार रूपी भयंकर रोग का नाश करने के लिए देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमार के समान हैं। ये सीता-राम में प्रेमोत्पादन-हेतु माता-पिता हैं सम्पूर्ण व्रत धर्म और नियमों के बीज हैं। विचार रूपी राजा के शूरवीर मन्त्री और लोभरूपी अपार समुद्र को सोखने के लिए अगस्त्य मुनि हैं। भक्तों के मन रूपी वन में बसने वाले काम, क्रोध और कलियुग के पापरूपी हाथियों को मारने के लिए सिंह के बच्चे हैं। शिवजी के पूज्य और प्रियतम

अतिथि हैं और दरिद्रा रूपी दावानल को बुझाने के लिए मेघवत हैं। विषयरूपी सांप का जहर उतारने के लिए मन्त्र और महामदिरा हैं। अज्ञान रूपी अंधकार के हरण के लिए सूर्य किरणों के समान और सेवक रूपी धान का पालन करने के लिए मेघ के समान हैं। मनोवांछित वस्तु देने में श्रेष्ठ कल्पवृक्ष के समान है और सेवा करने में ही हर के समान सुलभ और सुख देनेवाले हैं। सुकवि रूपी शरद ऋतु के मनरूपी आकाश को सुशोभित करने के लिए तारागण के समान हैं।

यहां की भाषा में न दार्शनिकता है और न भक्ति की अगाधता। उपमाओं का जाल बिछा हुआ है। प्रत्येक उपमा से कवि के कवि-कर्म का परिचय तो मिलता ही है, साथ-साथ तुलसी के जीवन का चरम साध्य राम की भक्ति और लीला का गान। रामचरितमानस में राम से बढ़कर कोई नहीं है। ऐसे अलौकिक, अरम राम की कथा के वर्णन में कवि अपना हृदय खोल देता है। इसके फलस्वरूप भाषा तत्सम-प्रधान हो गई है। उपमाओं की कड़ियों में तुलसी के विविध व्यक्तित्व दिखलाई देते हैं, परन्तु अन्य सारे रूप जहां गौण हैं, कवि-रूप की ही प्रधानता है। कवि वर्णन तो कर रहा है रामकथा का, लेकिन वर्णन-पद्धति भावनामय न होकर कवि-कर्म की हो गई है। यहां तुलसी का भक्तरूप कुछ प्रच्छन्न है और कवि-रूप कुछ प्रधान हो गया है।

राम-लक्ष्मण आदि के जन्म के समय अयोध्यापुरी की शोभा के वर्णन में भी तुलसीदास की भाषा अतिशय साहित्यिक हो गई है। इस समय अवधपुरी इस प्रकार सुशोभित हो रही है मानो रात्रि प्रभु से मिलने आई हो और सूर्य को देखकर मन में सकुचा गई हो। अगर की धूप का का बहुत-सा धुआं मानो संध्या का अंधकार हो। जो अबीर उड़ रहा है, वह उसकी ललाई है। महलों में जो मणियों के समूह हैं वे मानो तारागण हैं। राजमहल का जो कलश है, वही मानो श्रेष्ठ चन्द्रमा है। राजभवन में जो अति कोमल वाणी से वेद-ध्वनि हो रही हैं, वही मानो समयानुकूल मिली-जुली पक्षियों की चहचहाहट हो। यह कौतुक देखकर सूर्य भी अपनी चाल भूल गये। एक महीना बीत गया, परन्तु पता तक न चला। कविवर तुलसी के शब्दों में—

अवधपुरी सोहै येहिं भाँति। प्रभुहि मिलन आई जनु राती॥
देखि भानु जनु मन संकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी॥
अगर धूप बहु जनु अंधिआरी। उड़ै अबीर मनहुँ अरुनारी॥
मंदिर मनिसमूह जनु तारा। नृपगृह कलस सो इन्दु उदारा॥
भवन वेदधुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समय जनु सानी॥
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइँ जात न जाना॥१।१९५

यहां का समूचा वर्णन अलंकारयुक्त है। उत्प्रेक्षा अलंकार तुलसी के सर्वाधिक प्रिय अलंकार हैं। अयोध्या की सुषमा के वर्णन में इनकी आलंकारिक भाषा का विशेष महत्व हर भाषा-प्रयोग के इस रूप से उनकी कवित्व-शक्ति का पूर्ण परिचय मिलता है।

जब कवि अरण्य-रामराज्य का वर्णन करते हैं तो उनकी भाषा विविध अलंकारों

के सोपानों पर ही होकर आगे बढ़ती है। कभी उत्प्रेक्षा और कभी रूपक के सहारे कवि का वर्णन बड़ा ही साहित्यिक बन गया है—

रामबास बन सम्पति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥
....
अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा॥
बेलि बिटप तृन सकल सफूला। सब समाजु मुद मंगल मूला॥२।२३४-३५

तृतीय सोपान में कविवर ने काम कटक का वर्णन किया है। इसकी भाषा भी सांग-रूपक और उत्प्रेक्षाओं के राजरथ पर सरकती चलती है। एक राजा के रूप में कामदेव का मनोहर अथच काव्यात्मक वर्णन किया गया है। कल्पना की सघनता और काव्य-कौशल की विदग्धता, दोनों के दर्शन यहां होते हैं—

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी॥
कदलि ताल बर ध्वजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥
....
तीतिर लावक पदचरजूथा। बरनि न जाए मनोजबरूथा॥
रथ गिरिसिला दुंदभी झरना। चातक बंदी गुनगन बरना॥
मधुकर मुखर बेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठीं आई॥
चतुरंगिनी सेन संग लीन्हे। बिचरत सबहि चुनौती दीन्हे॥३।३८

यहां वाक्यों की लघुता के साथ-साथ समास-राहित्य तथा विविध प्राकृतिक दृश्यों के सूचक शब्दों का औचित्यपूर्ण संयोजन मिलता है।

मोह-विपिन की भाषा भी बड़ी ही काल्पनिक तथा साहित्यिक है। अनेक प्रकार के साधनों तथा साधना सोपानों के संकेत मिलते हैं। मिश्र वाक्यों की सघनता है। वाक्यगत शब्द-प्रयोगों में संस्कृत-तत्समता अधिक प्रयुक्त हैं। आद्यंत रूपक के भुजपाश में भाषा अपनी अंगड़ाई बिखेरती है—

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहुं नारि बसंता॥
जप तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोखै सब नारी॥
....
पाप अलूकनिकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधिआरी॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना॥३।४४

राम सुबेल पर्वत पर बैठे हैं। अपने सेवकों और सखाओं से चन्द्रमा में दिखाई पड़ने वाले धब्बे के बारे में प्रश्न पूछते हैं एवं सभी अपनी-अपनी प्रकृति के अनुकूल जवाब देते हैं। इस स्थल की भाषा भी पूर्णतः काव्यात्मक है। मिश्र वाक्यों के प्रयोग, संस्कृत तत्सम शब्दों का बाहुल्य आदि तो है ही कल्पना-प्रसूत नूतन तत्त्वों का समावेश भी हो गया है। इसके पश्चात् उत्प्रेक्षा के प्रयोग के कारण कविवर के विशाल काव्यात्मक हृदय के दर्शन होते हैं।

पूरुब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक॥

पूरुब दिसि गिरि गुहा निवासी। परम प्रताप तेज बलरासी ॥
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बन चारी ॥
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा ॥
कह प्रभु ससि महुं मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई ॥६।१२

"मानस के काव्य पक्ष का तो कहना ही क्या है। उसके भीतर मनुष्य-जीवन में साधारणतः आने वाली प्रत्येक दशा और प्रत्येक परिस्थिति का सन्निवेश तथा उस दशा और परिस्थिति का अत्यन्त स्वाभाविक, मर्मस्पर्शी और सर्वग्राह्य चित्रण है।"[६७]

"जहां कविता करने के लिए तुलसीदास कवि की भाषा का प्रयोग करते हैं, वहां वे अद्वितीय नजर आते हैं।"[६८]

समाज-सुधारक

निस्संगता की अवस्था में पहुंचकर सृजन करने वाले कवि हर-हालत में समाज-सुधारक होंगे—यह एक निर्विवाद सत्य है। तुलसीदास ऐसे ही महान् व्यक्ति थे, उन्होंने समाज को सुधारने के लिए आदर्श चरित्रों का निर्माण किया। अतः उनका समाज-सुधारक होना बिल्कुल स्वाभाविक है। युग की विपरीत परिस्थितियों को अपनी क्षमता से उन्होंने एक मोड़ दिया। समाज का प्रत्येक क्षेत्र उनकी विमल क्रांति का चिरऋणी है। एक ही साथ वे उतम कोटि के कवि, अद्वितीय भक्त, गहन दार्शनिक तथा महान् समाज सुधारक भी थे। इतिहास के अनुसार तुलसी और अकबर समकालीन थे। सामाजिक विरूपताओं में शान्तिपूर्ण परिवर्तन और सुधार लाने का श्रेय तुलसी को अधिक है। वे एक सच्चे समाज-सुधारक थे। इसलिए उनका शैक्षणिक नैतिक प्रभाव आज तक है।[६९] डब्ल्यू० सी० मैकडूनल ने लिखा है कि इस धार्मिक नेता एवं कवि का न केवल भारत बल्कि अच्छी वस्तुओं से प्रेरणा ग्रहण करने वाला समस्त विश्व ऋणी है।[७०] साहित्य का वास्तविक लक्ष्य भी अज्ञान, मोह, कुसंस्कार और मुखापेक्षित होने से बचाना ही है।[७१] ऐतिहासिक आलोचना का सूत्रपात करने वाले फ्रांसीसी आलोचक टेंन (Hippalyte Taine) का कहना है कि कवि या लेखक अपनी जाति (Race), परिस्थिति (Milieu) और काल (Moment) की उपज होता है।[७२] वस्तुतः "लेखक या कवि अपने समय की राजनीति और सामाजिक परिस्थितियों से तो प्रभावित होता है और जातीय मनोवृत्ति को भी पैत्रिक सम्पत्ति के रूप में ग्रहण करता है, किन्तु वह स्वयं भी कुछ विशेषता रखता है।"[७३] तुलसी के व्यक्तित्व ने समाज एक नयी दिशा दी। उनमें ऐसी विशेषता थी कि उनके सम्मुख युग को झुकना पड़ा। "रामचरितमानस द्वारा तुलसीदास ने जनता का जो कल्याण किया वह अमर है, अमिट है। लोक-संग्रह और समन्वय की प्रवृत्ति दिखाकर उन्होंने समाज में फैली विश्रृंखलता को जिस प्रकार शांत किया है उसके लिए सभी लोग उनके ऋणी हैं।"[७४]

कबीर सबसे बड़ा समाज-सुधारक था। उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों, असंगतियों, कुरीतियों, अंधविश्वासों और बाह्याडंबरों पर करारी चोट की; निर्भीक, दबंग और अक्खड़ बनकर। तुलसीदास का समाज-सुधारक रूप कबीर की भांति नहीं था। कबीर

थे तो भक्त, पर निर्गुणिया थे। उनके आराध्य राम निर्गुण थे—अगुण अखण्ड, अनन्त अनादि। लेकिन तुलसी ने देखा कि कबीर के राम साधारण जन-मानस की पहुँच से बाहर हैं। निर्गुण राम का न कोई रूप है, न रंग, न कोई चरित्र। समाज को ठोस आधार देने वाले तुलसी ने राम को सगुण बनाकर एक आदर्श चरित्र का निर्माण किया। तुलसी ने इस तथ्य को परखा कि कबीर का निर्गुण ब्रह्म साधारण जनता को सुखी नहीं कर सकता है—

ब्यापक एक ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनन्द रासी॥
अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥१।२३।६-७

अतएव, तुलसी ने सौन्दर्य, शक्ति तथा शील से पूरित राम के आदर्श चरित्र को उपस्थित कर उसीमें निर्गुणत्व की शक्तियों का विनियोग किया है। कबीर और तुलसी, दोनों ने एक-एक राम को प्रस्तुत किया, परन्तु तुलसी का सगुण, आदर्शचरित्रवादी, लोक मंगल की कामना से अभिभूत राम ही जन-मानस का आधार बन सका। इस सर्वशक्तिमान राम को 'दशरथ सुत' कहने वालों पर तुलसी टूट पड़ते हैं, जिनसे उनका आक्रोश स्पष्ट हो जाता है। शिव-पार्वती-संवाद में यह क्रोध अच्छी तरह से अभिव्यक्त हुआ है। शिवजी कहते हैं, हे उमा!

एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥
कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरिपद बिमुख जानहिं झूठ न साँच॥१।११४
सो०—अस निज हृदय बिचारि तजु संसय भजु राम पद।
सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम तम रबि कर बचन मम॥१।११५

इन पंक्तियों में तुलसी का आक्रोश कबीर तथा कबीर की तरह ऐसे व्यक्तियों पर है, जो राम को दशरथ-पुत्र होने के नाते ईश्वर नहीं मानते; और तुलसी की स्थापना है कि यह दशरथ-पुत्र राम, वस्तुतः वही परमेश है—

राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
....
पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोई कहि सिवं नायउ माथ॥१।११६

तुलसी की सूक्ष्मेक्षिका ने इसे अच्छी तरह पहचान लिया कि तत्कालीन समाज सब दृष्टि से निरवलम्ब है। उसे एक ठोस अवलम्ब चाहिए। कबीर का राम अगुण, अखण्ड, सूक्ष्म, रहस्यमय था। अतः तबाह जनता ने शून्य आकाश में निरवलम्ब भटकने से बचने के लिए उनको (निर्गुण ब्रह्म को) ग्रहण नहीं किया और इधर तुलसी ने अपने सगुण राम को सर्वशक्तिमान बना दिया—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भांति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दशरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान ।।१।११८

कबीर ने समाज की सारी विसंगतियों पर तीक्ष्ण व्यंग्य-प्रहार किया तथा अपने निर्गुण राम का प्रचार किया। परन्तु तुलसी ने जन-मानस को आदर्श चरित्र का जो पावन प्रसाद दिया, उससे आज तक जनता लाभान्वित हो रही है और भविष्य में भी होती रहेगी। इस विचार से तुलसी का समाज-सुधारक-रूप कबीर से भिन्न पड़ जाता है। समाज-सुधार की प्रबल भावना के कारण ही उन्होंने आदर्श चरित्रों का निर्माण किया। इसीलिए कविवर ने अपनी रामभक्ति को लोक-धर्म के आदर्श से समन्वित किया। प्राचीन-परम्परा को एकदम उखाड़कर नयी क्रान्ति लाकर वे सुधार नहीं चाहते थे, बल्कि उनके संरक्षण से ही सुधार करना चाहते थे।

तुलसी के पहले जायसी 'पद्मावत' रच चुके थे। जायसी के भी बहुत पहले से चौपाई छन्द प्रचलित था जो इन्द्रावती, मुग्धावती, प्रेमावती, मृगावती आदि से स्पष्ट है। इन रचनाओं का विषय बिल्कुल सांसारिक है, लौकिक है। परन्तु तुलसी-साहित्य की संस्कृति पारलौकिक है। उनके प्रधान नायक राम मानव नहीं, बल्कि मानव शरीर में सर्वेश थे। तुलसी की भक्ति ऐहिक नहीं बल्कि लोकोत्तर है।

चौपाई-दोहा-छन्द के अपनाने में भी हम तुलसी के समाज-सुधारक रूप को स्पष्ट देखते हैं। तुलसी ने सूफी (मुसलमान) कवियों की शैली (चौपाई-दोहा में काव्यरचना) तो अपना ली; लेकिन उन कवियों की विषय-वस्तु ग्रहण नहीं की, क्योंकि तुलसी अपने दृष्टिकोण से समाज में सुधार लाना चाहते थे। सोलहवीं शती के सामाजिक, राजनीतिक ह्रास के दृश्यों के परिवेश में तुलसी का उपर्युक्त समाज-सुधारक का व्यक्तित्व ऊंचा कहा जाएगा। परन्तु आज बीसवीं शती की प्रजातान्त्रिक प्रणाली जब जाति, धर्म, आदि की निरपेक्षता के चश्मे से तुलसी-चित्रित सामाजिक ढांचे को देखती है तो तुलसी खण्डित और अधूरे नजर आते हैं। यह स्वाभाविक है। तुलसी ने तो स्पष्टतः इसे स्वीकार भी किया है कि वे परम्परा से अलग हटकर नहीं बल्कि उसीका पल्ला पकड़कर परिवर्तन करना चाहते हैं—'नानापुराणनिगमागमसम्मतं।' प्रजातन्त्र के चश्मे में कबीर पूर्ण प्रतीत होते हैं, क्योंकि वे पुराने सभी वृक्षों को जड़ से उखाड़कर नए वृक्षारोपण में समाज-हित देखते थे और तुलसीदास उन्हीं पुराने वृक्षों में पानी चढ़ाकर उनसे नये पत्ते और फूल की कामना करने वाले हैं। अतः तुलसी अपने दृष्टिकोण से भी एक समाज-सुधारक हैं।

इस महाकाव्य में काव्य-रसों का भी वर्णन हुआ है तो पूर्ण मर्यादित रूप में। क्योंकि अंततः कवि समाज के लिए है। तुलसी के समाज-सुधारक व्यक्तित्व की भाषा के स्वरूप-निर्धारण में खल, नारी, राजा, मुखिया आदि का वर्णन द्रष्टव्य है।

महाकाव्य के अनेक स्थलों पर खल का वर्णन आया है। खल के वर्णन का प्रधान उद्देश्य है कि वे अपनी खलता त्याग दें और साधुत्व अपना लें। जहां संत के साथ खल का वर्णन है, वहां की भाषा भी संत-गरिमा की तरह है। वंदना-प्रकरण में संत के पश्चात् खल का वर्णन कवि करते हैं—

बंदो खल जस सेष सरोपा। सहस वदन बरनई परदोषा ॥
पुनि प्रनवौं पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना ॥
बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही। संतत सुरानीक हित जेही ॥
बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन परदोष निहारा ॥[३५]

समाज का सबसे बड़ा शत्रु है खल। इन्हें सुधारना साधारण व्यक्ति का काम नहीं है और विपरीत परिस्थितियों में यह काम तो और भी दूभर हो जाता है। खल-वंदना की भाषा में और भक्त-हृदय की भाषा में अधिक अंतर नहीं है। भक्त की भाषा में आत्म-समर्पण की भावना, दैन्य आदि प्रकट होते हैं तो, किसी प्रकार का चमक-दमक नहीं। लेकिन खलों के सुधार में भाषा कई रूप धारण कर सकती है।

यहां भाषा के जिस रूप को हम देखते हैं वह आलंकारिक भी है। उदाहरणों में पौराणिक कथाओं के संकेत भरे हैं। वाक्य-संगठन सुन्दर है। समास-निर्माण का कोई प्रयास लक्षित नहीं होता। उपमा जब भाषा के सौन्दर्य को ढोने में असमर्थ हो जाती है तो वहां रूपक उपस्थित हो जाते हैं। अन्य स्थलों पर भी खलों के वर्णन आए हैं और सब स्थलों की भाषा प्रायः इसी प्रकार की है।

रावण से बढ़कर दूसरा खल 'मानस' में नहीं है। यह रावण अगाध विद्वान है, फिर भी राक्षसी वृत्ति के कारण इनके हृदय के सारे सद्‌गुण नष्ट हो गए हैं। जिनके डर से देवता, राक्षस को रात में नींद नहीं आती है और दिन में डर से अन्न नहीं खाते हैं, उसकी हालत कुत्ते की तरह है। इसकी भाषा का स्वरूप देखें—

जाके डर सुर असुर डेराहीं। निसिन नींद दिन अन्न न खाहीं।
सो दससीस खान की नाईं। इत चितइ चला भड़िहाईं।
छुद्र नदीं भरि चली तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई ॥[३६]

सप्तम सोपान में दो स्थलों पर खल का वर्णन आया है, वहां की भाषा का स्वरूप भी एक समान ही है—

स्वारथरत परिवारविरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी ॥
मातु पिता गुर विप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं ॥
करहिं मोहबस द्रोह परावा। संतसंग हरिकथा न भावा ॥
अवगुनसिंधु मंदमति कामी। वेदबिदूषक परधन स्वामी ॥
बिप्रद्रोह सुरद्रोह बिसेषा। दंभ कपट जिय धरें सुवेषा ॥[३७]

तथा

मन इव खल परबंधन करई। खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई ॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहिमूषक इव सुनु उरगारी ॥
परसंपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससिहति हिम उपल बिलाहीं ॥
दुष्ट उदय उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधमग्रह केतू ॥[३८]

तुलसी युग को सुधारना चाहते थे इसलिए उन्होंने असज्जनों को डराया, भर्त्सना की। उनके चरित्र को सुधारने के लिए शम, दम इत्यादि को पाथेय बताया।

राजनीतिक परिस्थितियाँ भी विषाक्त थीं, अन्याय और अत्याचार का मूर्त

रूप। विषमताओं और अनीतियों को विनष्ट करने के लिए उन्होंने अपना सुझाव दिया। परिवार के प्रमुख सदस्य मुखिया, राजा, राजनीति आदि का वर्णन भी कवि ने किया है और इसकी भाषा भी साधारणतया अलंकारमयी है। शब्द-संगठन और वाक्य-संयोजन छोटे होते हैं। भाषा में आद्यन्त उपदेश और नीतियों का कथन मिलता है—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥

मानस, २।७१।६

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीतिनिपुन नृपु के जसि करनी ॥

मानस, ४।१६

मुखिआ मुखु सो चाहिए खान पान कहुँ एक।
पालइ पोसइ सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक ॥ मानस, २।३१४

राजुनीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा।
विद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम भल पढ़ें किएं अरु धाएं ॥ मानस, ३।२१

नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं ॥ मानस, ७।१०१

समाज के चतुर्दिक सुधार के संकेत सप्तम सोपान के कलि-वर्णन में मिलते हैं। समाज के प्रत्येक क्षेत्र का गहरा विश्लेषण किया गया है। ऐसे वर्णनों की भाषा में एक स्तरता नहीं है। पर वाक्य साधारण हैं, शब्द-योजना सटीक है, व्याकरण की त्रुटि प्रायः नहीं है। समाज की विरूपता का यथार्थ चित्रण यहां मिलता है—

द्विजश्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।
मारग सोइ जाकहुं जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।
....
नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाय होहिं संन्यासी ॥
सुत मानहिं मातु पिता तब्लौं। अबलानन दीख नहीं जबलौं ॥
कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत बको अनुजा तनुजा ॥

मानस, ७।६८-१०२ तक

चतुर्थ सोपान में वर्षा ऋतु और शरद् ऋतु का वर्णन भी सामाजिक सुधार से भरा है। प्रकृति का चित्रण करते समय भी उपमा अलंकार के सहारे भाषा आगे बढ़ती है, और कवि की दृष्टि प्रकृति पर नहीं, बल्कि समाज पर आ जाती है। प्रधान उद्देश्य है समाज-सुधार ही, प्रकृति तो केवल माध्यम है। यहां संस्कृत की तत्सम शब्दावली का आधिक्य है। क्रियाएं कुछ ग्राम्य हैं, भाषा उपमा और उत्प्रेक्षा से युक्त है—

दामिनि दमक रहत घन माहीं। खल के प्रीति जथा थिर नाहीं।
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध विद्या पाएँ।
बुंद अघात सहहिं गिरि कैसें। खल के बचन संत सह जैसें।
अर्क जबास पात बिनु भएऊ। जस सुराज खल उद्यम गएऊ।
कबहुँ प्रबल चल मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत कें उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं ॥ मानस, ४।१४-१७

नारी, समाज की रीढ़ है। तुलसी-काल में नारी का पतन हो रहा था। राजकीय

दुर्व्यवस्था का शिकार नारी-वर्ग की दुर्दशा कवि ने अपनी आंखों देखी थी। अतः इस ओर भी उनका ध्यान गया और प्रसंगवश उन्हें भी सुधारने का प्रयास किया। अनुसूया के द्वारा सीता के प्रति नारी-धर्म का कथन, वर्षा ऋतु के माध्यम से तथा कलि-वर्णन के क्रम में उन्होंने नारी-वर्ग में सुधार लाना चाहा है। इन स्थलों की भाषा मनोहर तथा कोमल पदावली से युक्त है। अलंकार भी हैं, पर स्वल्प। तत्सम शब्दावली की प्रधानता है। सरल तथा मृदुल स्वभाव नारी के चित्रण में भी भाषा की सरलता यहां विद्यमान है। सामाजिक तथ्य काव्य की भाषा में कितना सजीव और प्रभावमय हो सकता है, यहां यह स्पष्ट है—

मातु पिता भ्राता हितकारी। मित प्रद सब सुनु राजकुमारी।
अमित दानि भर्त्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।
धीरजु धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी।
....

प्रति प्रतिकूल जन्मि जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई। मानस, ३।५
महाबृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएं बिगरहिं नारीं।
मानस, ४।१५।७

गुनमंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी।
सौभागिनी बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नवीना॥
मानस, ७।९९।४-५

सारांशतः कहा जा सकता है कि कवि के समाज-सुधारक व्यक्तित्व की भाषा सरस, बहुभाव सम्पन्न, बहु अर्थ मिश्रित है। शब्द-प्रयोग छोटे और सुन्दर हैं। वाक्य भी अधिक दुरूह और लम्बे नहीं हैं। जहां तक अलंकारों की बात है, कवि ने प्रधानतः उपमा का सहारा अधिक लिया है। भाषा की जगमगाहट के वहन में जहां कवि उपमा को असमर्थ पाते हैं, वहां बीच-बीच में उत्प्रेक्षा का प्रयोग करते चलते हैं। दीपक उदाहरण भी है। व्याकरणगत औचित्य है। भाषा में एकरूपता नहीं है। कहीं उपदेश, कहीं नीति, कहीं समाज की यथार्थ बातों से भाषा आगे सरकती जाती है, लेकिन फिर भी, कवि, दार्शनिक आदि रूप की भाषा से समाज-सुधारक की भाषा में भिन्नता अवश्य है।

पंडित तुलसी

तुलसीदास महाकवि होने के साथ-साथ प्रकांड पुराणज्ञाता, ज्योतिषी, गणितज्ञ, संगीतज्ञ और काव्यशास्त्री थे। मानस के वन्दना-प्रकरण में कही गई यह पंक्ति—

"कबि न होउँ नहिं चतुर प्रबीनू।
सकल कला सब विद्या हीनू॥"

मात्र तुलसी का कार्पण्य-प्रदर्शन है। उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास रामचरितमानस में हुआ है, पर ज्योतिषी, गणितज्ञ और संगीतज्ञ व्यक्तित्व की सम्यक् अभिव्यक्ति 'मानस' में नहीं, अपितु दोहावली, विनयपत्रिका में हुई है।

पौराणिक रूप

तुलसी का 'मानस' एक पौराणिक महाकाव्य है। इसमें पुराण शैली का साहित्यिक ग्रहण किया गया है।[७१] उनका सम्पूर्ण महाकाव्य "नाना पुराण निगमागम सम्मतं" है। प्रसंगों में सौष्ठव तथा स्थायी महत्त्व लाने के लिए स्थल-स्थल पर कवि ने पौराणिक वातावरणों का उल्लेख किया है। ऐसी पौराणिक कथाओं से विगत और वर्तमान, दोनों एक साथ जुट जाते हैं, जिससे भाषा में सघनता आ जाती है। ऐसी गहन तथा अत्युत्कर्ष अभिव्यक्ति 'मानस' में सर्वत्र भरे हैं। भाषा के स्वरूप-निर्धारण-हेतु कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

१. राम नाम नरकेसरी कनक कसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रह्लाद जिमि पालहि दलि सुरसाल ॥१।२७

२. महामोहुमहिषेसु बिसाला। राम कथा कालिका कराला ॥१।४७।६

३. रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतम श्रापु परमहित माना ।१.३१७-६

इन पुराण-संकेतक स्थलों की भाषा में संस्कृत तत्सम शब्दावली का आधिक्य है। तद्भव और भाषा के ब्रजीरूप पाये जाते हैं। कहीं तो भाषा सीधे कथ्य की ओर आगे बढ़ जाती है और कहीं रूपक एवं उदाहरण अलंकारों से साहचर्य से आलंकारिक हो जाती है। पौराणिक बिम्बों का यहां प्रयोग सफल कहा जा सकता है।

ज्योतिषज्ञ और गणितज्ञ

रूप की सफल अभिव्यक्ति दोहावली, गीतावली, आदि में हुई है, पर 'मानस' में कुछ संकेत तो अवश्य मिलते हैं। अत: उन संकेतों को एक जगह पर लाकर उनकी भाषा पर विचार किया जा सकता है।

ज्योतिषज्ञ का रूप

१. जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हरष जुत, राम जन्म सुख मूल।
नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ अभिहित हरि प्रीता ।१।१९१

२. मास दिवस कर दिवस भा मरम न जाने कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ, निसा कवन बिधि होइ।
यह रहस्य काहू नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना ।१।१९६

३. मंगलमूल लगन दिनु आवा। हिमरितु अगहन मासु सुहावा।
ग्रहतिथि नखतु जोगु बरबारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू।
पठैदीन्ह नारद सन सोई। गनी जनक कौ गनकन्ह जोई।
सुनी सकल लोगन्ह यह बाता। कहहिं ज्योतिषी आहिं बिधाता।
धेनुधूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल।
विप्रन्ह करेउ बिदेह सन जानि सुगन अनुकूल ॥१।१२

४. सम प्रकासतम पाख दुहुं नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि जगजस अपजस दीन्ह ॥१।७ (ख)

गणितज्ञ

१. संकरु रामरूप अनुरागे। नयन पंचदस अतिप्रिय लागे।
हरिहित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे।
निरखि राम छबि बिधि हरषाने। आठै नयन जानि पछिताने।
सुर सेनप उर बहुत उछाहू। बिधि ते डेवढ़ लोचन लाहू।१।३१७
२. रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा।६।१५।७
३. अस मैं सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर।५।५५।३
४. जोजन भरि तेहिं बदन पसारा। कपि तन कीन्ह दुगुन बिस्तारा।
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवन सुत बत्तिस भयऊ।
जसजस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दून कपि रूप दिखावा॥
—५।२।७-१०

ऐसे स्थलों की भाषा में शुद्ध संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग है। माधुर्य और प्रसाद गुण तो हैं, पर ज्योतिष में यथार्थ कथन होता है, अत: भाषा में यथार्थ कथ्य की झलक है, किसी प्रकार के अलंकार आदि का प्रयोग नहीं है। हां गणितज्ञ की भाषा में मनोविनोद अवश्य भरा है।

संगीतज्ञ

तुलसीदास एक बहुत अच्छे संगीतज्ञ भी थे। विनय-पत्रिका तथा गीतावली और कृष्ण-गीतावली के पद्यों के विविध राग ही इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इन्होंने अपनी कृतियों में वर्णों का प्रयोग उच्चारण के अवयवों की सुकरता की दृष्टि से किया है। जहां पर जिस छंद में उन्होंने कुछ लिखा, वहां प्रसंगानुसार कोमल या कठोर वर्णों का प्रयोग मिलता है। रामचरितमानस की भाषा में भी सांगीतिकता है। अनुनासिक ध्वनि तथा अनुसार के प्रयोग से 'मानस' में सांगीतिकता के स्वर फूटे हैं।[८] संगीतज्ञ तुलसी की भाषा में शब्द-ध्वनियां अनेक प्रकार की हैं। जहां जिस रस की व्यंजना है, वहां उसके अनुसार शब्द-प्रयोग किए गए हैं। कुछ उदाहरण देखें—

जय राम रमा रमनं समनं। भवताप भयाकुल पाहिजनं।
रघुनंद निकंदम द्वन्द्वघनं। महिपाल बिलोकम दीन जनं॥७।१४

यहां भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुण स्पष्ट हैं। क्योंकि यहां शान्त वातावरण में राम की स्तुति की गई है। वीर वरेषु राम की वन्दना में सांगीतिकता तो आई है, पर भाषा ओजगुण सम्पन्न हो गई है। ब्रह्मा की स्तुति में भाषा के इसी रूप के दर्शन होते हैं—

भुजदंड प्रचंड प्रताप बलं। खल बृंद निकंद महाकुसलं।
बिनुकारम दीन दयालहितं। छबि धाम नमामि रमा सतिंह।
भव तारन कारन काज पर। मन संभव दारुन दोष हरं।
सरचाप मनोहर त्रोन धरं। जलजारुन लोचन भूपबरं।६।१११
जे राममंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खलदल गंजनं॥३।३२

नमामि भक्त वत्सलं । कृपालु सील कोमलं ।
भजामिते पदांबुजं । अकामिनां स्वधामदं ।।३।४

नाद-सौन्दर्य भी भाषा की सांगीतिकता के अन्तर्गत है। इसके भी प्रयोग हमें 'मानस' में अनेक स्थलों पर मिल जाते हैं।

काव्यशास्त्रीय रूप

काव्यशास्त्र के क्षेत्र में भी तुलसी की कुछ मान्यताएं हैं। वे अभिव्यंजना से अधिक विषय-वस्तु को महत्त्व देते थे। विषय-वस्तु यदि उत्तम है, तो काव्य की उत्तमता स्वयं सिद्ध है। ग्रामीण बोली में भी श्रेष्ठ रचनाएं हो सकती हैं। शमशान घाट की राख भगवान शंकर की देह में लगने पर पवित्र हो जाती है, अतः महत्ता तो शंकर की है, जिनके साहचर्य से राख भी महीयसी हो जाती है। व्यक्तित्व को भी महत्त्व दिया गया है। इनके अनुसार उत्तम काव्य की रचना उत्तम व्यक्तित्व के बिना असम्भव है। तुलसी ने काव्य-सर्जन के लिए विचार को अनिवार्य माना है। तुलसी के अनुसार कविता को सर्वत्र आदरणीय, सर्वजन हितकारिणी एवं सरल होना चाहिए। इन तथ्यों से सम्बन्धित कुछ पंक्तियां ये हैं—

१. भनिति बिचित्र सुकबि कृतजोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ।
सब गुन रहित कुकबि कृत जानी। रामनाम जस अंकित जानी।
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत अनुग्राही।

२. प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंगभूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी।

३. स्याम सुरभि पय विसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय रामजस, गावहिं सुनहिं सुजान ।। १।१०

४. मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहिगिरि गज सिर सोह न तैसी।
हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना।
जौं बरषै बर बारि बिचारू। होंहिं कबित मुकुतामनि चारू।। १।११

५. जो प्रबंध बुध नहिं आदर हीं। सो श्रम बादि बालकवि करहीं।
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।
सरल कबित कीरति बिमल सोई आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान ।। १।१४

६. आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना।
भावभेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा। १।६

यहां भाषा में सिद्धांत-कथन है। जहां तक भाषा-प्रसाधन का सम्बन्ध है, उसमें उपमा, उदाहरण आदि अलंकार के प्रयोग हैं पर कम संख्या में। वाक्य सरल तथा मिश्र हैं, यहां बिंब का भी प्रयोग है। संस्कृत शब्दों की अधिकता है, कुछ पौराणिक संकेत भी हैं। तुलसी के काव्यशास्त्री रूप में हम पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग पाते हैं।

यथार्थ-कथन और सिद्धांत-निरूपण की भाषा में हम तुलसी के पंडित-व्यक्तित्व को उभरते देखते हैं। इनके पंडित-रूप की भाषा कई प्रकार हो गई है। समाज-सुधारक

की भाषा में बहुरूपता है, पंडित-रूप में अनेकरूपता है, पर इसमें कम है, क्योंकि कवि के पांडित्य प्रदर्शन की भाषा किसी खास विचार की पुष्टि के लिए उसके केन्द्र की ओर अधिक झुकी रहती है। इस भांति "तुलसीदास के काव्यों में उनका निरीह भक्त-रूप बहुत स्पष्ट हुआ है, पर वे समाज-सुधारक, लोक-नायक, कवि, पंडित और भविष्य-स्रष्टा भी थे। यह निर्णय करना कठिन है कि कौन सा रूप अधिक आकर्षक था और अधिक प्रभावशाली था। इन सब गुणों ने तुलसीदास में एक अपूर्व समता ला दी थी। इस संतुलित प्रतिभा ने उत्तर भारत को वह महान् साहित्य दिया जो दुनिया के इतिहास में अपना प्रतिद्विन्द्वी नहीं जानता।"[२८]

संदर्भ

१. मोर्टन प्रिंस, दि अनकंसस, प्रथम संस्करण, लंदन, पृ० ५३।
२. पी० टी० मेकडी, कॉमन प्रिंसपुल्स इन साइकॉलोजी एंड फिर्योलोजी, प्रथम प्रकाशन, पृ० ३३३।
३. जी० डब्ल्यू आलपोर्ट, पर्सनेलिटी, ए साइकोलोजिकल इंटरप्रेटेशन, प्रथम प्रकाशन, पृ० ४८।
४. भामह, काव्यालंकार, २।८७
५. डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु', जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत, १९६३, पृ० ३४।
६. विलियम शेक्सपियर, ए मिड समर नाइट्स ड्रीम, लंदन, १९६०, पृ० २१७।
७ एन ऑथर्स स्टाइल इज ए फेथफुल कॉपी ऑव हिज माइंड।
८. स्टाइल इज दि ड्रेस ऑव थौट।
९. वाल्टर रेले, दि स्टाइल।
१०. बुफों।
११. उद्धृत, मिडलटन मरी, इन दि प्रौबलेम ऑव स्टाइल, पृ० ७१।
१२ डॉ० गुलाबराय, सिद्धांत और अध्ययन, दिल्ली १९६०, पृ० २२१।
१३. डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु', जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत; १९६३, पृ० ४६।
१४. हर्बर्ट रीड, फोर्म्स इन मोडर्न पोयट्री, पृ० ३९।
१५. डॉ० रांगेय राघव, काव्यकला और शास्त्र, पृ० १०९, ११०।
१६ डॉ० शम्भुनाथ सिंह, छायावाद युग, पृ० १८१।
१७. किशोरीदास वाजपेयी, हिन्दी शब्दानुशासन, द्वि० सं०, सं० २०२३, पृ० ३७०।
१८ चार्ल्टन लायड, दि मिरेक्ल ऑव लैंग्वेज, न्यूयार्क, फिफ्थ प्रिंटिंग; पृ० १३।
१९. एलिजाबेथ ड्रिस, डिसकवरिंग पोयट्री, न्यूयार्क, १९३३, पृ० ७३।
२०. रवीन्द्रनाथ ठाकुर, "दि रेलिजन ऑव एन आर्टिस्ट" कोन्टेम्पोरैरी इंडियन फिलॉसफी, सं० राधाकृष्णन और जे० एच० मुइरहेड, लंदन, १९५२, पृ० २७।
२१ रामधारीसिंह 'दिनकर'; मिट्टी की ओर, पटना, १९४६, पृ० ११०।
२२. हुडसन, एन इन्ट्रोडक्शन, टु दि स्टडी ऑव लिटरेचर, पृ० ३९।
२३. डॉ नगेन्द्र, भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, दिल्ली, पृ० १३१-१३२।
२४. रामनरेश त्रिपाठी, तुलसीदास और उनका युग, दिल्ली, १९५३, पृ० ३००।
२५. डॉ० माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास, प्रयाग, १९६५, पृ० ३६७।
२६. डॉ० सियाराम तिवारी, युग प्रभात, 'प्रसाद की नाट्यभाषा' केरल, १६-५-७२, पृ० ९।
२७. रामचरितमानस, १।३६१।
२८. एडविन ग्रीव्ज, ए स्केच ऑव हिन्दी लिटरेचर, जे० आर० ए० एस०; १९१८ ई०, पृ० ५९।

२९. एफ० एस० ग्राउज, दि प्रोलोंग टु दि रामायण ऑव तुलसीदास, जे० आर० ए० एस०, बंगाल, १८७६ ई०, पृ० १७।
३०. एफ० आर० आलचीन, कबितावली, १९६४ ई०, पृ० ४७।
३१. रामचरितमानस, ३।४ छंद, काशिराज संस्करण, पृ० २६६-२६७।
३२. रामचरितमानस, ६।१११ छंद काशिराज संस्करण, पृ० ३८९।
३३. रामचरितमानस, ६।११५ छंद, काशिराज संस्करण, पृ० ३९१।
३४. रामचरितमानस, ७।१४ छंद, काशिराज संस्करण, पृ० ४०३।
३५. रामचरितमानस, ७।१३०
३६. उपरिवत्, ७।५१
३७. उपरिवत्, २। श्लोक ३।
३८. रामचरितमानस, ५। श्लोक ३।
३९. डॉ० रमेश कुन्तलमेघ, तुलसी आधुनिक वातायन से, प्रथम संस्करण, १९६७, पृ० २८५।
४०. श्यामसुन्दरदास, उद्धृत, तुलसीदास ; चिंतन और कला, सं० इन्द्रनाथ मदान, पृ० ११०।
४१. डॉ० उदयभानु सिंह, तुलसी काव्य-मीमांसा, दिल्ली, १९६६, पृ० ३२३।
४२. रामचरितमानस, ६।८०
४३. डॉ० उदयभानु सिंह, तुलसी दर्शन-मीमांसा, लखनऊ, सं० २०१८ वि०, पृ० २६।
४४. डॉ० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, इलाहाबाद, १९७१ ई०, पृ० ४४३।
४५. मानस; १।२२५
४६. मानस, २।९३।४
४७. मानस, १।११६
४८. मानस, १।११७
४९. मानस, ६।१४
५०. मानस, २।१२७
५१. मानस, ७।१३ छंद
५२. मानस, ३।१५
५३. मानस, २।९२
५४. मानस, ३।३९
५५. मानस, ७।१३
५६. मानस, ७।११७
५७. मानस, ७।७८
५८. मानस, ७।४४
५९. मानस, ७।११५
६०. मानस, ७।११८
६१. मानस, १०१।११९
६२. विश्वनाथप्रसाद मिश्र, गोसाईं तुलसीदास, वाराणसी, प्रथम संस्करण, पृ० ५८।
६३. विश्वनाथप्रसाद, मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग-२, काशी, सं० २०१७, पृ० ५५४।
६४. ए० जी० एटीकंस, दि रामायण ऑव तुलसीदास, दिल्ली. १९५५, पृ० ७८।
६५. ए० जी० ग्रियर्सन, जर्नल ऑव रॉयल एसियाटिक सोसाइटी बंगाल, १९०३, प० ४५१।
६६. विश्वनाथप्रसाद मिश्र, गोसाईं तुलसीदास, वाराणसी, सं० २०२२, पृ० १८९।
६७ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, वाराणसी, सं० २०१९, पृ० ६३।

६८. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, दिल्ली, १९६९, पृ० १०२ ।
६९. जार्ज ग्रियर्सन, जर्नल ऑव रॉयल एसियाटिक सोसायटी, बंगाल, १९०५, पृ० ४४७ ।
७०. डब्ल्यू० सी० मैक्डूनल, दि वे ऑव मालवेशन इन दि रामायण ऑव तुलसीदास, यूनिवर्सिटी ऑव शिकागो, इलिनोइस, १९२६ ई०, पृ० १५१ ।
७१. हजारी प्रसाद द्विवेदी, विचार और वितर्क, १९६१ ई०, पृ० ६० ।
७२. डब्ल्यू० एच० हडसन, एन इन्ट्रोडक्शन ऑव दि स्टडी ऑव लिटरेचर, पृ० ३९ ।
७३. डॉ० गुलाबराय, सिद्धांत और अध्ययन, दिल्ली, १९६०, पृ० ३०० ।
७४. विश्वनाथप्रसाद मिश्र, गोसाईं तुलसीदास, बाराणसी, सं० २०२२, पृ० ८० ।
७५. रामचरितमानस, १।४ ।
७६. मानस, ३।२८; ४।१४।५ ।
७७. मानस, ७।३९-४० ।
७८. मानस, ७।१२१ ।
७९. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, गोसाईं तुलसीदास, काशी, सं० वि० २०२२, पृ० १७ ।
८० डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव, तुलसीदास की भाषा, लखनऊ विश्वविद्यालय सं० २०१४ पृ० ३०१ ।
८१. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, दिल्ली; १९५२ ई०; पृ० २४१ ।

सहृदय और रामचरितमानस की काव्यभाषा

सहृदय और काव्यभाषा

काव्यशास्त्र में 'सहृदय' पारिभाषिक शब्द है। सामाजिक, प्रेक्षक, प्रमाता, पाठक, संत, सज्जन, रसिक आदि इसके पर्यायवाची शब्द हैं। सभी पर्यायों में सामाजिक अधिक व्यापक है। भरत ने सहृदय का विस्तृत लक्षण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार सहृदय में अभिजात्य वृत्ति, शांत-प्रकृति, बहुश्रुत-बहुपठ हो। यश, धर्म में लीन, तटस्थ प्रकृति का हो। वह अधिक अवस्था वाला हो जिससे जगत् एवं जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूति रखता हो। षडंग (कल्प, निरुक्त, व्याकरण, शिक्षा, छंद एवं ज्योतिष) का ज्ञाता हो। अभिनय-कुशल, जागरूक और पवित्र प्रकृति का हो। विभिन्न वाद्य-प्रयोग में निपुण हो, पात्रों के वेष-भूषा, अलंकार, सजावट का ज्ञाता हो, धर्म, राष्ट्रभाषा, एवं विभाषाओं से परिचित हो, उसे काव्य, शिल्प, रंगमंच का ज्ञान हो, वह रस एवं भाव के सूक्ष्म भेद को जानता हो, शब्द, छंद-विधान की कला से परिचित हो, किसी वस्तु के तटस्थ मूल्यांकन में दक्ष हो, गुण-दोष का पारखी हो, जगत् के सुखात्मक दृश्यों, घटनाओं में सुख पाता हो तथा समाज के दैन्य को देखकर दीनता का अनुभव करता हो ऐसे ही सच्चे सहृदय है[1a] अभिनवगुप्त[1b] ने कहा है कि सहृदय को 'तन्मयी भवन-योग्यता' से संयुक्त होना चाहिए। कवियों की काव्य-रचना की सार्थकता की पूर्णाहुति सहृदय पर ही निर्भर है। इसका कारण यह है कि कविगण जब रचना-प्रक्रिया में मग्न रहता है तो उसके मन चिंतन के कोने में किसी न किसी रूप में सहृदय की धारणा बनी रहती है, इसीलिए काव्य सर्जना के बाद कवि की रचनाएं सहृदय की अपेक्षा करने लगती हैं। कवि और सहृदय के बीच में भाँषा ही रहती है, जो दोनों को मिलाती है। इसलिए काव्यभाषा से सहृदय का पूर्णतया सम्बन्ध है। क्योंकि जैसे ही कोई पाठक कोई पुस्तक पढ़ना शुरू करता है, पाठक के सम्मुख पहले भाषा ही आती है। अवस्था, रुचि की भिन्नता, प्रातिभ-क्षमता, अध्ययनशीलता आदि के कारण सहृदयों के विभिन्न स्तर हो जाते हैं इसलिए पाठकों की आस्वादन-शक्ति भी भिन्न-भिन्न प्रकार की हो जाती है। यही कारण है कि एक ही कविता से विभिन्न पाठक विभिन्न प्रकार की अनुभूति प्राप्त करते हैं।

निपुण कवियों की भाषा पाठकों के स्तरानुसार मिलती है। कवि इस ओर सचेष्ट भी रहते हैं। इसीलिए सहृदय, भाषा के रूप और अर्थ का निर्धारक है। भाषा प्रयोग को रूपायित करने में सहृदय-संसार का महत्वपूर्ण योगदान है। कवियों की मूल भावनाओं तथा अर्थच्छवियों को सहृदय ठीक-ठीक उसी रूप में पकड़ सकें — इसके लिए सहृदय को भी सचेष्ट रहना आवश्यक है। उत्तमकाव्य के पाठकों का अध्ययनशील तथा प्रातिभ होना जरूरी है। इसके अभाव में कवि के मूल अर्थ तक वह कदापि नहीं पहुंच सकेगा। बड़े-बड़े कवियों की रचनाओं में ये गुण रहते ही हैं। विभिन्न स्तर के सहृदयों के लिए महाकवियों की भाषा में भी अनेक स्तर मिलते हैं। अतः इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सहृदय और काव्यभाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। बल्कि यह कहना अधिक अच्छा होगा कि सहृदय पर ही काव्यभाषा की सार्थकता निर्भर है।

रामचरित मानस में तुलसी ने सहृदय के लिए अनेक पर्यायों का यथास्थल प्रयोग किया है। यथा—

१. सुजान—सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी।
२. सुचितवाला—सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी।
३. श्रोता—श्रोता त्रिविध समाजपुर...।
४. सज्जन—पहिरहिं सज्जन विमल उर,
५. साधु—साधु समाज भनिति सनमानू।
६. रसिक—कवित रसिक न रामपद नेहू।
७. रामपद प्रेमी—प्रभुपद पीति न सामुझि नीकी।
८. नीकी समझ—नीकी समझ...।
९. बुध, मधुकरी स्वभाव—सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही।
१० संत—, गुणग्राही—] मधुकर सरिस संत गुनग्राही।
११. विमल विवेक—सुमति : सो विचारि सुनिहहिं सुमति,
जिन्ह के विमल विवेक।
१२. श्रद्धावान्—जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
१३. सचेतस—जे यहि कथहिं सनेह समेता।
कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
१४. हर्षित होना—जे पर भनिति सुनत हरषाहीं।
१५. चतुर रखवाले—जे गावहि यहि चरित सँभारे।
ते यहि ताल चतुर रखवारे॥

रामचरितमानस एक अनुपम महाकाव्य है। इसकी कथावस्तु का संगठन भी जटिल एवं सूक्ष्म है। सम्पूर्ण महाकाव्य ही श्रोता-वक्ता का परिणाम है। मानस-रूपक के वर्णन के क्रम में तुलसीदास ने लिखा है—

सुठि सुन्दर संबाद बर, बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहिं पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि॥१।३६

चार वक्ता के चार श्रोता हैं —

वक्ता	श्रोता
१. शिव	पार्वती
२. काकभुशुंडि	गरुड़
३. याज्ञवल्क्य	भारद्वाज
४. तुलसी	संत-समाज

अन्य आचार्यों की तरह तुलसी ने भी सामाजिक के गुण बतलाए हैं उनके अनुसार सामाजिक को सुमति सुशील, शुचि, कथा-रसिक और हरिदास होना अनिवार्य है—

श्रोता सुमति, सुसील सुचि, कथा रसिक हरिदास ।
पाइ उमा अति गोप्यमपि, सज्जन करहिं प्रकास । ७।६६ (ख)

हर्बर्ट रीड की अंतर्दृष्टि[१०], डब्ल्यू० एच० ओडेन[२] का सहजबोध, बी० डब्ल्यू० हार्डिंग[३] की बोधगम्यता, और जॉन लिविंग्स्टन लोवेस[४] का सहानुभूतिशील विवेक, आदि सब हम तुलसी में पाते हैं। उनके द्वारा बतलाए पांचों गुण उनके प्रमुख चार श्रोताओं में कूट-कूट कर भरे हैं—

पार्वती :
१. सुमति —धन्य सती पावनि मति तोरी। ७।५४
सुशील—सुन्दर सहज सुशील सयानी, । १।६६
शुचि—अति पुनीत गिरिजा कै करनी, । १।७५
कथा-रसिक—अति आरति पूछऊँ
हरिदास—तुम्ह रघुवीर चरन अनुरागी, ।१।१११

गरुड़ :
२. सुमति—धन्य धन्य तव मति उरगारी। ७।६४
सुशील—सरल सुप्रेम सुखद…७।६३
शुचि—सुपुनीता ७।६३
कथा-रसिक—अब श्री रामकथा बिनबऊं प्रभुतोही
हरिदास—रघुनायक के तुम्ह प्रियदासा। ७।६३

भारद्वाज :
३. सुमति—चतुराई तुम्हारी मैं जानी। १।४६
सुशील मैं जाना तुम्हार गुन सीला। १।१०४
शुचि—सुचि सेवकगुम्ह माम के। १।१०४
कथा-रसिक—चाहहु सुनइ रामगुन गूढ़ा। १।४६
हरिदास—राम भगत तुम्ह मन क्रम बानी। १।४६

संतसमाज :
४. सुमति—गुनागार संसार दुख रहित विगत संदेह। ३।४५
सुशील—सबहिं मानप्रद आप अमानी। ४।३८।४
शुचि—सुचि सुखधामा। ३।४५।७
कथा-रसिक—गावहिं सुनहिं सदा ममलीला। ३।४६।७
हरिदास—ममता मम पद कंज। ७।३८

रामचरित मानस में प्रतिभा एवं मानसिक स्तर के अनुसार सामाजिकों के तीन भेद मिलते हैं—उत्तम, मध्यम और लघु;

श्रोता विविध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल ।
संत सभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल ॥

जो प्रेमपूर्वक सुनकर तथ्य को हृदय में ग्रहण करते हैं, वे नगर के समान (उत्तम) श्रोता हैं । जो समाज की बड़ाई के लिए श्रोता बनते हैं, न विचारपूर्वक सुनते हैं और न हृदय में धारण करते हैं, वे ग्राम के समान (मध्यम) श्रोता हैं । जो यों ही कथा सुनते हैं, न श्रद्धा है और न धारण, वे पुर के समान (निम्न कोटि के) श्रोता हैं ।

कवि और सामाजिक, दोनों की अजस्र प्रतिभा, प्रायः सर्वाधिक आचार्यों ने स्वीकार की है । सोलहवीं शती के साहित्य-क्षेत्र में तुलसीदास का भी यह दृढ़ विचार था कि कवि और सामाजिक की ज्ञान-गूढ़ता एक समान होनी चाहिए । 'मानस' में अनेक स्थलों पर इस तथ्य का उल्लेख मिलता है—

ते श्रोता बकता सम सीला ।
सबदरसी जानहिं हरिलीला ॥

इससे ध्वनित होता है कि कवि के साथ-साथ सामाजिक को भी विषय-वस्तु का अगाध ज्ञान होना जरूरी है । तुलसी ने 'सामाजिक-पद' की अच्छी भूमिका निभाई थी जब उन्होंने अपने गुरु से 'सूकरखेत' में हरि-कथा सुनी थी । परन्तु अचेत एवं बचपन के कारण वैसी समझी नहीं, जैसी चाहिए । क्योंकि उनके अनुसार श्रोता और बकता, दोनों को ज्ञाननिधि होना आवश्यक है—

"श्रोता बकता ज्ञाननिधि कथा राम के गूढ़ ।
किमि समझौं मैं जीव जड़ कलिमल ग्रसित बिमूढ़ ॥"

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि दोनों को एक समान ज्ञान निधि मानते हुए भी श्रोता (सामाजिक) का स्थान उन्होंने प्रथम दिया है । यह तुलसीदास की दृढ़ मान्यता है कि सामाजिक पर ही कवि की कला-कृति अवलंबित है । सचमुच पार्वती, गरुड़, भारद्वाज और संत-समाज के अभाव में क्रमशः शिव, काक, याज्ञवल्क्य एवं कवि आदि अपने हृदय की बात किसे सुनाते ? शिव की घटना ने इसे स्पष्ट कर दिया । जब सती ने दक्ष-यज्ञ में शरीर-त्याग कर दिया तब अकामी शिव भी पार्वती जैसे श्रोता के बिना आकुल हो उठे —शिव पार्वती से कहते हैं;

प्रथम दक्षगृह तव अवतारा । नाम सती तव रहा तुम्हारा ॥
दक्ष जग्य तब भा अपमाना । तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राना ॥
मम अनुचरन्ह कीन्ह मखभंगा । जानहु तुम्ह सो सकल प्रसंगा ॥
तब अति सोच भसउ मन मोरे । दुखी भयउं बियोग प्रिय तोरे ॥

सती का जन्म पार्वती के रूप में हुआ । विवाहोपरांत जब पार्वती ने हरिविषयक कथा सुनाने की प्रार्थना की, तो शिव का हृदय गद्गद् हो गया—

प्रस्न उमा के सहज सुहाई । छल बिहीन सुनि शिव मन भाई ॥
हर हिय रामचरित सब आए । प्रेम पुलक लोचन जल छाए ॥

अनुभूति की सार्थकता अभिव्यक्ति में है और अभिव्यक्ति के लिए योग्य सामाजिक की आवश्यकता है। "सच्चे महाकवि की भांति अपने सामयिक जन-सामान्य की भाषा से पूर्णतया भिज्ञ थे और उसका प्राचीन परम्परा से संबद्ध भाषाओं का भी उन्हें पूर्ण परिज्ञान था।"[10] तुलसी जैसा महान् कवि भी सामाजिक को हमेशा साथ लेकर चलते हैं। उनके अनुसार "किसी रचना का वही भाव जो कवि के हृदय में था, यदि पाठक या श्रोता के हृदय तक न पहुंच सका, तो ऐसी रचना कोई शोभा नहीं प्राप्त कर सकती, उसे एक प्रकार से व्यर्थ समझना चाहिए।"[11]

मनि मानिकमुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं समल शोभा अधिकाई॥
तैसहि सुकवि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥[12]

तुलसीदास इस विषय में सतत जागरूक हैं। पाठक या सामाजिक की सुविधा या असुविधा का ध्यान उनको अधिक है। वे समाज के हैं और समाज के लिए लिख रहे हैं। अतः सामाजिक की अपनी भाषा में काव्य की भाषा घुल-मिल जानी चाहिए। तुलसीदास इतने प्रकांड पंडित, अगाध विद्वान्, अद्वितीय कवि थे यदि चाहते तो संस्कृत भाषा में ही अपनी सारी रचनाएं करते। परन्तु तुलसी के युग का समाज और सामाजिक, दोनों की स्थिति अच्छी नहीं थी। अतः तुलसी ने जन-भाषा अपनाई क्योंकि यह जनभाषा तत्कालीन सामाजिकों की सर्वाधिक परिचित भाषा थी। तुलसी का संकेत है कि सामाजिक के अनुरूप ही काव्य की भाषा शोभानीय है—

सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान॥[13]

सांसारिक जीवन के क्षेत्र में साधारण मनुष्य और कवि तो एक समान ही दीखते हैं, परन्तु अन्तर्दृष्टि की पहचान, गहन अनुभूति एवं सशक्त अभिव्यक्ति से कारण कवि आखिर कवि ही है। सामाजिक वातावरण से कवि मुक्त नहीं रह सकता। काव्य तो मूल कवि-मानस का सृजन है। तुलसीदास समन्वयवादी लोकदर्शी कवि थे। मानव जीवन के विविध पक्षों का उन्होंने अवलोकन किया था। वे समाज की मंगल कामना से अभिभूत एक अनन्य भक्त, दार्शनिक कवि थे। उनकी कृतियां राजनीतिक परिस्थितियों से बिल्कुल प्रभावित हैं परन्तु फिर भी उनका काव्य इतिहास नहीं है। क्योंकि आत्मा की मुक्तावस्था में स्वानुभूति लोकानुभूति बन जाती है।

तुलसी ने पाठक का ध्यान रखा है और अच्छी तरह निभाया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'रामचरितानस' एक प्रबन्ध काव्य है, जिसमें कथा का प्रवाह अनेक घटनाओं पर से होता हुआ लगातार चला चलता है। इस दशा में कथा-प्रवाह में मग्न पाठक या श्रोता का असल बात की ओर ध्यान दिलाते रहने की आवश्यकता समय-समय पर कवि को अवश्य मालूम होगी।"[14] जनता का तुलसी से घनिष्ठ सम्बन्ध था। ग्रीब्ज के अनुसार इंग्लैण्ड के किसी कवि का जनता से वह सम्बन्ध नहीं रहा, जैसा इस देश की जनता का तुलसीदास से है।[15] इसका कारण यह है कि तुलसी ने जो कुछ लिखा जनता की भाषा में लिखा। जे० एन० फरवहार ने तुलसी की इस

सूक्ष्मता को परखा था। उनके अनुसार वह जनता के लिए जिए और उन्हें प्रेम करते रहे। उन्होंने जनता की भाषा में श्रेष्ठ शिक्षा दी।"[१५]

परब्रह्म राम की लोकमंगलमयी पवित्र का कथा सृजन तुलसी के मानस में हुआ है। सब काल के सामाजिकों की मानसिक चेतना के स्तर अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं। आज तो पाठकों के स्तर में अनेक उपभेद हो गये हैं। क्योंकि यह युग विशेषज्ञता का है। पाठक भी अनेक वर्गों में विभक्त हो गया। राजनीतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक नव्यशास्त्रवादी आदि अनेक प्रकार के पाठक हैं। तुलसी के मानस का इन विविध शीर्षकों में विश्लेषण भी हुआ है, लेकिन मोटे तौर पर तुलसी के दो प्रकार के पाठक हैं -- भक्त पाठक और साहित्यिक पाठक।

सम्प्रदायनिष्ठ धार्मिक भक्तों की अन्तश्चेतना को सर्वप्रथम 'रामलीला' के रूप में आकर्षण मिला और तुलसी के रामचरितमानस ने उसमें इतना योग दिया कि सम्पूर्ण भारत की मिट्टी भक्ति की सुरभि से मंह-मंह हो उठी। भक्त एवं धर्मनिष्ठ पाठक काव्य की गहराई एवं कवि की कल्पना से सम्बद्ध नहीं होता, बल्कि भगवान राम की मंगलमयी भक्तवत्सलता, व्यापक उदारता, क्षमाशीलता आदि पर उनका हृदय अवलंबित रहता है। महान् दार्शनिक, अद्वितीय भक्त एवं समाज-सुधारक होने के कारण विश्व भर की आंखें तुलसी पर गईं। साहित्यिक पाठकों, अध्येताओं की कमी नहीं, फिर भी रामचरितमानस ने सामाजिक को जितनी अधिक संख्या में धार्मिक भक्त, रसिक, श्रोता बनाया, उतनी संख्या में साहित्यिक नहीं। एफ० एस० ग्राउज भी तुलसी की इस भक्ति की व्यापकता एवं उसकी विशेषता को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार रामचरितमानस हिन्दू परमार्थ के दार्शनिक ईश्वरवाद के विरुद्ध भक्तिपूर्ण प्रतिरोध है।[१७] तुलसी का अधिकांश पाठक भक्त जरूर है, साहित्यिक हो या न हो। स्वयं कवि भी एक पहुंचे हुए अनन्य भक्त हैं, तब कवि। उनकी भक्तिजन-जन के हृदय की भक्ति बन गई, इसका कारण यह है कि उनकी भक्ति-भावना लोकोन्मुखी है। तुलसी जैसे अनन्य भक्त हैं, वैसे ही विरक्त सन्त भी, दार्शनिक और महाकवि भी। जीव के त्रिविध दुखों से मुक्ति के लिए अपने जीवन को उन्होंने समाज-कल्याण में लगा दिया। राजनीतिक पराजय से आक्रांत, शासन से पीड़ित जनता ने तुलसी के मंगलमूल राम में शान्ति पाई और पाई खोई मनुष्यता के चिह्न, जहां से उनके पैर फिसले थे। जनता निर्गुण राम से ऊब गई थी, उन्हें आवश्यकता थी एक ऐसे रूप की जिसमें सौन्दर्य शील और शक्ति, तीनों विद्यमान हों। तुलसी के भक्त हृदय ने उन्हें मनोनुकूल आदर्श नायक दिया। आचार्य शुक्ल के अनुसार "तुलसी की गम्भीर वाणी, शब्दों की कलाबाजी, उक्तियों की झूठी तड़क-भड़क आदि खेलवाड़ों में भी नहीं उलझी है। वह श्रोताओं या पाठकों को ऐसी भूमियों पर ले जाकर खड़ा करने में ही अग्रसर रही है जहां से जीते-जागते जगत् की रूपात्मक और क्रियात्मक सत्ता के बीच भगवान की भावमयी मूर्ति की झांकी मिल सकती है।[१८] भावुक कवि की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि मनुष्य के हृदय में घुसकर उसकी भावनाओं का उथल-पुथल लख ले और फिर उसका कलापूर्ण निरूपण करे।[१९] भक्त पाठक के साथ कवि की काव्यभाषा सात्विक

हो जाती है, भाव-प्रवण एवं आर्द्र हो जाती है। श्रोताओं का अन्तःकरण भक्ति-सरिता में इस भांति प्रवाहित होता है कि बाह्य सुधि कुछ नहीं रहती—

"मम गुन गावत पुलक सरीरा।
गद्‌गद् गिरा नयन बह नीरा।"[२०]

एवं

निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी।
कहि न जाइ सो दसा भवानी।
दिसि अरु बिदिस पंथ नहिं सूझा।
को मैं चलेउं कहां नहिं बूझा।।[२१]

कवि तुलसी की भाषा भक्त-पाठकों के लिए सदा ग्राह्य बनी रही, असुविधा का प्रश्न ही व्यर्थ है। आचार्य शुक्ल ने मानस के इस प्रभाव का वर्णन करते हुए कहा है—"कथाएं तो और भी कही जाती हैं, पर जहां सबसे अधिक श्रोता देखिए, उन्हें रोते और हंसते पाइए, वहां समझिए कि तुलसीकृत रामायण हो रही है। साधारण जनता के मानस पर तुलसी के मानस का अधिकार इतने से ही समझा जा सकता है।"[२२] वस्तुतः भारतीय जनता मानस पर सर्वाधिक प्रभाव कविवर तुलसी का ही है। इस चतुर्दिक विशिष्टता एवं व्यापकता का एक कारण यह भी है कि उनकी शैली सुललित तथा सुचारु है : प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर आवश्यक प्रतीत होता है, शब्द छोटे हैं और समास-निर्माण की ओर कोई प्रयास परिलक्षित नहीं होता है और ध्वनि-संकलन ऐसा है जो श्रोता के कानों को कहीं भी कर्कश नहीं प्रतीत होता।[२३] सबसे बड़ा तुलसी का भक्त्यात्मक प्रभाव तो यह है कि तुलसी के साहित्यिक पाठकों का हृदय भी अधिकांशतः भक्ति के रंग में रंग जाता है। प्राच्य एवं पाश्चात्य जगत् के जितने तुलसी-साहित्य के अध्येता तथा लेखक हैं, तुलसी के प्रति श्रद्धा से अवनत हैं। आचार्य शुक्ल का हृदयोद्‌गार देखें, वे कहते हैं—"जी में आता है कि अवसर प्राप्त करने पर चित्रकूट में रहूं और संध्या समय 'रामचरितमानस' की कथा कहूं—व्यासों की भांति नहीं सीधे-सीधे शब्दों में मानस का मर्म समझने के लिए।"[२४]

तुलसी के दूसरे वर्ग के पाठक हैं—साहित्यिक समुदाय। रामचरितमानस हिन्दी-साहित्य का श्रेष्ठतम महाकाव्य है। भावना और कल्पना का सौन्दर्य, भाषा की सरलता और चारुता, विषय-वस्तु की उदात्तता एवं उसका अजस्र सुललित प्रवाह, जीवन की प्रत्येक दशा का हू-ब-हू चित्रांकन, मानव-मन की गूढ़ एवं जटिल पकड़ आदि के कारण तुलसी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ महाकवि हैं। क्योंकि "जीवन की इतनी दशाओं का पूर्ण मार्मिकता के साथ जो चित्रण कर सका, वही सबसे बड़ा भावुक और सबसे बड़ा कवि है, उसी का हृदय लोक-हृदय स्वरूप है।"[२५] काव्य-कला की श्रेष्ठता, अनुपमेयता के कारण ग्रियर्सन ने तुलसी को एशिया के तीन या चार महालेखकों में से एक माना है।[२६]

तुलसी की मेधा ने युग-प्रतिष्ठित भाषा को छोड़कर "सुरसरि सम सब कंह हित होई" के लिए जन-भाषा को ग्रहण किया और जन-भाषा में रचित महाकाव्य ने

विश्व में अपना महत्त्व स्थापित कर लिया, यह एक महान् सत्कवि की प्रतिभा की महादेन है। तुलसी के इस साहित्यिक उपहार के महत्त्व का साहित्यिक पाठक ही स्वागत करेंगे, मूल्यांकन करेंगे। एफ० ई० की ने साहित्यिक क्षेत्र में तुलसी की कलात्कमता के विषय में कहा है कि—

"एण्ड नो डाउट ही वाज़ अफेक्टेड बॉइ दि आरटिस्टिक इनफ्लुएेंस इन लिटरेचर ह्विच वाज़ कैरेक्टरिस्टिक ऑव दि इज इन ह्विच ही लिव्ड।"[२७]

रामचरितमानस महाकाव्य की शाश्वत उदात्तता से परिपूर्ण है। यह समस्त भारतीय जीवन का प्रतिनिधि महाकाव्य है। मानव-जीवन की भाव-विविधता को जितने सशक्त माध्यम से तुलसी ने अभिव्यक्त किया, उतना किसी ने नहीं। लोक-हितैषी भावनाओं का उदात्त आकलन, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के आदर्श रूप मानस से मिलते हैं। और सबका माध्यम है भाषा। सचमुच भाषा की क्षमता ऐसी होनी चाहिए जो पाठक को विमुग्ध कर सके, उन्हें साधारणीकरण की भूमि पर बिठा सके। कवि की परिनिष्ठित भाव एवं कल्पनायुक्त रस, गुण, अलंकार, वृत्तिमयी भाषा साहित्यिक पाठक को सबसे अधिक आकृष्ट करती है। महाकाव्य के रचयिता को प्रत्येक पात्र के हृदय की भावनाओं, प्रतिक्रियाओं के अनुरूप चलना पड़ता है। "काव्य में प्रत्येक पात्र के प्रत्येक कर्म के प्रेरक भाव का विश्लेषण नहीं होने से पाठक या श्रोता उसका हृदयंगम नहीं कर सकता।"[२८] भाषिक साहित्यिकता एवं माधुर्य की सारी विशेषताएं मानस में पाते हैं—

परिस्थित्यनुकूल भाषा— इसका प्रयोग मानस में बड़े वैशद्य और वैविध्य के साथ हुआ है। सामान्य स्थितियों में शैली साधारण बोल-चाल की भाषा की है, अन्य स्थितियों में शैली प्रसंगानुकूल विविधतापूर्ण तथा द्वन्द्वात्मक भी है। ऐसी स्थितियों में हृदय के भावों के चित्रण करने में शैली कोमल और सरस है, जैसे जनकवाटिका, रामवन गमन, चित्रकूट आदि। परन्तु दुर्धर्ष एवं अरमणीय स्थलों के चित्रण की भाषा शैली तदनुरूप भाषा में की गई है, जैसे लंका का युद्ध-वर्णन आदि। साहित्यिक विशिष्टताओं के आस्वादनकर्त्ता तुलसी के साहित्यिक पाठक हैं। आज तुलसी के साहित्यिक पाठकों की संख्या में वृद्धि हो रही है। इसलिए कि आज के युग की अपनी महत्ता है। वैज्ञानिक युग के कारण तर्क और बुद्धि आगे बढ़ती जा रही है और हृदय का देश कुछ पीछे छूटता जा रहा है। शोधात्मक कार्य भी धड़ल्ले से चल रहा है। साहित्यिक पाठकों की दृष्टि में तुलसी के अनेक प्रकार के व्यक्तित्वों का विवेचन किया गया है। कुछ साहित्यिक पाठकों को तुलसी के प्रति उतनी श्रद्धा इसलिए नहीं है कि उन्होंने कथाओं के बीच-बीच में प्रसंगवश व्यक्तिगत नारी की निन्दा न कर नारी-जाति की निन्दा की है—

ढोल गंवार सूद्र पसु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी ।।५।५९।६

इसी तरह तुलसी बीच-बीच में भगवान राम की स्मृति दिलाते चलते हैं, जो उत्कृष्ट साहित्यिकों को अच्छा नहीं लगता। कोई साहित्यिक बालि-वध को अनुचित बताते हैं

तो कोई विभीषण को भातृ-द्रोही। लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन प्रसंगों का जितना सम्बन्ध विषय-वस्तु से है, भाषा से नहीं के बराबर। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि तुलसी की भाषा में साहित्यिक पाठकों के रसास्वादन हेतु रस-पीयूष है, आनन्द-संजीवनी है। हां तव एक बात अवश्य ध्यातव्य है कि तुलसी का साहित्यिक पाठक यदि कोरा साहित्यिक होगा तो तुलसी-काव्य का रस अच्छी तरह से नहीं ले सकेगा। क्योंकि इन्होंने पहले ही कहा है कि वक्ता और श्रोता को ज्ञाननिधि तो होना ही है, साथ-ही-साथ श्रद्धावान होना अनिवार्य है। उनके अनुसार—

जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कँह मानस अगम अति जिन्हहिंन प्रिय रघुनाथ ॥१।३८

तुलसी कवि हैं, परंतु अत्यंत भावुक कवि हैं। जो पाठक कविवर की भावुकता के साथ-साथ चलेगा, वही रामचरितमानस का सच्चा साहित्यिक पाठक होगा। इसकी स्पष्टि के लिए पंचम सोपान का एक प्रसंग देखें। जब हनुमान जी सीता की खोज में लंका प्रवेश करते हैं, तब कविवर लिखते हैं—

मंदिर मंदिर प्रतिकरि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा।
गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं ॥
सयन किए देखा कपि तेही। मंदिर महँ न दीख बैदेही ॥५।५

अत्याचारी रावण ने सीता का हरण किया—यह समाचार जटायु से ही राम को मिल चुका था। वे सब राक्षस हैं एवं राक्षस की परिभाषा तुलसी ने दी है—

बाढ़े खल बहु चोर जुवारा। जे लंपट परधन परदारा।
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन्ह करवावहिं सेवा ॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी ते जानहुं निसिचर सब प्रानी ॥[२९]

और लंका में रहने वाले राक्षसों का काम क्या है—

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला ॥
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाँउ पुर आगि लगावहिं ॥
सुभ आचरन्ह कतहुं नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई ॥
नहिं हरि भगति जज्ञ तप ज्ञाना। सपनेहुं सुनिय न बेद पुराना ॥
बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, जिन्ह के पापहि कवनि मिति ॥[३०]

ऐसे राक्षसों के निवास-स्थलों को अधिक से अधिक 'घर' कहा जा सकता था। लेकिन कवि ने राक्षसों के सब घरों को 'मन्दिर' कह दिया। यों, अमरकोश में 'मन्दिर' का एक अर्थ 'गृह' भी रखा गया है, पर यह अप्रचलित अर्थ कोश तक ही सीमित है। प्राचीन काल से अब तक 'मन्दिर' किसी पवित्र देवालय को कहा जाता है, लेकिन राक्षसों के घर क्या खाक पवित्र होंगे? जहां 'कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं'[३१] कोरा साहित्यिक पाठक तो तुरन्त कवि के शब्द-प्रयोग की असमर्थता कह देंगे। तथ्य कुछ और है जो भावुक हृदय ही पकड़ सकता है। कविवर [illegible] जानते हैं कि राक्षसों में पवित्रता, शुद्धता,

निष्पापता नहीं है, फिर भावना के आवेग के कारण वे मानते हैं कि चाहे कैसी भी खराब जगह क्यों न हो, हनुमान जी के प्रवेश से वह 'घर' रहा कैसे ? वह तो मन्दिर-स्वरूप बन गया। हनुमान सीता की खोज करने में प्रत्येक घर में प्रवेश करते हैं, सब को तुलसी ने मन्दिर कहा। यह है कवि की भावुकता और रामचरितमानस का सही तथ्य। पुनः हनुमान जी राक्षसराज रावण के घर में प्रवेश करते हैं, तो उस महापापी के घर को भी तुलसी के भावुक हृदय ने 'मन्दिर' बना दिया। उसके बाद हनुमान की दृष्टि एक 'भवन' पर पड़ी, वह भवन विभीषण का था। इनके भवन में राम के धनुष-बाण अंकित थे, तुलसी के अनेक पौधे थे। सचमुच में, इस सम्पूर्ण राक्षस नगरी में कोई पवित्र, शुद्ध और मन्दिर कहा जाने लायक घर था, तो विभीषण का; लेकिन विभीषण के घर को मात्र भवन कहा, मन्दिर नहीं। इसमें कवि की भावुकता के साथ-साथ कला की पैनी दृष्टि है। विभीषण के भवन को देखकर हनुमान विचार करते हैं कि यह भवन तो किसी राम-भक्त का है, और राम-भक्त क्या अपनी माता का हरण करेगा ? इस भावना के कारण हनुमान ने उसमें प्रवेश ही नहीं किया, अलग से ही देखा—"भवन एक पुनि दीख सोहावा।" यह है कविवर की प्रासंगिक भावुकता और मार्मिक सूझ। यहां यदि कोरा साहित्यिक होगा तो तुलसी की कथा का रस-पान नहीं कर सकेगा। इस लाभ के लिए भावुक साहित्यिक बनना पड़ेगा। रामचरितमानस की भाषा को लेकर साहित्यिक पाठकों को यही थोड़ी असुविधा है कि कुछ पाठक तुलसी की भावुकता को पहचान नहीं सकते हैं। ऐसी असुविधा प्रायः कारुणिक प्रसंगों में हो सकती है।

सामाजिक के समक्ष काव्यभाषा के सम्बन्ध में साधारणतः दो असुविधाएं रहती हैं—शब्दावली की और व्याकरण की।

रामचरितमानस एक विशाल ग्रन्थ है, जिसमें संस्कृत बंगला, फारसी, देशज, राजस्थानी, अवधी, ब्रजी, बघेली, भोजपुरी, आदि अनेक भाषाओं, बोलियों का एक सुन्दर संगुंफन है। इसके अतिरिक्त कवि के नव-निर्मित शब्द भी हैं। 'मानस' के पाठकों को इसकी भाषा समझने के लिए उपर्युक्त सब भाषाओं की जानकारी आवश्यक है; नहीं तो अर्थ तथ्य से दूर पड़ जाएगा। ऐसी स्थिति में शब्दावली की समस्या तो कुछ न कुछ पाठकों को रहेगी ही। कवि के उदार हृदय ने सब के साथ सम्बन्ध निभाया। डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र ने कहा है कि "राम काव्य में हम न केवल विपुल शब्दावली पाते हैं, किन्तु विपुल प्रयोगावली के भी दर्शन होते हैं।"[१] कविवर ने 'मानस' में जिन शब्दों को जिस युग में लिखा आज भी उन शब्दों का वही अर्थ हो, निश्चित नहीं। यह भी हो सकता है कि जिस शब्द को जिस अर्थ के साँचे में ढालकर लिखा, आज उसका अर्थ बिल्कुल बदल गया हो। इसलिए तुलसी के कुछ शब्द पाठकों के लिए अपरिचित से लगते हैं। जैसे इन्द्र के लिए 'सक्र' आदि शब्द का प्रयोग। षष्ठ सोपान में राम के विराट् रूप का वर्णन करते हुए मंददोदरी कहती है—

रोमराजि अष्टादस भारा।

उदर उदधि अधगो जातना।
जगमय प्रभु का बहु कल्पना ।।[33]

रोमावली के लिए 'रोमराजि' का प्रयोग है। बारह करोड़, तीस लाख, एक हजार छह सौ साठ वृक्षों की संख्या के लिए तुलसी ने 'अष्टादसभार' शब्द का प्रयोग किया है जो सचमुच में पाठक की रस-धारा में बाधक बन जाते हैं। इसी प्रकार 'गुदा' के लिए 'अधगो' शब्द भी थोड़ी देर के लिए पाठकों को रोक लेता है। परन्तु ध्यातव्य यह है कि ऐसे शब्द मानस में बहुत कम है

पाठकों के समक्ष भाषा की एक समस्या तब भी आती है, जब किसी रमणीय प्रसंग के वर्णन के क्रम में लगभग तीन दर्जन उपमाओं का जाल बिछा देते हैं। रामचरितमानस के महत्त्व-वर्णन में कविवर लिखते हैं—

रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिअ सुभग सिंगारू ।।
जगमंगल गुग्रामराम के। दानि सुकुति धन धरम धाम के।।
सदगुर ज्ञान विराग जोग के। बिबुधबैंद भव भीम रोग के ।।
जननि जनक सिअ राम पेम के। बीज सकल ब्रत धरम नेम के ।।
समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के ।।
सचिव सुभट भूपति विचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के ।।
काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन मन बन के ।।
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के ।।
मंत्र महामनि विषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के ।।
हरन मोह तम दिनकर करै से। सेवक सालि पाल जलधर से ।।
अभिमतदानि देवतरुबर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से ।।
सुकबि सरद नभ मन उड़गन से। रामभगत जन जीवन धन से ।।
सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जग हित निरुपाधि साधु लोग से ।।
सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से ।।

कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाषंड।
दहन राम गुनग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड ।।
रामचरित राकेसकर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु ।।[34]

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा की ऐसी गुंफित भाषा साधारण पाठकों के समझ थोड़ी देर के लिए समस्या बन जाती है, और भाषा के ऐसे रूप मानस में अनेक स्थलों पर हैं।

तीसरी बात यह है कि जब कवि दार्शनिकता की गहराई में जाकर वर्णन करने लगता है, तब भी कभी-कभी पाठक की स्वाद-सरिता अचानक धीमी पड़ जाती है, वेद द्वारा राम की स्तुति में कवि ने संसार की जो दार्शनिक व्याख्या की है, वह इसी प्रकार की है, यथा—

अव्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षटकंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने ।।

फल जुगुल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे ।
पल्लवत फुल्लत नवल नित संसार बिटप नमामहे ।।[३५]

व्याकरण की समस्या भी कभी बाधक बन जाती है । तुलसी के रामचरितमानस को हम आज के व्याकरण ग्रन्थ की कसौटी पर कसकर उसके साथ उचित न्याय नहीं कर सकते । तुलसी के पूर्व अवधी में कोई व्याकरण नहीं था । "अतः मानस की भाषा स्वयं ही अवधी के व्याकरण की व्यवस्था का आधार प्रस्तुत करती है ।"[३६] तुलसी ने व्याकरण को सुचारु रूप दिया अवधी में और उसमें विपुल नूतन प्रयोग भी किए । मानस में कुछ स्थल ऐसे है, जहां एक वाक्य के अन्तर्गत अनेक छोटे-छोटे वाक्य समाहित हो गए हैं और तब वाक्य ने इस भांति विराट् रूप धारण कर लिया है कि एक वाक्य में उन सब की अन्विति सहसा पाठक बैठा नहीं पाता । एक उदाहरण दिया जाता है—

बंदौं गुरुपद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।।
अमिअ मूरिमय चूरनु चारू । समन सकल भव रुज परिवारू ।।
सुकृत संभुतन बिमल बिभूती । मंजुल मंगल मोद प्रसूती ।।
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी । किएँ तिलक गुन गन बस करनी ।।
श्री गुरुपद नख मनि गन जोती । सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती ।।
दलन मोहतम सोसु प्रकासू । बड़ें भाग उर आवई जासू ।।
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के । मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ।।
सूझहिं रामचरित मनि मानिक । गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ।।
जथा सुअंजन अंजिदृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कोतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान ।।[३७]

काव्य भाषा को लेकर सामाजिक की एक कठिनाई यह भी हो सकती है कि उसमें कवि की गहन भावनाओं की अभिव्यक्ति को हृदयंगम करने की शक्ति है या नहीं । तुलसी के पाठकों के समक्ष यह असुविधा है तो इसका तात्पर्य यह है कि उनमें भाषा एवं शब्द-ज्ञान की उचित जानकारी नहीं है । फिर भी "तुलसी की रामायण लगभग पांच-छह स्तर के पाठकों को 'अपील' करती है । एक स्तर के पाठक उसकी कथावस्तु पर रीझते हैं, दूसरे स्तर के पाठक उसके पात्र-निवेश और चारित्रिक गरिमा पर 'वाह-वाह' करते हैं, तीसरे स्तर के पाठक रामायण की पदशय्या और भाषा-माधुर्य पर मचलते हैं, चौथे स्तर के पाठक उसकी उक्तिवक्रता, अवरेब और शोभात्मक विच्छिति पर बलि जाते हैं तथा जो सर्वाधिक उन्नत स्तर के पाठक हैं, वे सम्पूर्ण कृति में व्याप्त जीवन-दर्शन की मांगलिक विशिष्टताओं पर आनन्दमग्न चिंतन करते हैं । अर्थात् तुलसी की रामायण इसलिए भी महान और जनस्वीकृति के योग्य है कि उसके पास प्रत्येक स्तर के पाठक को उसके (पाठक के) अनुकूल कुछ न कुछ देने के लिए अवश्य है ।"[३८]

लेकिन, महान् कवि अपनी उदात्त कल्पना को रूपायित करने के लिए यदि हमेशा पाठकों की सुविधा का ध्यान रखे तो उसकी भाषा साधारण एवं गंवारू हो जाएगी । महाकवि की रचना-पद्धति और माध्यम यदि सामाजिकों को आगे बढ़ने से कहीं रोक लेते हैं तो दूसरी ओर यह भी एक महान् प्रतिभावंत मनिषी की अभिव्यक्ति-

प्रक्रिया है। कभी-कभी पाठकों के लिए अबोधगम्य भाषा ही किसी महाकवि की भाषा में नवीन भव्य प्रयोगों के संकेतक होते हैं। टी० एस० इलियट ने इसे स्पष्ट शब्दों में लिखा है—"सम राइटर्स अपियर टू बिलीव देट इमोसंस गेन इन इनटेन्सिटी थ्रू बींग इनआरटीकुलेट परहैप्स दि इमोसंस आर नाट सिगनीफिकेन्ट एनफ टू इनड्यूर फुल डेलाइट"[३९] कथावस्तु, भाव, कल्पना, रस, अलंकारादि सबके क्षेत्र में महान् प्रतिभा कुछ नया रूप लाती है। ऐसी स्थिति में, महान् कवियों की भाषाओं का पाठकों के लिए कुछ दुरूह बन जाना स्वाभाविक है। प्रत्येक विमल क्रान्ति के सपूत भारती के समक्ष सामाजिक को लेकर ऐसे दोषारोपण कुछ न कुछ अवश्य आएंगे।

कवि विशेष प्रयोक्ता होता है। वे आवश्यकतानुसार दोनों प्रकार की भाषा लिख सकते हैं। रामचरितमानस भी भोले-भोले ग्रामीणों से लेकर प्रकाण्ड पण्डितों, महान् भक्तों, दार्शनिकों तक एक समान आदरणीय है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि—

१. तुलसीदास ने प्राचीन आचार्यों की तरह सामाजिक की मान्यता स्वीकार की। उन्होंने कवि और सामाजिक दोनों को ज्ञाननिधि एवं भावुक बतलाया।
२. रामचरितमानस के पाठकों को इसकी भाषा के सम्बन्ध में असुविधा नहीं है। इसकी भाषा सरल, सुबोध एवं प्रसंगानुकूल है।
३. तुलसी ने पाठकों के मानसिक स्तर पर भी पूरा ध्यान रखा है और तदनुकूल भाषा विन्यास किया है।
४. भक्त और धार्मिक पाठकों को भक्ति-मणि मिल जाती है, काव्य-कलाओं के तत्वों से जरूरत नहीं रहती है, इसलिए आनन्द ही आनन्द है।
५. साहित्यिक पाठकों के समक्ष कुछ समस्याएं आती हैं। तुलसी मतानुसार सामाजिक को मात्र साहित्यिक न होकर भावुक साहित्यिक होने की अपेक्षा है।
६. सार्वसाधारण पाठकों को काव्यभाषा-सम्बन्धी थोड़ी समस्याओं से जूझना पड़ता है।

जैसे अप्रचलित पुराने शब्द, रूपकों और उपमाओं का अम्बार, गूढ़ दार्शनिकता, एवं लम्बे समास की दुरूहता आदि। लेकिन मानस के परिचित पाठकों के समक्ष यह समस्या नहीं रहती हैं। इसका कारण है तुलसी की अतिशय लोकप्रियता। जिससे भारत में रहने वाला कोई भी हिन्दू, चाहे वह राजकुमार हो अथवा कुटीचर—ऐसा न होगा जो इसकी अति प्रसिद्ध चौपाइयों को न जानता हो और अपने वार्त्तालाप में उनका प्रयोग न करता हो।[४०] इसी महिमा के कारण आचार्य शुक्ल ने कहा है कि "जनता के हृदय पर सबसे अधिक विस्तृत अधिकार रखने वाला हिन्दी का सबसे बड़ा कवि भारतहृदय, भारतीकण्ठ, भक्तचूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास हैं।"[४१] वस्तुतः 'नाना-पुराणनिगमागम' की विपुल सामग्री को इतनी निपुणता के साथ भाषा के माध्यम द्वारा गरिमा से मण्डित करना तुलसी जैसे परमसिद्ध भक्त महाकवि का काम है।

संदर्भ

१ए. भरत, नाट्यशास्त्र, काशी-संस्कृत-सिरीज, अध्याय २७ श्लोक ५०-५५ ।

१बी. अभिनवगुप्त, 'लोचन', आनंदवर्धन, 'ध्वन्यालोक' व्या० रामसागर त्रिपाठी, (वाराणसी, १९६३) पृ० ६२ ।

१सी हर्बर्ट रीड, इंग्लिश प्रोज स्टाइल, बोस्टन, १९६३, इन्ट्रोडक्शन, पृ० ११ ।

२ डब्ल्यू० एच० ऑडेन, दि डायर्स हैण्ड ऐण्ड अदर एस्सेज, न्यूयार्क १९६२, पृ० ३-४ ।

३. बी० डब्ल्यू० हार्डिंग, एक्सपीरियंस इन्टू वर्ड्स, लंदन, १९६३, पृ० १७३ ।

४. जॉन लिविंग्स्टन लोवेस, उद्धृत कनाइवमेंसम, दि वर्ल्ड ऑव पोयट्री, लंदन १९५१, पृ० १५२ ।

५. मानस, १।३६ । काशिराज संस्करण ।

६. रामचरितमानस, १।३०।६

७. रामचरितमानस, १।३० (ग) ।

८. रामचरितमानस, ७।५६

९. रामचरितमानस, १।१११

१०. डॉ० राजपति दीक्षित, तुलसीदास और उनका युग, काशी, १९५३, पृ० ४१६ ।

११ रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, वाराणसी, सं० २०१९, पृ० ६३ ।

१२. रामचरितमानस, १।११

१३. वही, १।१४

१४. रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, काशी; सं० २०१९, पृ०१७ ।

१५. एडविन ग्रीव्ज, ए स्केच ऑव हिन्दी लिटरेचर, जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक ऑव बंगाल, १९१८, पृ० ४९ ।

१६. ही लिव्ड फॉर दि पीपुल ऐण्ड लव्ड देम ऐण्ड टॉट दि वेरी बेस्ट ही निउ इन दि लैंग्वेज ऑव दि पीपुल—जे० एन० फरक्हार, एन आउटलाइन ऑव दि रेलिजियस लिटरेचर ऑव इण्डिया, १९२८, पृ० ३३० ।

१७. एफ० एस० ग्राउज, टाइटिल, दि रामायण ऑव तुलसीदास, जर्नल ऑव रोआयल सोसाइटी ऑव बंगाल, १८७६, पृ० १७ ।

१८. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, काशी, स० २०१९, पृ० ६३ ।

१९. ला० भगवानदीन एवं विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कवितावली टीका, प्रयाग, सं० २०१३ अन्तर्दर्शन, पृ० १३ ।

२०. रामचरितमानस, ३।१६।११ ।

२१. वही, ३।१०।१०-११ ।

२२. रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, काशी, सं० २०१९, पृ० ६३ ।

२३. डॉ० माता प्रसाद गुप्त, तुलसीदास प्रयाग, १९५३, पृ० ३६१ ।

२४. चन्द्रबली पाण्डेय, तुलसीदास में उद्धृत, काशी, सं० २०१४, पृ० ७ ।

२५. रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, काशी, सं० २०१९, पृ० १५२ ।

२६. ए० जी० ग्रियर्सन, जर्नल ऑव रोयल सोसाइटी ऑव बंगाल, १९०३ पृ० ४५५ ।

२७. एफ० ई० की, ए हिस्टरी ऑव हिन्दी लिटरेचर, १९२०, पृ० ५० ।

२८. लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु' काव्य के तत्त्व और जीवन के सिद्धान्त, पटना, सं० २०१६, पृ० ४५-४६ ।

२९. मानस, १।१८४ ।

३१. मानस, ५।३।
३२. डॉ० बल्देव प्रसाद मिश्र, मानस में रामकथा, पृ० ८४।
३३. मानस, ६।१५।
३४. वही, १।३२।१-१८।
३५. वही, ७।१३।
३६. डॉ० राम प्रकाश अग्रवाल, वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन, मेरठ १९६६ पृ० ४१५।
३७. मानस, १।१
३८. डी० एस० इलियट, 'रेटरिक ऐण्ड पोइटिक ड्रामा' सेक्रेड ऊड, १९२०, पृ० ५६।
३९. डॉ० कुमार विमल, नयी कविता, नयी आलोचना और कला, (पटना १९६३), पृ० २३
४०. ए० जी० ग्रियर्सन, इनसाइक्लोपीडिया ऑव रेलिजन ऐण्ड इथिक्स, पृ० ४७१।
४१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, वाराणसी, सं० २०१९, पृ० १५३।

रामचरितमानस की काव्यभाषा और उसकी व्याकरण-सम्मतता

भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है भाषा। यदि भाव प्राण है, तो भाषा उसका शरीर। भाषा एक सामाजिक व्यवस्था है। इसलिए भाषागत सौन्दर्य, सौकर्य में व्यवस्था लाने के लिए नियम को भी स्वीकार करना पड़ता है। व्याकरण की महत्ता, भाषा में इसीलिए है। व्याकरण शब्दानुशासन है तथा शब्द पर शासन लोक का रहता है।

"व्यक्रियतेऽनेनेति व्याकरणम्"—जिस शास्त्र से भाषा व्याकृत की जाए, उसके पदों को तोड़-तोड़कर प्रकृति-प्रत्यय आदि का ज्ञान-विधान किया जाए, वह व्याकरण है। 'व्याकरण' शब्द कर्त्तृ-प्रधान भी हो सकता है—"व्याकरोति भाषा मिति व्याकरणम्—जो भाषा शास्त्र को व्याकृत करे, वह व्याकरण।"[1] व्याकरण (वि+आ+करण) शब्द का अर्थ है —भलीभांति समझाना। व्याकरण में वे नियम समझाए जाते हैं, जो शिष्ट द्वारा प्रयुक्त रहते हैं, अतः भाषा व्याकरण के अधीन नहीं है, बल्कि व्याकरण ही भाषा की प्रकृति के अनुकूल बदलता है। "वह भाषा के अनुसार ही चलेगा और भाषा की गति भंग करने वाले अज्ञानी या उच्छृंखल जनों को सही रास्ते लाएगा।"[2] व्याकरण में शिष्ट रूपों का और प्रयोगों का विवेचन होता है।[3] आदि-कवि वाल्मीकि के बारे में भट्टतौत ने कहा है—

तूथाहि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादिकवेर्भुतेः।
नादिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना॥

अर्थात् वाल्मीकि की कविता तब तक लोक में उदित नहीं हुई, जब तक उन्होंने नित्य प्राप्त दर्शन को वर्णन का रूप नहीं दिया। तात्पर्य यह कि भाषा पहले बनी और व्याकरण बाद में। इसलिए व्याकरण भाषा का अनुगामी है। भावना के अतिरेक की गहन अवस्था में हृदय स्वतः फूट पड़ता है; इस कारण प्रारम्भकाल के प्रायः सभी व्यक्ति कवि ही होते थे। प्रत्येक मूल भाषा अपने उद्गम-स्थान तक काव्य की टूटी-फूटी परिधियां होती हैं एवं व्याकरण के विशिष्ट नियम भाषा-निर्माण के युगों बाद बनते हैं।

"तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते।
तद्द्वारमपवर्गस्य वाङ् मलानां चिकित्सितम्।
पवित्रं सर्वविद्यानामधि विद्यं प्रकाशते।"[4]

शब्दों का तत्त्वज्ञान व्याकरण को छोड़कर अन्य से नहीं हो सकता। वह मोक्ष का

द्वार, वाणी के विकारों का निवारक, सभी विद्याओं में पवित्र और सबसे बढ़कर प्रकाशित है।

जब हम आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं, तब हमारे वाक्यों के अर्थ-निर्धारण में हमारी भाषा के व्याकरण का महत्त्वपूर्ण योग रहता है। सचमुच व्याकरण काव्य के लिए एक आवश्यक अंग है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। क्योंकि शब्द-शुद्धि का कार्य इसी से सम्पन्न होता है —

"शब्दस्मृते शब्द शुद्धि:,
शब्दस्मृतेव्यकिरणात् शब्दानां शुद्धि: साधुत्व निश्चय: कर्त्तव्य:
शुद्धानि हि पदानि निष्कम्पै: कविभि: प्रयुज्यते।"[५]

अर्थात् शब्दस्मृति (व्याकरणशास्त्र) से शब्द की शुद्धि होती है, साधुत्व का निश्चय होता है। शुद्ध पदों का कवि निर्भय होकर प्रयोग कर सकते हैं।

कोई-कोई व्याकरण को बन्धन मानते हैं, परन्तु यह काव्य के लिए बन्धन नहीं है। यद्यपि साहित्य व्याकरण के नियमों का पालन करता है, तथापि यह आनन्द की वस्तु है और यह स्वयं स्वतन्त्रता ही है। किसी कविता का सौन्दर्य नियमों के कठिन बन्धन में ही है, पर इसका सौन्दर्य सभी बन्धनों से ऊपर की वस्तु है। यह बन्धनों को पार कर जाता है। नियम उसके पंख हैं और ये पंख बोझ बनकर उसे (काव्य को) नीचे की ओर नहीं खींचते, बल्कि स्वतन्त्रता के उन्मुक्त आकाश में ले जाते हैं। काव्य का बाहरी रूप नियमों के बन्धन में होता है, पर इसकी आत्मा स्वतन्त्र ही रहती है। नियम स्वतन्त्रता की ओर पहुंचाने के प्रारम्भिक चरण हैं और काव्य-सौन्दर्य सम्पूर्ण स्वतन्त्रता है, जो प्रेम के ऊंचे मंच पर आसीन हो अपने ही रूप में चमकता है।[६] कॉडवेल ने कहा है कि काव्य व्याकरण के नियमों का पालन करता है और साधारणतया यह अन्वय के अनुसार होता है।[७] परन्तु काव्य भाषा-जनित बन्धनों को विशुद्ध रूप से स्वीकार नहीं करता, क्योंकि व्याकरण का निर्माण काव्यशास्त्र की सहायता के लिए नहीं, अपितु विचारों और भावों के अर्थों के परिमार्जन के लिए हुआ है। व्याकरण के विचित्र और अपरिवर्तनीय नियम साहित्य के रास्ते में कभी-कभी बाधक भी बन जाते हैं।[८] व्याकरण मन के तार्किक और सर्जनात्मक भावों को, नियमों के अनुरूप प्रगट करने का माध्यम है। इस तरह भाषा के प्रयोग का अर्थ हुआ—मन का प्रयोग। अत: भाषा के सचेतन प्रयोग को सीखना मन को अव्यवधानपूर्वक सचेतन रूप से प्रयोग करना है।[९]

काव्यात्मक भाषा की अपनी विचित्र सीमाएं होती हैं। आवश्यकतानुसार वह सभी सीमाओं का उल्लंघन कर व्याकरण के नियमों और प्रचलित भाषा का प्रयोग, अपने अनुरूप करती है। इस प्रकार के पथ-विचलन और व्याकरण के परित्याग द्वारा कवि एक प्रकार के नये व्याकरण और नयी भाषा को जन्म देता है, जो निर्धारण नियम और भाषा के परे ही वस्तु है। काव्य की भाषा में व्याकरण के नियम रहते हैं, इसकी तुलना में साधारण भाषा में अधिक स्वच्छन्दता रहती है।

नियम सम्मत भाषा जिस प्रकार से पहले से व्यवहृत हो रही है उसी के

नियमों की चर्चा व्याकरण करता है, न कि भाषा जिस रूप से व्यवहृत की जा सकती है, उसकी। भाषा का प्रथम उद्देश्य है अर्थाभिव्यक्ति तथा व्याकरण के नियम और कथन से शब्द-व्यवहार का रूप स्पष्ट होना चाहिए, जिससे सम्पूर्ण अर्थ दूसरे तक पहुंचाया जा सके।"

सचमुच भाषा का मुख्य उद्देश्य अर्थ-प्रकटीकरण द्वारा भावाभिव्यक्ति ही है और यही व्याकरण का अन्तिम उद्देश्य भी है। जिसमें अर्थाभिव्यक्ति की क्षमता नहीं है, पर सदोष व्याकरण है।

वरदाचारी ने लिखा है कि व्याकरण का काम शब्दों का निर्माण नहीं, बल्कि शुद्ध-प्रयोगों का दिशा-निर्देश है।" "वास्तव में व्याकरण-शास्त्र हमारे काव्य-शास्त्र का मूलाधार है, वाणी के अलंकरण के जो सिद्धान्त काव्यशास्त्र में स्थिर किए गए, उन पर व्याकरण के सिद्धान्तों का स्पष्ट प्रभाव है। भामह, वामन, आनन्दवर्धन जैसे आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में व्याकरण की स्थान-स्थान पर सहायता ली है। ध्वनि का प्रमुख सिद्धान्त भी मूलतः व्याकरण के 'स्फोट' से लिया गया है।"" अंग्रेज आलोचक ने भी व्याकरण की व्यापकता स्वीकार की है। उनके अनुसार व्याकरण किसी बाहरी नियमों का समूह नहीं है, बल्कि भाषा में ही निहित तत्व है और भाषा इसके बिना अपना अस्तित्व नहीं रख सकती। व्याकरणों के नियमों की खोज हो सकती है, पर इसका आविष्कार नहीं। व्याकरण भाषागत वस्तु है।" व्याकरण का अर्थ विश्लेषण होता है और पाणिनि का व्याकरण भाषाशास्त्रीय विश्लेषण है। यह शब्दों और वाक्यों का विश्लेषण करता है, क्योंकि वाक्य भी शब्दों पर ही निर्भर है। यह केवल शब्दों को ही नहीं बल्कि शब्दों के निर्माण के विभिन्न अंगों का भी विश्लेषण करता है। इस तरह हमें मूल धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि शब्द-निर्माण-सम्बन्धी भाषा-शास्त्रीय सिद्धान्त की शिक्षा देता है। वाक्य में एक शब्द के साथ दूसरे शब्द का क्या सम्पर्क है, इसको भी विश्लेषित करता है क्योंकि वाक्य और शब्द अविभाज्य अंग है। कहा गया है कि किसी वाक्य का व्याकरण केवल उसकी भाषा का ही विचार न करे, बल्कि यह भी दिखाए कि किसी कवि का काव्य किस प्रकार की भाषा में अभिव्यक्त हो सकता है।" आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा है कि "अधिक से अधिक ईप्सित प्रभाव उत्पन्न करना ही यदि भाषा-शैली की मुख्य सफलता मान ली जाए, तो शब्दों का शुद्ध, सामयिक सार्थक और सुन्दर प्रयोग विशेष महत्त्व रखने लगे। शब्दों की शुद्धि व्याकरण का विषय है, व्याकरण की व्यवस्था साहित्य की पहली सीढ़ी है।"" व्याकरण के साधारण कार्यों को संकेतित करते हुए 'साहित्यालाप' में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "व्याकरण का काम सिर्फ इतना ही है कि लोग जैसी भाषा बोलें या लिखें, उसका वह संगति मात्र बना दे। उसे यह कहने का कोई अधिकार नहीं कि तुम इसी तरह बोलो या इस शब्द का प्रयोग इसी लिंग में करो···निष्कर्ष यह कि वाग्धारा का प्रवाह रोका नहीं जा सकता। एक शब्द या एक पद दो रूपों में प्रचलित हो सकता है और प्रचलित हो जाने से व्याकरणों को अपने व्याकरणों में दोनों ही को स्थान देना

है। पर शिष्ट लेखकों के द्वारा जान-बूझ कर किये गए ऐसे प्रयोग अशुद्धि की कोटि से निकल कर शुद्धि की कोटि में चले जाते हैं।[१६]

व्याकरण का एक कार्य लोक-प्रचलित प्रयोगों को सुरक्षित रखना भी है। व्याकरण लोक-प्रचलित प्रयोगों का संग्रह है। लोक-समुदाय विभिन्न परिस्थितियों के वशीभूत होकर प्रयोगों में परिवर्तन करता रहता है। अतएव भिन्न-भिन्न समय के व्याकरण लोकप्रचलित-प्रयोगों की सूचना देते हैं।[१७] व्याकरण का कार्य शब्दों का निर्माण नहीं, बल्कि शुद्ध प्रयोगों का निर्देश करता है। शिष्टों द्वारा निर्धारित लोक-व्यवहार ही शुद्ध प्रयोग होता है। व्याकरण का दूसरा कार्य यह निर्दिष्ट करना है कि शिष्ट कौन है? शिष्ट वह है, जिसका व्याकरण-विरुद्ध प्रयोग भी शुद्ध माना जाता है।[१८] वी० राघवन ने भी कहा है कि "काव्य, भाषा द्वारा अभिव्यक्ति पाता है और इसलिए यह व्याकरण पर निर्भर है, जो शुद्ध अभिव्यक्ति में सहायक होता है।"[१९] कृष्ण चैतन्य के अनुसार "व्याकरण का सम्बन्ध भाषा के बोलचाल गत अर्थ से है। इसी तरह काव्य-भाषा में व्याकरण वहीं दखल दे सकता है जहां काव्यगत अर्थ और बोलचालगत अर्थ एक ही है। बोलचालगत अर्थ जब काव्यात्मक प्रक्रिया को आत्मसात् कर काव्यात्मक अर्थ में परिणत हो जाता है, तब वह वैयाकरण की अधिकार-सीमा से बाहर चला जाता है।"[२०]

"जब तक काव्य अपनी पूर्णता को नहीं पहुंच पाता, तब तक हम अलंकार और काव्यशास्त्र के नियमों से थाह सकते हैं। पर ज्योंही कवि अपने सच्चे संसार में पहुंच कर आवेश की अवस्था में बोलने लगता है, उसी समय इसकी वाणी अपरिमेय हो जाती है और जो विश्लेषण-पद्धति उसे थाहने को चलती है, वह स्वयं उसकी गम्भीरता में डूब जाती है। तब कहीं चाहने वाले को यह भान होने लगता है कि अलंकार अथवा शास्त्रीय नियमों की सीमा के बाद भी काव्य की एक बड़ी अलौकिकता अविश्लिष्ट रह जाती है।[२१]

"इट इज वेल नोन फैक्ट दैट ग्रामर इज मेन्ली कॉन्सर्न विथ दि फर्मिल आस्पेक्ट ऑव लैंग्वेज।"[२२]

महाभाष्य में कहा गया है—

"एक शब्दः सम्यक् ज्ञातः सप्रयुक्त लोके स्वर्गे च काम धुग् भवति।"

शब्द का सम्यक् ज्ञाता और सुप्रयोक्ता तो कवि ही है। शब्द का सम्यक् ज्ञान व्याकरण तथा भाषा विज्ञान से होता है। अतः व्याकरण एक परम आवश्यक तत्त्व है। "कविता लिखने में व्याकरण के नियमों की अवहेलना न करनी चाहिए। शुद्ध भाषा का जितना मान होता है अशुद्ध का उतना नहीं होता। व्याकरण का विचार न करना कवि के तद्विषयक अज्ञान का सूचक है।"[२३] साहित्य-क्षेत्र के महान् आचार्यों ने सहर्ष स्वीकार किया है, "साहित्यकार की भाषा का व्याकरण के नियमों के अनुकूल होना आवश्यक है, फिर भी महान् साहित्यकारों की रचनाओं में ऐसे प्रयोग बहुधा मिल जाते हैं जो व्याकरण-सम्मत नहीं होते।"[२४] "किसी भी भाषा को यदि व्याकरण के नियमों से

व्याकरण के नियम व्यर्थ नहीं हैं। काव्य का परिधान भी सर्वमान्यत्व से रंग होना चाहिए।''[२५] ''हिन्दी को काल-सह बनाने के लिए बहुत जरूरी है कि इसकी रचना व्याकरण-विरुद्ध न हो और इसमें सिर्फ ऐसे शब्दों का प्रयोग हो, जो विशेष व्यापक है।''[२६]

संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने भी इस पर काफी जोर दिया है। काव्य भाषा-जन्य अभिव्यक्ति होने के कारण व्याकरण पर निर्भर है, जो अभिव्यक्ति का शुद्धिकरण करता है। काव्य की विषय-वस्तु विचार है और न्याय (तर्कशास्त्र) विचारों का व्याकरण है, अतः यह भी स्वभावतः काव्यजगत् में प्रविष्ट होता है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में मात्राएं, भाषा, अलंकार, नाट्यशास्त्र, संगीत, वस्तु निर्माण-कला आदि नियमों की चर्चा कर उन्हें नाटक का अभिन्न अंग माना है। भामह और वामन ने व्याकरण का अध्ययन शब्द-शुद्धि के नाम पर किया और पतंजलि ने उसे हेतु या कारणशास्त्र मान कर भाषा के दोषों की चर्चा की है। आगे चलकर न्याय का यह विषय काव्यशास्त्र के दोष-प्रकरण में विरुद्ध दोष के रूप में चर्चित हुआ, क्योंकि वाक्य में तर्किक दोषों का होना उचित नहीं है और वाक्य जहां तक सम्भव हो, व्याकरण और तर्क-दोषों से मुक्त रहना चाहिए।

अरस्तू के अनुसार व्याकरण की दृष्टि से भाषा के अंग हैं—वर्ण, मात्रा, संयोजक शब्द, संज्ञा, क्रिया, विभक्ति या कारक, वाक्य अथवा पदोच्य। वर्ण और मात्रा का विवेचन पिंगलशास्त्र के अन्तर्गत होता है और शेष व्याकरण के अन्तर्गत। प्राचीन काल से लेकर आज तक अनेक तरह की भाषाएं आईं और उनके अपने-अपने नियम निर्मित हुए। आज हमारे सामने जो भाषा है यह क्रमशः संस्कृत, प्राकृत, पाली और अपभ्रंश से निःसृत है। सब रूपों में उनके व्याकरण बने। आज व्याकरण के प्रमुख अंग हैं—संज्ञा, लिंग, वचन, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, अव्यय और वाक्य-रचना।

रामचरितमानस की भाषा के व्याकरणिक रूपों की मीमांसा के पहले यह जानना आवश्यक है कि तुलसीपूर्व तथा तुलसीकालीन भाषा में व्याकरण की स्थिति क्या थी। इसे जाने बिना तुलसी की भाषा का रूप सुस्पष्ट नहीं होगा।

तुलसीदास जिस समय रचना कर रहे थे, उस समय अवधी भाषा का कोई भी प्रामाणिक व्याकरण नहीं था। जायसी 'पद्मावत' की रचना कर चुके थे। उस रचना के स्फुट नियम ही कवि-कर्म में व्याकरण से रूप में गृहीत होते रहे होंगे। जन सामान्य के अलिखित प्रयोग ही एक तरह के व्याकरण का काम करते थे। उस अवस्था में नियमों की शिथिलता और कवि के अतिरेक प्रयोग आदि सब कुछ संभव थे।

वेदों की भाषा जिस समय आई, ''इससे पहले इस भाषा का कोई भी व्याकरण न था, प्रकृति-प्रत्यय आदि का विभाग-विवेचन न था। तब देवों ने इन्द्र से प्रार्थना की कि आप हमारी भाषा का व्याकरण बना दें। इन्द्र ने तब इस भाषा को बीच से तोड़ कर प्रकृति, प्रत्यय, पद आदि के रूप में टुकड़े करके व्याकरण बना दिया. तब से यह भाषा व्याकृत हुई।''[२७] इसी तरह तुलसी के समय में अवधी भाषा-व्याकरण-विहीन थी। तुलसी भी इन्द्र की तरह अपनी भाषा के व्याकरणिक रूपों को काव्यभाषा के

माध्यम से स्थिर करने में अपने समय के प्रथम कवि थे। धर्म, दर्शन, अध्यात्म-साधना पुराण कथा एवं लोक-मानस की विशाल भूमिका तुलसी ने नई लोकभाषा में प्रस्तुत की। वे प्रगतिशील महाकवि थे।

तुलसी के समय में साहित्यिक भाषा व्रजभाषा थी, और दूसरी प्रकार की भाषाएं मात्र बोलियां थीं। तुलसी की विनयपत्रिका, कृष्णगीतावली, कवितावली आदि उस काल की साहित्यिक भाषा की रचना हैं और रामचरितमानस आदि अन्य रचनाएं तत्कालीन जनभाषा की बोली अवधी की रचनाएं हैं। तुलसी की अद्वितीय प्रतिभा ने अवधी (बोली) को साहित्यिक भाषा के स्तर (स्टैंडर्ड) पर बिठा दिया।

व्रजभाषा और अवधी दोनों का प्रयोग नैपुण्य तुलसी में था। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल नें कहा है कि "भाषा पर जैसा अधिकार गोस्वामी जी का था, वैसा और किसी हिन्दी कवि का नहीं।"

रामचरितमानस में सुन्दर भाव के साथ-साथ सुन्दर भाषा 'सुभाषा' भी है। भाव और भाषा में वही सम्बन्ध है जो राम और सीता में है। तुलसी ने इसे स्पष्ट कर दिया है—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न-न-भिन्न।
बंदौं सीताराम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥१।१८

गंध से पुष्प की ओर आकर्षित होते हैं तो भाषा से हम काव्य की ओर। 'नानापुराण-निगमागम' के साथ अनेक व्याकरण-ग्रंथों को भी कविवर ने अवश्य पढ़ा होगा, जिसका संकेत इस पंक्ति में है—

सरिस स्वान मघवान जुबानू।२।३०१।८

शब्दों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए पाणिनि ने श्वन्, युवन् और मघवन् को एक ही सूत्र में पिरोया है। प्रकृति की एकता के कारण तुलसीदास ने तीनों को एक ही चरण में रखकर अपने व्याकरण-ज्ञान का परिचय दिया है।

तुलसी के समय कोई भी लिखित व्याकरणिक नियम अवधी में नहीं थे। केवल लिखित व्याकरण ही व्याकरण नहीं होता, बल्कि लोक-शासन भी व्याकरण का काम करता है। तुलसी काल में लोक शासित व्याकरण ही थे। अतः मानस की भाषा स्वयं ही अवधी के व्याकरण की व्यवस्था का आधार प्रस्तुत करती है।[२८] आचार्य शुक्ल भी तुलसी की सबसे बड़ी विशेषता भाषा की सफाई मानते हैं।[२९]

तुलसी ने रामचरितमानस में मुख्यतः तीन भाषाओं का प्रयोग किया है—संस्कृत, व्रजभाषा और अवधी। प्रत्येक का अपना विशिष्ट कार्य है। ए० पी० वरान्निकोव के अनुसार संस्कृत कविता के गत्यात्मक विकास में सहायक है पूर्ववर्तीमहाकाव्य की परम्परा से साहित्यिक परम्परा को जोड़ना ही संस्कृत के प्रयोग का कारण है। अवधी इसकी आद्यंत की प्रमुख भाषा है। व्रजी का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। व्रज में इतिवृत्त ही है।[३०] उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी, फारसी, बंगला, गुजराती, भोजपुरी, राजस्थानी आदि शब्दों को भी अपने पावन स्पर्श से वर्द्धित किया है। इसलिए

भाषा के व्याकरणिक रूपों में सामंजस्य लाना कठिन प्रतीत है। फिर भी मोटे तौर पर संज्ञा, सर्वनाम, लिंग, वचन, क्रिया, विशेषण, वाक्य-रचना इन तत्वों से व्याकरण के भाषिक प्रयोग स्पष्ट हो सकते हैं और इन्हीं आधारों पर रामचरितमानस की भाषा का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

संज्ञा

संज्ञा के तीन प्रमुख भेद माने जाते हैं—व्यक्तिवाचक, जातिवाचक और भाववाचक।

व्यक्तिवाचक संज्ञा

व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के प्रयोग में तुलसी की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियों का पता चलता है। यथा—

१. व्यक्तिवाचक संज्ञा का बहुवचन में प्रयोग यह प्रयोग अधिकतर राम-रावण-युद्ध में हुआ है। ऐसे प्रयोग दो स्थलों पर है—एक नाम के कई व्यक्तियों के बोधक रूप में—

कहु रावन रावन जग केते।६।२४

युद्धादि में कभी मायिक आसाधारण स्थिति आने पर, जैसे—

देहु रिसि धावहिं कोशिह रखन।६।६६

२. एक ही व्यक्ति के लिए अनेक पर्यायों का प्रयोग; जैसे मेघनाद के लिए बारिदनाथ, घननाद, इंद्रजित का प्रयोग—

रघुपति निकट गयउ घननादा।६।५१
बारिदनाथ जेठ सुत तासू।१।१८०।७
सिंघनाद करि गर्जा मेघनाथ बलधीर।६।५०
इंद्रजीत अधिक बलबाना।६।३४।११

इस तरह के उदाहरण मानस में अनेक हैं; जैसे अगस्त्य के लिए घटसंम्भव (७।३२), कुंभज (१।२५६।७), घटजोनी (१।३), घटज (२।२६७) का प्रयोग। ऐसे ही दशरथ, शत्रुघ्न के लिए अनेक नाम हैं। इन्द्र के लिए सक्र, सुनासीर, सुरपति, देवेन्द्र, सुरेस आदि का प्रयोग मानस में मिलेगा। हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष के लिए ''कनकसिपु अरु हाटक लोचन'' प्रसिद्ध ही है।

ऐसा प्रयोग वे निःसंकोच धड़ल्ले से करते गये हैं। यह व्याकरण के क्षेत्र में कवि का अपना प्रयोग है। कहा भी गया है कि प्रतिभाशाली कवि व्याकरण की सीमित पगडंडियों से नहीं गुजरते बल्कि उसे और व्यापक बनाते हैं।[11] व्यक्तिवाचक नामों का वे अनुवाद करते चले गये हैं। परन्तु यह अन्य कवि की रचनाओं में भी देखी जाती है। डॉ० राजेन्द्रलाल मित्र ने 'इण्डो एरियन' ग्रन्थ में बंगाल के पाल वंशीय राजाओं के विषय में जो निबंध लिखा है, उसमें उस वंश के आदि संस्थापक 'गोपाल' को 'लोकपाल, का नामांतर बताते हुए उन्होंने कहा है कि ''मध्ययुग में यूरोप में लोग, अंग्रेजी नामों का लैटिन भाषा में अनुवाद कर दिया करते थे और आज भी कविलोग

जातिवाचक संज्ञा

इसका विवेचन लिंग और वचन की दृष्टि से किया जा रहा है ।

लिंग

(क) अंत्य अकारांत व्यजन के साथ—आ, इ, ई, आनि, आनी, इनि, नी, इका के योग से स्त्रीलिंग का रूप तुलसी ने बनाया है—

जनकसुता जग जननि जानकी ।१।१८
सुनु गिरिराज कुमारि ।१।११५
जयमहेस सुख चन्द चकोरी ।१।२३५
छबिखानि मातु भवानि गवनी ।१।१०० छंद
गई भवानी भवन बहोरी ।१।२३५।४
सोइ बसुधा तल सुधा तरंगिनि ।१।३१
तरनिउ मुनि घनिनी होइ जाई ।२।१००
ये दारिका परिचारिका करि ।१।३२६ छंद

(ख) लोग में 'आई' प्रत्यय से स्त्रीलिंग रूप निर्मित हुआ है, जैसे—

कहहिं परस्पर लोग लोगाई ।२।११।३
अति विषाद बस लोग लोगाई ।२।५१।७

लिंग-निर्धारण के जो भी नियम मानस में पाये जाते हैं, उनमें तुलसी की दो प्रवृत्तियों का पता चलता है । पहली तो यह कि अकारण नियमों की अवहेलना नहीं करते और दूसरी यह कि जहां नियमों का उल्लंघन है, उन्होंने वहां जान-बूझकर वैसा किया है । जैसे निम्नांकित शब्दों को तुलसी ने पुल्लिंग के बदले स्त्रीलिंग प्रयुक्त किया है—

१. प्रश्न—

उमा प्रस्न तव सहज सोहाइ ।१।१४।६
प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी ।७।९५।२
सुनि तब प्रश्न सप्रम सोहाई ।७।९५।३
कीन्हि प्रश्न जेहि भाँति भवानी ।१।३३।१
प्रश्न उमा केस सहज सुहाई ।
छलविहीन सुनिसिवमन भाई ।१।१११।६
असिउ प्रस्न बिहंगपति कीन्ह कागसन जाइ ।७।५५
करिउं तात अब प्रश्न तुम्हारी ।७।११४।१६

२. मनोरथ—

पुरबउ नाथ मनोरथ मोरी ।२।२९।२
मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ।२।१०३।२

कहीं-कहीं मनोरथ को प्रयोग पुं० में भी किया गया है—

पुरवउ नाथ मनोरथ मेरे ।१।१४।३

३. इतिहास—

यह इतिहास सकल जग जानी।
ताते मैं संक्षेप बखानी ।१।६५।४
यह इतिहास पुनीत अति उमहि कही वृष केतु ।१।१५२

४. आशीष—

मुनि सिय सत्य असीस हमारी।
पूजिहि मन कामना तुम्हारी ।१।२३६
पुनि असीस दुहँ भाइन्ह दीन्ही।

५. तन—

नयन सजल तन थर थर कांपी।
माजहि खाइ मीन जनु मापी ।२।५४

६. कुसल—

पूछी कुसल निकट बैठाई ।२।८८
पूछी कुसल सुमंगल छेमा ।२।
पूछी कुसल नाथ तव कुसल देखि पद कंज ।५।२९

जहां तक लिंग-विपर्यय का प्रश्न है, यह कवि की एक प्रवृत्ति है।

इन विपरीत लिंगों के प्रसंगों पर ध्यान देने से इनकी विशेषताएं प्रकट होती हैं। अधिकतर 'प्रश्न' शब्द का स्त्रीलिंग में प्रयोग शिव पार्वती के वैसे प्रसंग में हुआ है, जब पार्वती शिव से परब्रह्म ईश्वर राम के विषय में प्रश्न पूछती है। पार्वती-सदृश श्रोता के कारण ही शिव के हृदय से रामभक्ति की सरिता प्रभावित हुई। पार्वती के व्यक्तित्व में कवि ने 'प्रश्न' शब्द की सत्ता को भी लीन कर दिया। पार्वती और प्रश्न शब्द की अन्विति कर दी। प्रश्न पार्वती के मन में इस तरह प्रविष्ट हो गया कि उसे समाधान के अभाव में सब कुछ सूना सा लगने लगा। इसलिए कवि ने 'प्रश्न' शब्द का स्त्रीलिंग में प्रयोग किया है।

याज्ञवल्क्य और भारद्वाज के प्रसंग में भी 'प्रश्न' स्त्रीलिंग में व्यवहृत हुआ है। भरद्वाज ने परमेश्वर राम के परमतत्त्व के विषय में प्रश्न किया।

सप्तम सोपान के काकभुशुंडि-गरुड़-संवाद में भी 'प्रश्न' विपरीत लिंग में प्रयुक्त है। गरुड़ ने राम के अविनाशी अनन्य भक्त काक के परम पावन आश्रम के बारे में प्रश्न किया कि क्या कारण है कि आपके आश्रम में आते ही मेरा मोह भाग गया। इसी पर काक ने कहा सुनि तव प्रश्न सप्रेम सोहाई।''

उपर्युक्त तीनों प्रसंगों को ध्यान से देखने पर 'प्रश्न' शब्द के स्त्रीलिंग में प्रयोग करने की प्रवृत्ति का पता चलता है वह यह कि—संपूर्ण मानस में जहां कहीं भी परब्रह्म विषयक निगूढ़ जानकारी की अभिलाषा प्रकट हुई वहां-वहां कवि ने उसका स्त्रीलिंग में ही प्रयोग किया है।

रामचरित मानस के अनेक प्रसंगों में 'मनोरथ' शब्द का २९ बार प्रयोग हुआ है। कभी आलंकारिक वर्णन में तो कही साधारण वर्णन में। इसका प्रयोग दोनों लिंगों में हुआ है।

कोपभवन में रानी कैकेयी राजा दशरथ से दो वरदान मांगती है, पहला भरत का राज्य और दूसरा वर मांगने की भूमिका में कहती है—

मागउँ दूसर बरकर जोरी।
पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥

कैकेयी और दशरथ की मानसिक स्थिति में अभी आकाश-पाताल का अंतर है। दशरथ शोक-समुद्र में प्राण बचाने के लिए सहारा खोज रहे हैं और कैकयी को सिर्फ अपना स्वार्थ नजर आ रहा है। दशरथ उनके मनोनुकूल वर देंगे या नहीं—यह संदेहात्मक रूप कैकेयी के हृदय में घर कर गया है। कैकेयी इतना कठोर बन गई है कि राम जैसे कोमल पुत्र को चौदह वर्षों के लिए वनवास का वरदान मांग रही है, जिस मनोरथ से कैकेयी ने वरदान मांगा, उससे कैकेयी का सम्पर्क रहा, राजा दशरथ का नहीं। अत: इस गम्भीरतम परिस्थिति को दिखलाने के लिए कवि ने 'मनोरथ' शब्द का स्त्रीलिंग में प्रयोग किया है। यहां तुक का आग्रह भी प्रतीत होता है।

गंगा से सीता के वरदान मांगने के प्रसंग में भी ऐसा ही अभिप्राय है, अत: 'मनोरथ' स्त्रीलिंग में आया है। इसके विपरीत व्यास, वाल्मीकि आदि कवि की वंदना में कवि कहते हैं—

चरन कमल बंदउं तिन्ह केरे।
पुरवहु सकल मनोरथ मेरे। १।१४।३

यहां 'मनोरथ' पुल्लिंग में है। हरि-सुयश के वर्णन करने वालों की वंदना के प्रसंग में ऐसा प्रयोग हुआ है। पार्वती की तपस्या पूर्ण होने पर सप्तर्षि उन्हें आशीष देते हैं—"भयउ मनोरथ सुफल तव"। यहां 'मनोरथ' का प्रयोग पुल्लिंग में हुआ है। मनु-शतरूपा की तपस्या से प्रसन्न हो प्रभु प्रकट होते हैं। उनके समान पुत्र होने का वर मांगते हैं—इस प्रसन्नता में 'मनोरथ' का प्रयोग पुल्लिंग में हुआ है। राम-लक्ष्मण जनक की पुष्पवाटिका से गुरुदेव की पूजा के लिए पुष्प लाते हैं। पूजा सम्पन्न होने पर विश्वामित्र आशीष देते हैं—"सुफल मनोरथ होहु तुम्हारे।" यहां भी 'मनोरथ' पुल्लिंग में है। कैकेयी के दोनों वरदान ने दशरथ की आशा को निराशा में परिणत कर दिया। अत: अचानक विकट विपत्ति आने पर मनोरथ पुल्लिंग बनकर आया है।

इस 'मनोरथ' शब्द के प्रसंगों का विश्लेषण करने से तुलसी की इन प्रवृत्तियों का पता चलता है—

१. स्वार्थ पूरा करने में मनोरथ का प्रयोग स्त्रीलिंग में।
२. भविष्य की मंगलासा के लिए मनोरथ का प्रयोग स्त्रीलिंग में।
३. व्यास आदि की तरह उत्तम कवि होने की लालसा से उनकी वंदना के क्रम में 'मनोरथ' का प्रयोग पुल्लिंग में।
४. आशा और प्रसन्नता की अवस्था में 'मनोरथ' शब्द पुल्लिंग में।
५. अचानक विपत्तिकाल में 'मनोरथ' का प्रयोग पुल्लिंग में।

प्रसंगानुसार व्याकरण के नियमों में परिवर्तन कवि की मौलिक उद्भावना है जो किसी सत्कवि से ही सम्भव है।

मानस में 'आशीष' शब्द का प्रयोग ६० बार हुआ है। सब के विवेचन तो सम्भव नहीं, एक-दो यहां दिए जाते हैं।

गिरिजापूजन प्रसंग में सीता की पूजा से प्रसन्न हो भावातिरेक में गिरिजा मग्न हो गई। करुण परन्तु मूक हृदय की टीस से पत्थर भी पिघल जाते हैं। गिरिजा सीता पर अत्यन्त प्रसन्न हैं। कभी-कभी अत्यधिक प्रसन्नता में मनुष्य अपनापन खो देता है। गिरिजा की ऐसी ही स्थिति दिखाने के लिए कवि ने यहां 'आशीष' को स्त्री में प्रयुक्त किया है। प्रसन्नता की यह बेसुधि कवि के 'हमारी' शब्द से भी ध्वनित है। एक वचन 'मेरी' की जगह 'हमारी' का प्रयोग हुआ।

दूसरा प्रसंग। जनकपुर में दोनों भाइयों के द्वारा लाये पुष्पों से विश्वामित्र पूजा समाप्त करते हैं और अत्यन्त प्रसन्नता में आशीर्वाद देते हैं, वहां 'आशीष' का प्रयोग स्त्रीलिंग में है। अन्य स्थलों पर आंतरिक एवं बाह्य परिस्थितियों के अनुकूल पुल्लिंग में प्रयुक्त हुआ है। इसमें मोटे तौर पर तुलसी की यह प्रवृत्ति लक्षित होती है कि प्रसन्नता की बेसुध दशा में, आशीर्वाद देने के क्रम में कवि ने जानबूझ कर 'आशीष' का प्रयोग स्त्रीलिंग में किया है, जो उनकी सूक्ष्म काव्य-कला का परिचय देता है।

'इतिहास' शब्द का भी प्रयोग स्त्रीलिंग में कई जगह हुआ है। इस प्रयोग में तुलसी की यह प्रवृत्ति लक्षित होती है कि जब कोई घटना समाप्त होती है और नयी घटना का विवरण प्रस्तुत होता है तो वैसे स्थल पर 'इतिहास' का प्रयोग कवि स्त्रीलिंग में करता है। दक्ष-यज्ञ में सती के जलने की घटना के पश्चात् पार्वती के रूप में जन्म-ग्रहण करने के वर्णन में 'इतिहास' का प्रयोग किया गया है, तथा दूसरी बार मनु-शतरूपा की तपस्या पर ईश्वर उन्हें उनके पुत्ररूप में जन्म लेने का वर देते हैं और इसके बाद ही राम-जन्म के दूसरे कारणों का वर्णन प्रारम्भ हुआ। इसीलिए यहां भी 'इतिहास' का प्रयोग हुआ है।

'तन' शब्द का प्रयोग मानस भर में १२३ बार आया है -- दोनों लिंगों में। कुछ स्थल पर स्त्रीलिंग में प्रयोग कवि की असावधानी-सी लगती है, परन्तु गौर करने पर पता चलता है कि वहां भी सांदर्भिक विशेषता द्योतित करने के लिए कवि ने जान-बूझ कर 'तन' का प्रयोग विपरीत लिंग में किया है।

माता कौशल्या से राम चौदह वर्षों के वनवास का समाचार सुनाते हैं। इस समाचार से माता की क्या दशा हो गई, 'तन' से प्रकट है। कवि सचमुच कौशल्या की दशा से अपनी दशा को नहीं बचा सका है। इस दारुण दुःखप्रद समाचार से नयन सजल हो गए, वह अवाक् हो गई, पागल-सी हो गई। कौशल्या की यह दशा 'तन' के स्त्रीलिंग में रहने से ही प्रकट हो सकती थी। कंपन से कोई भी वस्तु अपनी निश्चित जगह पर नहीं रहती। 'तन' जब थर-थर कांपने लगे, तब क्या वह अपनी जगह पर रहेगा? इसमें एक प्रवृत्ति दीखती है कि विपत्ति की गहन अवस्था को चित्रित करने के लिए कवि ने शब्द को विपरीत लिंग में प्रयुक्त किया है। यह है तुलसी की अपनी काव्य-कला।

मानस में 'कुशल' शब्द ८६ बार प्रयुक्त है और यह प्रायः स्त्रीलिंग में व्यवहृत है। कुछ उदाहरण यहां द्रष्टव्य हैं—

जब सीता-लक्ष्मण सहित राम शृंगवेरपूर पहुंचे तो समाचार पाकर कंद, मूल, फल से पूरित हो निषादराज राम से मिलने जाते हैं। निषादराज के सहज, सरल प्रेम से प्रभु विवश हो जाते हैं, तब 'उनकी कुशल' पूछने में ही उस दशा का सच्चा बिम्ब सम्मुख आता है, 'उनका कुसल' से नहीं। सीता का पता लगाकर हनुमान आए। सुग्रीव को अत्यन्त हर्ष हुआ। यहां समाचार के वर्णन में 'कुशल' का प्रयोग स्त्रीलिंग में हुआ है—"पूछी कुसल कुसलपद देखी।" करुणापुंज राम उनसे सप्रेम मिले और उन्होंने हनुमान से 'पूछी कुसल'। जब परम भक्त निषादराज से भरत मिलते हैं, तो एक ओर भरत भी मिलते तृप्त नहीं होते और दूसरी ओर निषादराज भी अपने को धन्य समझ रहे हैं। भरत उनसे पूछते हैं—'पूछी कुसल सुमंगल छेमा।' कुशलता के अर्थ में भी कुशल शब्द का प्रयोग हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से तुलसी की प्रवृत्तियों के निम्नांकित संकेत मिलते हैं—

१. भक्तवत्सल राम जब भक्त से मिलते हैं तो वैसे स्थलों पर 'कुशल' का प्रयोग स्त्रीलिंग में होता है।
२. सुखदायक समाचार मिलने पर कुशल का प्रयोग स्त्रीलिंग में होता है।
३. एक सच्चे भक्त से दूसरे सच्चे भक्त के मिलने पर कुशल का प्रयोग स्त्रीलिंग में हुआ है जैसे निषादराज और भरत का मिलन।

मानस में इस तरह के और भी शब्द हैं, जिनका लिंग-विपर्यय कर कवि ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा दिखाई है। यद्यपि व्याकरण के व्यावहारिक दृष्टिकोण से च्युत संस्कृति दोष कहे जायेंगे। कुछ लोग निरंकुश प्रयोग भी कह सकते हैं; पर यह कवि की अपनी कला है।

वचन

हिन्दी भाषा में दो वचन हैं—एकवचन और बहुवचन। मानस में दोनों का प्रयोग हुआ है। तुलसी ने एकवचन से बहुवचन रूप बनाने में निम्नांकित नियमों को अपनाया है—

१. शब्द के अन्त में अनुस्वार, न, नि, न्ह, न्हि, ऐ का योग, जैसे—

कर्हहिं बिरंचि रची कत नाहीं। १।३२४
जिमि दसनन मँह जीभ बिचारी। ५।
दिगपालन्ह मैं नीर भरावा। ५।
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी।···जनु राकेस उदय भय तारे। १।२४५

२. शब्द के मूल रूप का ही बहुवचन रूप में व्यवहार, जैसे—

चार चले तिरहूति।

३. कुछ संस्कृत से प्रभावित शब्द भी बहुवचन में

राम अनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी। ७।५२

देखे भरत लखन प्रभु आगे । पूछे वचन कहत अनुरागे । २।२३६
अंगद दीख दसानन वैसे । ६।१६

इसके विपरीत कहीं-कहीं बहुवचन संज्ञा का एकवचन में भी प्रयोग मिलता है, यथा—

राम वालि निज धाम पठावा । नगर लोग सब व्याकुल धावा ।। ४।११

तुलसी ने रामचरितमानस में संस्कृत के द्विवचन के रूपात्मक शब्दों को भी प्रस्तुत किया है, जै ा चतुर्थ सोपान के मंगलाचरण का प्रथम श्लोक—

१. कुन्देन्दी वर सुन्दरावति बलौ विज्ञानद्यामावुभौ
शौभाद्यौ वरधन्विनौ श्रुतितुतौ गोविप्रवृन्द प्रियौ ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषण तत्परौ पथिगतौ भक्ति प्रदौ तौ हि नः ।।४ श्लो० १

२. दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता । ५।४५।२

३. कुंभकरन रावन द्वौ भाई । ६।११६।११

निष्कर्षतः, कहा जा सकता है कि संज्ञा के वचन सम्बन्धी प्रयोग में तुलसी प्रायः नियम पालक रहे हैं ।

भाववाचक संज्ञा

व्याकरण में भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण जातिवाचक संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया में प्रत्यय लगाकर होता है ।

(क) **जातिवाचक संज्ञा**—प, पन, आई, के योग से भाववाची संज्ञाएं बनायी गई हैं; यथा—

सिसुपन ते परिहरेउंन संगू । २६०।७
सोइ सिसुपन सोइ सोभा । ७।८१
समझी नहिं तस बालपन । १।३०क
जनु वर्षा रितु प्रगट बुढ़ाई ।
भायप भगति भरोस भलाई । २।२८३।३
आए जूथप जूथ । ५।३४
पदुम अठारह जूथप बंदर । ५।५५।३
हमरे कुल इन्ह परे न सुराई । १।२७३
बहु धनुही तोरी लरिकाई । १।२७१।७
भोजन सयन केलि लरिकाई । २।१०।५
अनुचित छमब जानि लरिकाई । २।४५।६

(ख) **सर्वनाम से**—पउ, पौ, आन, मम, आदि प्रत्ययों के योग से भाववाची संज्ञाएं बनायी गई हैं; यथा—

फिरी अपनपउ पितुबस जाने ।१।२३४
सदा रहहिं अपनपौ दुराएं ।१।१६१
भरत राम की मिलनि लखि बिसारा सबहि अपान ।२।२४०

जेहि जन पर ममता अति छोइ—१।१३।६

ममता जिन्ह पर प्रभुहित थोरी—१।१६।२

(ग) **विशेषण से**—काव्य-क्षेत्र में विशेषणों का अत्यन्त महत्त्व है, यहां व्याकरण की दृष्टि से विवेचन किया जा रहा है।

१. पन, पनु प आई, ता, आत आदि प्रत्ययों के योग से—

केहि न सुसंग बड़प्पन पावा।१।१०।८

जनु कठोरपन धरेउ सरीरू।२।४१

सोक सनेह सयानप थोरा।२।२८४

भूप सयानप सकल सिरानी।१।२५६

सब बिधि भामिनि भवन भलाई।२।६१।४

कहौ कहां लगि नाम बड़ाई।१।४२।६

आपनि दारुन दीनता।२

लघुता ललित सुवारिन थोरी।१।४३

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता।१।६३

२. संज्ञा में 'तव्य' के बाद 'ता' प्रत्यय जोड़ कर भी भाववाचकता लायी गई है, संस्कृत का 'तल्' प्रत्यय से 'ता' बना है।

यथा—

तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिले सहाइ।१।१५९

इसी प्रकार की एक दूसरी प्रवृत्ति भी मिलती है—

लोकमान्यता अनल सम।१।२९८

३. तुलसी की यह भी प्रवृत्ति देखने में आती है कि विशेषणों में प्रत्यय लग कर बनी हुई भाववाचक संज्ञाओं में भी पुनः 'ई' प्रत्यय लगा कर दुबारा उसे भाववाचक बनाते हैं, जैसे—

सुन्दर+ता+इ=सुन्दरताई

हरि सन माँगों सुंदरताई—१।१३२।१, १।११६।४, २।१०८।८

मेचक+ता+ई=मेचकताई

कह प्रभु ससि महं मेचकताई—६।१२।४

मृदु+ता+ही=मृदुताही

बिटप फूलि फलि तृन मृदुताही—२।३११।७

मनोहर+ता+ई=मनोहरताई

भंवर तरंग मनोहरताई—१।४०।८, १।३२३।१

कोमल+ता+ई=कोमलताई,

भरत भाग्य प्रभु कोमलताई—७।१०।६

जड़+ता+ई—जड़ताई, सठताई।७।४६।८, पावनताई।७।६६।१ आदि।

४. भाववाची संज्ञा बनाने की एक अन्य प्रवृत्ति भी मिलती है, जैसे 'मैत्री'

तेहि सन नाथ मयत्री कीजै ।४।४।३

सं० मैत्री>मयत्री हुआ, उच्चारण-भेद से ।

(घ) क्रिया द्वारा निर्मित भाववाची संज्ञाओं के विषय में तुलसी की दो-तीन प्रवृत्तियों का पता चलता है । कभी वे 'आउ', 'आव' से भाववाचकता का सृजन करते हैं, जैसे —

प्रभु सन कवन दुराउ । अबजनि बतवढ़ाव खल करही ।६।३०

कभी 'पनी' प्रत्यय से काम लेते हैं —

दमदान दया नहि जानपनी ।७।१०३

बात में कहीं प्रत्यय जोड़ कर अनेकों जगह भाववाची संज्ञाओं का निर्माण किया गया है । संस्कृत वार्ताकथा से बतकही शब्द बना है, जिसका अर्थ होता है, बात कहना । संस्कृत वार्ताकथा>बतकही; यथा —

हसहि मलिन खल बिमल बतकही ।१।९।२, १।२३, ४।२१ आदि ।

एक स्थल पर 'आर' प्रत्यय का भी योग हुआ है—

मिलि तपसिन्ह सन भयउ लबारा ।६।

कहीं मूल धातु को ही संज्ञा के रूप में प्रयोग कर देते हैं—

एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी ।७।११४

उठहु न सुनि मम बच बिकलाई ।६।६१

जहां तक संज्ञा का प्रश्न है, तुलसी के रामचरितमानस में ७५ प्रतिशत शुद्ध तत्सम शब्दों का हुआ है । मानस की कथा के गत्यात्मक विकास में तद्भव शब्दों का भी कम महत्त्व नहीं है । तुलसी ने भाषा को सीमित क्षेत्र से हटाकर अधिक व्यापक बनाने के लिए फारसी, अरबी आदि का भी प्रयोग किया है । कोई भी कवि अपने समय की परिस्थिति और समाज के प्रभाव को छोड़ नहीं सकता है तुलसी की भाषा इसका साक्षात् प्रमाण है । देशज शब्दों के निःसंकोच प्रयोग तथा तत्कालीन प्रचलित बगला, महाराष्ट्री, गुजराती, भोजपुरी आदि बोलियों के शब्दों को अपना कर तुलसीदास ने अपने उदार समन्वयवादी रूप को प्रदर्शित किया । इन सब कारणों से तुलसी के शब्द विशेष महत्त्व रखते हैं ।

सर्वनाम

रामचरितमानस में अवधी के अनुरूप सर्वनाम के करीब-करीब सभी रूप मिलते हैं । कारकीय प्रयोग में सबके अलग-अलग रूप हो जाते हैं ।

उत्तम पुरुष

कर्त्ता—मैं, हौं, महूँ, हम ।

कर्म—मोहि, मोहि, मोको, कहं मोहि, हौं माम (संस्कृत), हमहि, हमहि, हम ।

करण—मोहिसन, मोपाहि, मोसन, मोपाहीं, मोहि पाहीं, मोपै । हम सन ।

सम्प्रदान—मोकहँ, मोहि लगि, मो कहुँ, मोहि लागि, मोहि नित, हमहि, हम कहुँ ।

अपादान—मोतें ।

सम्बन्धकारक—मोर, मो, मोरा, मेरी, मोरि, मोरें, मोरैं, मेरी, मेरे, मेरो, मम, मोरेहुँ, हमारा, हमार, हमारि, हमारी, हमारे, हमारें, हमारा, अस्मकं, हमरि, हमरें, हमारो, हमरउ ।

अधिकरण—मो पै, मो पर, मोहि पर, मोरे, मोहि पाही, हम पर ।

कई स्थल पर बहुवचन का व्यवहार एकवचन के लिए हुआ है, यथा--

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं ।२।२१०, ६।८१; १।१३५ आदि ।

मध्यम पुरुष सर्वनाम के रूप

कर्त्ताकारक—तें, तू, तुम्ह, आप, रावरे ।

कर्म—तोहि, तोहिं, तुमहिं, तुम्हहि, तुम्हहिं, तोकों, तुम्ह कहुँ, रौरहिं ।

करण तोहि सों, तो सों, तुम्हतें, तुम्हसन, तुम्ह पाहीं ।

सम्प्रदान—तोही, तुम्हहि, तुम्हकहं, तुम्हकौं, तुम्हहिं लागि ।

अपादान—तुम्ह तें ।

सम्बन्ध—तुअ, तोर, तोरा, तोरि तोरे, तोरें, तिहारी, तिहारे, तुम्हार, तुम्हारा, तुम्हारी, तुम्हारे, तुम्हारी, तुम्हरें, तोहारा, तुम्हारिहि, तुम्हरिहि, आदरार्थ—राउरि, राउर, राउरे आदि ।

अधिकरण—तुम्ह पर ।

अन्यपुरुष सर्वनाम के रूप (वह)

कर्ता—सोई, सोइ, तेहिं, तेइँ, सो, ते तिन्ह, तिन, उन, उन्ह, तेइ, तेउ, तेऊ ओऊ ।

कर्म—सो, ताहिं, ताही, तेहि, सोइ, ओही, सोई, तिन्हहिं, ते, तिन्हहीं, तिन्हकहुँ, तिन्हकहँ ।

करण—तेन, तेहि, तोहिसन, तेही, सन, ताही सों ।

संप्रदान—ताहि, ताही, ताको, तिन्ह कहुँ, तिन्हकहँ, तेहिलागि, तोहि लगि, ता कहँ ।

अपादान—तिन्हतें, तेहितें, तेहि सबै ।

संबंध—तेहि, तासू, तासु, ताकें, ताके, तेहिकेरी, तेहि कें, ताकरि, ताकर, उन्हकै, उन्हकर, तिन्हकेरे, तिन्हकेरी, तिन्हकै, तिन्हकर, तिन्ह के ।

अधिकरण—तेहि पर, तापर, तिन्हमहुँ, तिन्हमहँ, तिन्ह पर ।

अन्यपुरुषवाची सर्वनाम (यह) के रूप

कर्त्ता—यहु, यह, एहि, एहा, ये, इहै, ए, इन्ह ।

कर्म—यह, एहि, एही, ऐ, इन्हकहँ, इन्हहिं ।

करण—एहिसन, एहितें, इन्हसन ।

संप्रदान—इन्हकहँ, एहिकहँ, एहिलागि ।

अपादान—इन्हतें, एहितें, एहि ते ।

संबंध—एहि, एहिकर, एहिकें, याको, इन्हकर, इन्हकँ ।

अधिकरण—एहिमाही, एहिमहँ आदि ।

(२) निश्चयवाचक सर्वनाम के रूप अन्य पुरुष सर्वनाम के समान ही हैं, इसलिए इनका अलग से विवेचन नहीं किया जा रहा है ।

(३) निजवाचक सर्वनाम—

कर्त्ता—आपु, आपुनु, आपुन ।

कर्म—आपु, आपुहि ।

करण—

संप्रदान—

अपादान—

संबंध—अपना, अपने, आपनि, आपुन, आपनी, अपनी, आपनि, आपन ।

अधिकरण—

(४) अनिश्चयवाचक सर्वनाम—

कर्त्ता—कोइ, कोई, काहू, कोऊ, एक, काहुँ, काहु, कोउ, सब काहू ।

कर्म—केही, केहू, काहु, काहू । सब काहुहिं ।

करण—काहुते, काहुसो, सब काहुते ।

संप्रदान—काहु, काहुहि, केहिलागि, सब काहु ।

अपादान— के हुते, सब काहु ते ।

संबंध—काहू की, काहुक, काहू, काहूकै, काहूके कासू, केहिकर, सब काहुकर

अधिकरण—केहिमह, सब काहु मह ।

(५) संबंधवाचक सर्वनाम—

कर्त्ता—जे, जो, जोई, जेहि, जेहिं, जिन्ह ।

कर्म—जो, जेहि, जाहि, जेही, जाकहुँ, जिन्हहिं ।

करण—जेहि, जेहिसन, जाते, जाहिसन, जिन्हतें, जाही सों, जेहितें ।

संप्रदान—जाकहुँ, जेहिकहुँ, जेहिलगि, जेहिलागे, जेहिलागी, जहि हेतू, जेहि हेतु, जिन्ह के ।

अपादान—जेहितें ।

संबंध—जिन्हकें, जिन्हकै, जिन्हकह, जिन्ह कर, जिन्हकेरे, जा, जासु, जासू, जिसु, जाके, जाकी, जाका, जाकें, जेहि के, जाकरि, जाकर, जेहिकर ।

अधिकरण—जेहिमहुँ, जेन्ह माहीं, जेहि पर, जिन्ह पर ।

प्रश्नवाचक सर्वनाम

कर्त्ता—का, कवन, केई, केहिं, कत, को ।

कर्म—का, काह, काहा, काहि, काही, केहि, केही ।

करण—केहि ।

संप्रदान—केहि, हेतु, केहि हेतू, केहि लगि, केहि लागि, लागी ।

संबंध—किसु, कासु, केहि, केहिकर, केहिकें, केहिके।
अपादान—केहि तें, केहिसों, किन्हते, किन्हहि आदि।
अधिकरण—कवने, केहिमे, किन्हमें, किन्हपर आदि।

क्रिया

क्रिया के निर्माण में तुलसी की क्या प्रवृत्ति रही है, इसका विवेचन बाद में किया जाएगा। पहले क्रिया के प्रचलित भेद-रूपों को देखें—इसके प्रमुख भेद हैं—सहायक क्रिया, संयुक्त क्रिया और प्रेरणार्थक क्रिया।

सहायक क्रिया

व्याकरण के अनुसार सहायक क्रिया के भिन्न-भिन्न रूप तुलसी के मानस में पाए जाते हैं। सहायक क्रिया का प्रमुख रूप है—'है'। इसके अनेक रूप मानस में मिलते हैं—

है—है कछु कपट भाव मनमाही।२।१८९।३
हैं—हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना।५।१६।६
हइ—हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई—२।१७४।६
हहिं—मानहुँ मोर करत हहिं निन्दा—३।३७।४
आहहिं—जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आ हहिं—७।४२।७
आहि—करिअ नीति अस आहि—६।२३ग
आहिं—कहहिं जोतिषी आहिं बिधाता—१।३१२।८
आही—राम प्रेम मूरति तनु आही—२।१८४।४
अहै—अहै एक अति सुगम उपाई—१।
अहई—प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई—५।५९
होहि—मुकुट न होहिं भूप गुनचारी—६।३८
हसि—का अनमन हसि कह हँसि रानी—२।
अहसि—को तू अहसि सत्य कहु मोही।२।
अहहू—संसयसील प्रेमबस अहहू—२।१७४
हौं—जानत हौं कछु भल होनिहारा—१।१५९।७
अहउँ—तब लगि बैठ अहउँ बटछाही।१।५२।२
रहे—चली तहाँ जहँ रहे गिरीसा—१।५५।८
रहा—नाम सती तव रहा तुम्हारा—७।५६।२
भा—भा सब बिकल विषाद बिसेखी—२।२८६
भइ—सो कुचालि सब कहँ भइनीकी—२।३१७
भये—भये प्रगट कृपाला दीनदयाला—१।
अछत—अस प्रभु हृदय अछत अविकारी—१।२३।७

संयुक्त क्रियाएँ

रामचरितमानस में अनेक प्रकार से संयुक्त क्रियाएं बनायी गयी हैं—

१. समुझत सुखद न परत बखानी—१।२१।७

२. सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबंध बिचित्र बनाई।१।३३।२

३. करिअ न संसय अस उर आनी—१।३३।८,१।३५।११, ६।१६, २।२४१ आदि।

४. तासु गर्व जेहि देखत भागा। ६।२६

सम्पूर्ण मानस में संयुक्त क्रियाओं का जाल बिछा हुआ है, उन सबका विश्लेषण यहां सम्भव नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि संयुक्त क्रियाएं ही मानस की महत्वपूर्ण क्रियाएं हैं। ये ही कवि की अभिव्यक्ति में सार्थक योगदान देती हैं।

प्रेणार्थक क्रियाएं

तुलसी ने भी रामचरितमानस जैसे विशाल काव्य में प्रेरणार्थक क्रियाओं से काफी काम लिया है। कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं—

सीखना-सिखाना—मन हठ परे न सुनइ सिखावा। १।७८

उठना-उठाना—चहत बारि पर भीत उठावा। १।७८

देखना-दिखाना—सर निर्झर जल ठाउं देखाउब।

खेलना-खेलवाना—तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। २।१३६।७

मागना-मगवाना—गजरथ तुरग मगावत भए। ७।५०।३

पहुँचना-पहुँचाना—उपरोहितहि भवन पहुँचाई। १।१७५।३

बाँचना-बँचवाना—सठ लाग बचावन। ५।५६

करना-करवाना—भोजन करवावा। १।२०७

देखना-दिखलाना—दिखरावा मातहि निज। १।२०१

छोड़ना-छोड़वाना—सो पुलस्त मुनि जाइ छोडावा। ६।२४।८

नहाना-नहवाना—नृप तन बेद बिदित अन्हवावा।

क्रियाओं के सम्बन्ध में तुलसी की अनेक प्रवृत्तियां लक्षित होती हैं—

(क) संस्कृत से गृहीत क्रियाएं—ऐसी क्रियाओं के प्रयोग विशेषतः देव-वंदना, सात्विक, आध्यात्मिक विचार-वर्णन में अधिक हुआ है। यह तुलसी की अपनी विशेषता है।

१. नमामि—नमामि भक्त वत्सलं।

२. भजामि—भजामि ते पदाम्बुज।

३. प्रणमामि—प्रनमामि निरंतर श्री रमणं।

४. पश्यंति—पश्यंति यं जोगी जनन करि।

५. असि—जोसि सोसि तव चरन नमामी।

६. स्मरामहे—भवनाथ सो स्मरामहे।

७. भजामहे—रमेश नित्य भजामहे।

८. नमामहे—रच्छ राम नमामहे।

९. एवमस्तु—एवमस्तु करुनानिधि बोले।

१०. वसतु—वसतु मनसि मम कानन चारी।

११. तनोतु—तनोतु मे ।

१२. कृत—केहि के मति इन कृत न मलीनी ।

१३. गत—यहि प्रकार गत बासर दोऊ ।

"तुलसी ने संस्कृत की क्रिया भी कहीं-कहीं रगड़कर रख दी है, जैसे – सिदति आदि । उन्होंने अपभ्रंश से चले आते हुए पुराने रूप कम लिए और जो लिए भी हैं, वे बहुत चलते, जैसे बयन, पैज, पब्बय, पुहुमि आदि ।"[३३]

(ख) प्राकृत और अपभ्रंश से निर्मित धातुएं—इनका प्रयोग युद्ध-वर्णन या साधारण पात्रों की साधारण स्थिति दिखलाने के लिए किया गया है । कभी-कभी उत्तम पात्रों के सम्बन्ध में भी ऐसी क्रिया का प्रयोग हुआ है । यथा—

१. तिष्ठै—भूत द्रोह तिष्ठै नहि कोई ।

२. कथै—जिमि जिमि तापस कथै उदासा ।

३. निर्मथ्यौ—रामायन जिन निरमया ।

४. नौमि—नौमि निरन्तर श्री रघुबीर ।

५. बिबर्ध—सेवत विषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार ।

६. अलुज्झ, जुज्झ—अलुज्झि जुज्झहि समर भटन्ह ढहावही ।

तुलसी-काव्य में अपभ्रंश से चले आते हुए पुराने रूप कम प्रयुक्त हैं और जो हैं, वे बहुत प्रचलित हैं ।

(ग) कुछ क्रियाएं जन भाषा से प्रभावित हैं और तुलसी के समन्वयकारी व्यक्तित्व की सूचक हैं ।

ढहावही—भठन्ह ढहावही । ६।८८

जोगवहीं—जोगवहि प्रभु सिय लखनहि कैसे । २।१४२

मेलना—तुरत विभीषन पाछे मेला । ६।९४

जून—काछति लाभ जून धनु तोरे । १।२७७

(घ) विशेषणों से भी क्रियाएं बनाई गई हैं, जैसे—

१. सिवहि बिलोकि ससंकेउ मारु । २।८६

२ तें सुर नर मुनि नाग बिरुद्दे । ६।९४

३. अधिक अधिक अधिकाति । २।२४७, ६।८७, ६।९४, ६।६६।३

(ङ) नाद के आधार पर कुछ क्रियाएं बनाई गई हैं, जैसे—

१. कटकटाहि कोटिन्ह भट गर्जहि । ६।४१।६

२. किलकिलाइ धाये बलवाना । ६।६५।३

३. डगमगानि दिग्गज चिक्करही ।

४. देखि दखिन दिसि हम हिहिनाही । २।१४२।८

(च) तुलसीदास ने कुछ बिल्कुल नई क्रियाओं का निर्माण किया है, जैसे—

बेगहू—बेगहू भायहु सजहु संजेऊ ।

हथबांसहु हथबांसहु बोरहु तरनि । २।१८९

अनुसरहू—मनकम बचन धर्म अनुसरहू । ७।२०

नेवाजे—राम कृपालु निषद नेवाजे । २।२५०।८
राम गरीब अनेक नेबाजे । १।२५।२
निदरे—निदरे कोटि कुलिस यहि छाती । २।२००।४
निनारी—भुवन निनारी । ७।८१।६
निरुअरई—तबहि कदाचित् सौ निरु अरई । ७।११७।८
निर्गमहि—एक निर्गमहि । २।२३
आदरही—नहीं आदरही । १।१४।८
असीसहि—मुदित असीसहि । १।३१९

(छ) कुछ क्रियाओं में लिंग-विपर्यय को भी प्रश्रय दिया गया है; यथा—

१. हरगन मुनिहि जात पथ **देखी** । बिगत मोहमन हरष विसेखी । १।१३९
२. नित नूतन सब बाढ़त जाई । जिमि प्रति लाभ लाभ अधिकाई । १।१८०
३. अस्थि समूह देखि रघुराया । पूछि मुनिन्ह लागि अतिदाया । ३।९
४. बैठे जाय सिंहासन फूली । अति अभिमान त्रास सब भूली । ६।३८
५. तुम्ह निज मोह कही खग सोई । सो नहिं कछु आचरज गोसाई ।। ७।७०
६. जगमय प्रभु का बहुत कलपना । ६।१५

(ज) क्रियाओं के निर्माण में उन्होंने काफी छूट ली है । अपने समय की प्रचलित प्रायः सभी बोलियों की कुछ न कुछ क्रियाएँ उनके मानस में मिलती हैं । बंगला, उर्दू, फारसी, राजस्थानी, भोजपुरी, संस्कृत, देशज आदि सब की क्रियाएँ तुलसी के स्पर्श से चमत्कृत हुई हैं । यह तुलसीदास के विशाल शब्द-भंडार और उसके कलात्मक उपयोग का द्योतक है ।

नई क्रियाओं के निर्माण तथा लिंग-विपर्यय रूपों में तुलसी की असावधानी नहीं है, बल्कि एक स्वाभाविक प्रतिभावन कवि के रूप में उनकी स्वछंदता है । क्योंकि कोई भी कवि व्याकरण के नियमों को आगे रखकर काव्य-रचना नहीं करता है, और यदि कोई ऐसा करता है, तो वह काव्य ग्रंथ न होकर लक्षण-ग्रंथ हो जाएगा । तुलसी के मानस में क्रियाओं की बहुरूपता दीखती है, पर उनमें अस्पष्टता नहीं हैं ।

विषेषण

(क) गुणवाचक विशेषण

जिस शब्द से संज्ञा का गुण, दशा, रंग, काल, स्थान, आकार आदि का बोध हो, उसे गुणवाचक विशेषण कहते हैं ।

रामचरित मानस में प्रायः सभी प्रकार के गुणवाचक विशेषणों का प्रयोग हुआ है, और इन प्रयोगों का मात्र व्याकरणिक महत्व नहीं है, बल्कि काव्यात्मक महत्व है । कुछ उदाहरण ये हैं—

१. [illegible]ल सघन पल्लव फल लाला । अबिरल जांह सुखद सब काला ।२।२३७
[illegible] जड़ जीव जीवगन घाती । कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ।२।२५१।४
[illegible]ई साथक सिद्ध सयाने । त्रिबिध जीब जग बेंद बखाने ।२।२७७।३

(ख) सार्वनामिक विशेषण

पुरुषवाची सर्वनाम—

तेहि अवसर एक तापस आवा। ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं।१।८।१२
तेइ सुकपिक बहु बरन बिहंगा।१।३७।१५

संबंधवाचक सार्वनामिक विशेषण—

जो प्रबंध बुधि नहिं आदरही। सो श्रम बादि बाल कबि करहीं।१।१४।८
जथा जोग जेहि भोग बनाई।१।१८९।८

प्रश्नवाचक सार्वनामिक विशेषण—

बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू।१।५३।८
को बड़ छोट कहत अपराधू।१।२१।३ आदि

निश्चयवाचक सार्वनामिक विशेषण—

संभु कीन्ह यह चरित सोहावा—१।३०।३
कामकृत कौतुक अयं।१।८५ छंद

अनिश्चयवाचक सार्वनामिक—

बहुरि हँसेउ मुनि कोउ।१।१३५
कौतिक बात प्रभु जातुधान की।५।३२

(ग) संख्यावाचक विशेषण

गणनावाचक—

दुहुँ कर कमल सुधारत बाना।६।
चहुँजुग तीन काल तिहुँ लोका।

क्रमसूचक संख्यावाचक

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसर रति मम कथा प्रसंगा।
गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान। चौथि भगति मम गुन गन करे कपट तजिगान।
पंचम भजन सो बेद प्रकासा। छटदम सील विरति बहु करम।
सातवँ सम मोहिमय जग देखा। आठवं सम मोहिमय जग देखा।
आठवे जथालाभ सतोषा। नवम सरल सब मो छलहीना।३।३६

इसी भांति आवृत्तिसूचक प्रत्येक बोधक आदि सब के उदाहरण मानस में भरे पड़े हैं।

वाक्य रचना

मानस में तीनों प्रकार के वाक्य हैं, पर सरल की अपेक्षा मिश्र और संयुक्त वाक्यों की संख्या अधिक है।

नाथ कृपा मम गग सन्देहा। रामचरन उपजेउ नव नेहा।७।१२९।८

यह सरल वाक्य है मिश्रवाक्य का कुछ उदाहरण देखें—

बँदउँ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।१।१।१
रामनाम सुन्दर करतारी। संसय विहग उड़ावन हारी।

संयुत वाक्य भी मानस में दो प्रकार के हैं, एक अधिकाधिक लम्बे और एक छोटे। एक अति लम्बे वाक्य का उदाहरण देखें—

"जिनकी माया के वशीभूत संपूर्ण विश्व, ब्रह्मादि देवता और असुर हैं, जिनकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भांति यह सारा दृश्य जगत सत्य ही प्रतीत होता है और जिनके केवल चरण ही भवसागर से तरने की इच्छा वालों के लिए एक मात्र नौका है, उन समस्त कारणों से परे राम कहलाने वाले भगवान हरि की मैं वंदना करता हूं।—श्लोक —यन्माया...

ऐसे ऐसे लंबे वाक्य मानस में अनेक हैं—

"मोहि राम राउरि आनदसरथ सपथ सब साँची कहौं

बरु तीर मारहि लखन पै जब लगिन पाय पखारिहौं।

तब लगिन न तुलसीदास नाथ कृपाले पार उतारिहौं।२।१००

तब लगि मोहि परखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंदमूल फल खाई।

जब लगि आवों सीताहि देखी होइहि काज मोहि हरष विसेखी" ।५।१

कवि की वाक्य-रचना सीधी[३४] तथा शैथिल्य-रहित[३५] है।

वाक्यों की निर्धारण कला में तुलसी पारंगत थे, इसीलिए तुलसी ने विषय और प्रसंगों के अनुकूल वाक्य रखे हैं। उनके निर्मित वाक्यों में भ्रांति तथा अस्पष्टता नहीं है। यह निर्माण तुलसी का अपना है। कवि ने अभिव्यक्ति के लिए स्वतन्त्रता दिखाई है। पाश्चात्य समालोचक ने कवि की ऐसी स्वतन्त्रता को स्वीकार करते हुए कहा है कि "जब हम वाक्यनिर्माण पर सोचते हैं तो हमें यह बराबर ध्यान रखना चाहिए कि भाषा के नये निर्माण में तथा वाक्यों और शब्दों के तोड़-मरोड़ में कवि को असाधारण स्वतन्त्रता है। वाक्य में वह उन शब्दों को छोड़ भी सकता है जिनसे अर्थ की हानि न हो अथवा जिनसे अर्थ की थोड़ी अस्पष्टता भी आ जाए।[३६] मानस में तुलसी ने कहीं-कहीं शब्द के रूप को छोटा बना दिया है। एक तो संस्कृत में ही जाना क्रिया की धातु 'गम्' है, तुलसी ने उसे और भी छोटा कर 'गा' बना दिया,—जो संस्कृत गत: से नि:सृत प्रतीत होता है, गत:>गअ>गा।

"अति सप्रेम गा विसरिहुराऊ।५।५५

इसी तरह अन्य शब्दों ने तुलसी की प्रतिभा के सम्मुख वामनरूप धारण कर लिया। 'होना' क्रिया के लिए उन्होंने 'भा' लिखा, जो संस्कृत भूत: से निष्पन्न है, यथा—भू>भा।

"भा सब बिकल विषाद बिषेखी।२।२८६

पैर और सुवन के लिए क्रमश: पा और सुअ देखने को मिलता है, जो क्रमश: पाद और सुत से बना है। पाद>पा अ>पा, सुत>सु अ।

मारत हूँ पा परिअ तुम्हारे।१।२७३

कैकेई सु अ कुटिल मति।२।७८

सम्पूर्ण मानस में हनुमान जैसा अतुलित बलधामं स्वर्ण सेलाभदेहं' कोई नहीं। लेकिन

उस 'कनक भूधराकार सरीरा ।' वाले हनुमान को भी तुलसी की प्रतिभा के सम्मुख मात्र 'हनु' के रूप में खड़ा होना पड़ा—

जय कृपालु कहि कपिचले, अंगद हनू समेत ।५।४४

'अधोगति' के अर्थ को ध्यान में रखते हुए तुलसी ने उस शब्द की भी अधोगति कर दी और बीच के स्वर को उड़ा दिया—

"रहु अधमाधम अधगति पाई ।७।१०७

यदि एक ओर तुलसी ने अपनी भावाभिव्यक्ति में शब्द को छोटा किया है, तो, दूसरी और आवश्यकतानुसार शब्द-रूपों में वृद्धि भी की है, यथा—

संयुक्त—सँजोइल, क्रुद्ध—कोहाब, कर्ष—काढ़े, च्यु—चवइ, बेला—बिरियां ।

शब्दों के रूप-परिवर्तन की तीसरी प्रवृत्ति के अन्तर्गत वैसे शब्द हैं जो कुछ विकृत हो गये हैं । यह विकृतीकरण एक तो स्वेच्छा से हुआ है और दूसरा तुकांत-पूर्ति के लिए । स्वेच्छावाले रूप ये हैं—

१. शीतल—सिअरे—सिअरें बचन सूखि गए कैसे ।२।७१
२. शृंगवेर—सिंगरौर—जामिनि सिंगरौर गमाई ।२।१५१
३. कुल—कुलि—करम कुलि काला ।२।२५४

तुकान्त -पूर्तिवश विकृत शब्दों के कुछ उदाहरण नीचे हैं—

१. 'उखाड़ना' के अर्थ में एक स्थल पर तुलसी ने 'उपारी' लिखा है और यहां जो संस्कृत उत्पाटित>उपाटी>उपारी बना है ।
"लीन्ह एक तेहि सेल उपाटी ।"६।७०

२. संस्कृत क्रोधी से क्रोही बना है—
लै सहाय धावा मुनि द्रोही ।
सुनि मारीच निसाचर क्रोही ।१।२१०

३. सं० दृश्>दृष्ट>दीसा बना है—
बिदुसन्ह प्रभु विराटमय दीसा ।
बहु मुख कर पगलोचन सीसा ।

लेकिन इस प्रक्रिया में तुलसी अति नहीं करते हैं । जिससे वे अपना रूप और अर्थ दोनों ही खो बैठे । तुलसी के इस नैपुण्य को ग्राउस ने भी संकेतित किया है । ग्राउस ने लिखा है कि "जैसे 'फेरी डि कुएन्सी' नामक ग्रंथ में स्पेंसर के विषय में कहा जाता है, वैसी तुलसीदास ने भी तुकांत मिलाने के लिए शब्दों में काट-छांट और उनका रूपान्तर करने तथा उनके अपभ्रंश का माथा ही मरोड़ दिया है, कभी किसी की पूँछ ऐंठ दी है और कभी किसी को अन्य स्थान से तोड़े-मोड़े डाला है ।"[३७]

तुलसी के मानस में शब्द तोड़-मरोड़ अवश्य गए ; पर विवशता से, छंद में बैठाने के लिए, प्रवाह और पादांत के हेतु ।[३८] सूर, जायसी और तुलसी की तुलना करते हुए श्यामसुन्दर दास ने लिखा है कि सूर और जायसी "इन दोनों लब्धप्रतिष्ठ कवियों ने व्याकरण का गला दबाकर शब्दों के ऊपर खूब अत्याचार किया है । परन्तु

गोसाई जी ने ब्रजभाषा और अवधी दोनों के व्याकरण के नियमों का निर्वाह किया है।[३९] व्याकरणिक नियमों के पालन में स्वच्छंदता भी दिखाई है, यथा—

व्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा।।७।

यहां परम+ईश—परमेश होना चाहिए, गुण-स्वर-संधि से, लेकिन तुकांत की पुकार पर 'परमेश' को भी 'परमीसा' होना पड़ा।

राम जनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी।७।५२।३

यहां विवेच्य 'गुणानी' शब्द है। संस्कृत में गुणा: शब्द है, जो स्वयं बहुवचन है, अत: गुणा: से गुणानी नहीं बनना चाहिए, लेकिन तुकांत-पूर्ति के लिए वैसा किया गया है। इसी तरह 'कंपिदा' और 'गिरिंदा' शब्द भी आए हैं, जो तद्भव प्रयोग हैं।

राम कृपाबल पाइ कपिंदा, भये पच्छजुत मनहुं गिरिंदा।५।३५

वंदना के श्लोक में भी कवि की ऐसी स्वच्छंदता दिखाई पड़ती है। जैसे सप्तम सोपान का तीसरा श्लोक—

"कुन्द इन्दुदर गौर सुन्दरं अम्बिका..."

यहां गुण-स्वर-संधि से कुन्द+इन्दु का कुन्देन्दु होना चाहिए, लेकिन यदि ऐसा करते तो छंदोभंग हो जाता। पुन: संधि-नियम का पालन कर लिखते कि—'सुंदरमम्बिका-पतिभीष्ट' तो यति-भंग हो जाता। इसीलिए कवि ने जानबूझ कर लय को सुरक्षित रखने के लिए व्याकरण सम्बन्धी स्वतन्त्रता अपनाई है।

इसी भांति सप्तम सोपान का प्रथम श्लोक 'केकी कंठाभ नील' व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है। परन्तु यह उल्लंघन असावधानी से नहीं, बल्कि जान-बूझकर भाषा में सौकर्य लाने के लिए किया है। यह स्रग्धरा छन्द है, जिसमें पहले मगन (SSS) का रहना अनिवार्य है। यहां पर यदि 'केकिकंठा' लिखते तो मगण गण की मग्नता भंग होती, अत: तुलसी ने ऐसा सोचकर किया है। मानस की देव-स्तुतियों में भी कई स्थल पर ऐसे उल्लंघन दिखलाई पड़ते हैं, लेकिन, वे कवि के अज्ञान-स्वरूप नहीं हैं वरन उनकी निर्माण और प्रयोग करने की अपनी कला के उदाहरण हैं।

व्याकरण के इन कुछ नियमों के सार्थक, सप्रयोजन स्खलन में तुलसी का व्यक्तित्व भी निखरता है। क्योंकि काव्य की भाषा जहां व्याकरणिक नियमों से सम्पन्न रहती है, वहां साधारण भाषा इससे रिक्त होती है। लेकिन साहित्यकारों को यह सुविधा प्राप्त है कि वे नियमों का भग भी कर सकते हैं। यह एक प्रकार की काव्यात्मक स्वतन्त्रता है, जो व्यक्तित्व का निर्माण कर, व्याकरण के नियमों का उल्लंघन कर अभिव्यक्ति में नवीनता की सृष्टि करती है। तुलसी के मानस में ऐसा ही हुआ है। सच तो यह है कि गद्य-लेखकों की तुलना में कवि को अधिक छूट व्याकरण के क्षेत्र में होती है।[४०] इसी कारण से रोमन जकोब्सन ने काव्य को साधारण भाषा पर एक सुगठित आक्रमण कहा है...भाषा पर कवि का यह अधिकार है, वह चाहे उसे जिस प्रकार से हो अपने अधिकार द्वारा प्रयोग करता है और इस प्रयोग द्वारा काव्यात्मक भाषा के नये नियमों की प्रतिष्ठा करता करता है।[४१]

व्याकरण की दृष्टि से काव्य-भाषा के क्षेत्र में तुलसीदास ने अतुलित मेधा

दिखायी। काव्यामृतरसास्वादन करने वाले इस कारण तुलसी के चिर ऋणी रहेंगे। रोबर्ट मिलर ने भावों की गति पर जोर देने के लिए समानातरता (पैरालेलिज्म) के तत्व बतलाए हैं। मानस में भी इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं—

१. तपबल रचइ प्रपंच बिधाता। तपबल विष्नु सकल जगत्राता।
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेष धरइ महिभारा।१।७२

२. सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना— तजि निज धरम विषय लय लीना।
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना—जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।
सोचिअ बयसु कृपनु धनबानू—जो न अतिथि सिव भगति सुजानू।
सोचिअ सूदविप्र अवमानी—मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी।
सोचिअ पुनि पतिबंचक नारी—कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी।
सोचिअ बटु निज बृत परिहरई—जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई।
सोचिअ गृही जो मोहबस, करइ करम पथत्याग।
सोचिअ जती प्रपंचरत, बिगत बिबेक बिराग।२।१७२

एडबिन ग्रीब्ज का कहना है कि जिस प्रकार कुंभकार के हाथों में मिट्टी होती है, उसी प्रकार तुलसीदास के हाथों में हिन्दी थी। वह उनके सम्मुख समर्पित थी और उनकी इच्छानुसार आकर धारण करती गई। व्याकरण, पद-रचना और शब्द-रूप उनके अधीन उसी प्रकार हैं, जैसे स्वामी के अधीन सेवक। वे शब्द लेते हैं, घटाते-बढ़ाते हैं, तोड़ते-मरोड़ते हैं। वे शब्द उनकी आज्ञा मानते हैं और उनकी इच्छा के अनुसार ही आकार धारण करते हैं। आवश्यकतानुसार स्थान-ग्रहण करते हैं और तब भी उनकी प्रतिष्ठा अथवा गौरव में कमी नहीं आती थी।[४२]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि—

१. तुलसी की वाणी-धारा एक गति में प्रवाहित हुई है अतः व्याकरणिक बंधनों को वे स्वीकार करते हैं।
२. वे व्याकरण के क्षेत्र में नूतन अभिव्यंजना के समर्थक थे, इसीलिए उन्होंने स्वच्छंदता भी दिखलाई, और अनेक भव्य नूतन प्रयोग भी किए।
३. भावना के उमड़ते ज्वार में कवि के द्वारा किये गये प्रयोग ही उस प्रवाहित भावना के समर्थ वाहक थे, नियम थे, जो काव्य भाषा का अन्तरंग अंग है। ऐसे समय में प्रचलित व्याकरण के बंधनों का ढीला पड़ जाना बिल्कुल स्वाभाविक है, और यह भी हम तुलसी में पाते हैं।
४. रामचरित मानस में उपलब्ध व्याकरणिक प्रयोग कवि के मौलिक प्रयोग हैं, जो उनके व्यक्तित्व के एक नये रूप को प्रस्तुत करते हैं।

संदर्भ

१. किशोरीदास वाजपेयी, हिन्दी शब्दानुशासन, वाराणसी, सं० २०२३, पृ० ७८।
२. वही, पृ० ७६।
३. कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण—भूमिका, पृ० ३।
४. भर्तृहरि, वाक्यपदीय, १।१३।१४।
५. वामन, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, १।३-४, दिल्ली, प्रथम संस्करण।
६. एम० एम० कुप्पूस्वामी शास्त्री, हाइवेज ऐण्ड वाइवेज ऑव लिटररी क्रिटिसिज्म इन संस्कृत, मद्रास, १६४५, पृ० १८।
७. क्रिस्टोफर कॉडवेल, इलुजन ऐण्ड रियलिटी, नयी दिल्ली, १६५६, पृ० १२७।
८. वाल्टर रेले, स्टाइल, लंदन, पृ० १५।
६. चार्टल लेयार्ड, दि मिराकिल आव लैंग्वेज, न्यूयार्क, फिफ्थ प्रिंटिंग, पृ० २७८।
१०. वही, पृ० १६३।
११. वरदाचारी, ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, इलाहाबाद, पृ० २।
१२. डॉ० नगेन्द्र, विचार और विवेचन, दिल्ली, पृ० ५।
१३. चार्टल लेयार्ड, दि मिराकिल ऑव लैंग्वेज, न्यूयार्क, पंचम प्रकाशन, पृ० १४४।
१४. डोनाल्ड सी० फ्रीमैन, लिंग्स्टिक ऐण्ड लिटररी स्टाइल, न्यूयार्क, १६७०, पृ० १३।
१५. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, इलाहाबाद, १६६३, पृ० १४।
१६. महावीर प्रसाद द्विवेदी, साहित्यालाप, पटना, १६२६, पृ० २६६।
१७. ए० बी० कीथ, हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, लंदन, १६६१, पृ० ६।
१८. वही, पृ० १०।
१६. डॉ० वी राघवन, भोजराज श्रृंगार प्रकाश, मद्रास, १६६३, पृ० ७२३।
२०. कृष्ण चैतन्य, संस्कृत पोयटिक्स, बम्बई, १६६५, पृ० १२१।
२१. रामधारीसिंह 'दिनकर', मिट्टी की ओर, पटना, १६४६, पृ० ११५।
२२. डॉ० हरदेव बाहरी, हिन्दी सिमेंटिक्स, इलाहाबाद, १६५६, पृ ३२६।
२३. महावीर प्रसाद द्विवेदी, रसज्ञ-रंजन, आगरा, सं० २०१४, पृ० १८।
२४. डॉ० नगेन्द्र; मा० पा० कोश: दिल्ली; १६६५; पृ० ११३।
२५. डॉ० लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु'; जीवन के तत्व और काव्य सिद्धांत; १६६३; पृ० १२०।
२६ 'सरस्वती' : महावीर प्रसाद द्विवेदी; १६०५; उद्धृत हिन्दी शब्दानुशान सं० २०२३; पृ० ६१।
२७. किशोरीदास वाजपेयी; ब्रजभाषा-व्याकरण; पृ० ७।
२८. डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल; वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यक; मूल्यांकन; मेरठ; १६६६, पृ० ४१५
२६. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल; गोस्वामी तुलसीदास; काशी; सं० २०१६; पृ० १४८।
३०. वारान्निकोव; 'मानस की रूसी भूमिका'; अनु केशरीनारायण शुक्ल; लखनऊ; १६५५; पृ० ७६
३१. एलिजाबेथ स्वेल; दि स्ट्रक्चर ऑव पोयट्री; लंदन; १६६२; पृ० ८१।
३२. इंडो आर्यन; वोल्यूम २; पृ० २२७-२८, उद्धृत; गोस्वामी तुलसीदास; ले० शिवनन्दन सहाय; १६६१।
३३. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग १, काशी, सं० २०१७, पृ० ७१४
३४. डॉ० मायाप्रसाद गुप्त, तुलसीदास प्रयाग, १६४३, पृ० ३६१।
३५. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तलसीदास, काशी, १६३३, पृ० १८५।
३६ रोबर्ट मिलर ऐंड यान क्युरी, दि लैंग्वेज ऑव पोयट्री, लंदन, १६७०, पृ० ४२।
३७ उद्धृत, गोस्वामी तुलसीदास : शिवनंदन सहाय, १६६१ पटना; पृ० १८०-८१।
३८. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग-२, काशी, सं० २०१७, पृ० ७१४।
३६. श्यामसुन्दर दास, गोस्वामी तुलसीदास, हिन्दुस्तानी एकेडमी; इलाहाबाद, १६५२, पृ० १४७।
४०. रोबर्ट मिलर और यान क्युरी, दि लैंग्वेज ऑव पोयट्री, लंदन १६७० पृ० ३२।
४१ लोठार लुत्पे—दि लैंग्वेज ऑव लिटरेचर।
४२. एडविन ग्रीब्ज, ए स्केच ऑव हिन्दी लिटरेचर, जर्नल ऑव रायाइल एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, १६१८, पृ० ६०।

मानस की काव्यभाषा और लोकभाषा

बोलचाल की भाषा का संबंध जन-साधारण से रहता है, व्याकरण के बंधन भी उसमें स्वल्प ही रहते हैं। किसी भाषा के लिए लोकभाषा उसका जीवंत रूप समझा जाता है, क्योंकि बंधन राहित्य के कारण परिवर्तन निरन्तर होते रहते हैं। साहित्य के विचारकों ने काव्यभाषा और लोकभाषा में अंतर स्वीकार किया है। काव्यभाषा में शब्दों के चयन का महत्व होता है, परन्तु लोकभाषा में शब्द-चयन का महत्व नहीं है। रेने बेलेक ने लिखा है कि कविता की भाषा बोलचाल की भाषा से पृथक रहती है।[१] दोनों में मौलिक अंतर नहीं होता, यह विभेद रूपगत होता है।

काव्य की भाषा में स्थिरता रहती है और बोलचाल की भाषा में गतिमयता। लोकभाषा में शब्दसमूह एवं वाक्य की प्रधानता रहती है तो काव्यभाषा में शब्द की इकाई की। कविता में शब्द तो लोकभाषा के ही होते हैं, पर काव्यभाषा का इसमें अपना प्रयोग रहता है। दैनिक जीवन में प्रयुक्त एक शब्द प्रायः एक ही अर्थ देता है, पर काव्य में ऐसी बात नहीं होती। वहां शब्द के अर्थ साहचर्य के कारण अनेक हो जाते हैं। काव्य में शब्द-विन्यास का महत्व अधिक रहता है और उसके शब्द नादात्मक, बिंबात्मक तथा सांकेतिक होते हैं; पर बोलचाल की भाषा में नहीं। बोलचाल की भाषा में अभिधा प्रधान रहती है। अपनी लयता के कारण काव्यभाषा साधारण जीवन की भाषा से भिन्न हो जाती है। अलंकार-प्रयोग में भी काव्यभाषा जहां नवीन अलंकारों को प्रश्रय देती है, वहां लोकभाषा में इसके परित्यक्त अलंकार ही होते हैं। काव्यभाषा लिखित होती है और दैनिक व्यवहार की भाषा उच्चरित। लोकभाषा में वाक्य का प्रयोजन उसके अर्थ तक ही सीमित रहता है, परन्तु काव्यभाषा स्वयं काव्य होती है, क्योंकि काव्यभाषा का ही मोडेल है, रूप है और भाषा ही काव्य है। इस प्रकार दोनों में अंतर तो है, पर वे परस्पर विरोधी नहीं, एक दूसरे के पूरक और सहायक हैं तथा यह पार्थक्य केवल स्तर-भेद का है। तीव्र भावाभिव्यक्ति की भाषा स्वतः अलंकारमयी हो जाती है, साधारण क्षणों की भाषा नहीं। इसे वर्ड्सवर्थ भी स्वीकार करते हैं।[२]

काव्यभाषा और लोकभाषा, दोनों में मौलिक पार्थक्य नहीं है, केवल स्तर भेद है, अतः दोनों का संबंध अविच्छेद्य है। इलियट के अनुसार कविता की भाषा और बोलचाल की भाषा में अधिक अंतर नहीं होना चाहिए। दोनों का संबंध परस्पर पोषक है, एक-दूसरे के लिए प्राणदायक है।[३] लीविस के अनुसार मनुष्य की अत्यधिक जीवंत (vivid), भावप्रवण (emotional) और ऐन्द्रिय (sensual) अनुभव वस्तुतः

लोकभाषा से संबद्ध है।[४] बोलचाल की भाषा में भावना और अनुभूति की सफल अभिव्यक्ति होती है। विक्रमोर्वशीय में राजा उन्माद की अवस्था में संस्कृत न बोलकर प्राकृत और अपभ्रंश बोलने लगते हैं। इस पर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने टिप्पणी दी है कि भाव-विह्वल अवस्था की गाढ़ अनुभूतियों को लोकभाषा में अधिक सफलतापूर्वक व्यक्त किया जा सकता है।[५] कविता में लोकभाषा का प्रयोग उसकी मौलिकता और सहजता को सुरक्षित रखता है। दैनिक व्यवहार की भाषा में ऐसे शब्द अमित हैं जिनके प्रयोग से काव्य प्रभावित हो उठता है।[६] रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि साहित्य की भाषा में सामान्य शब्दों का ही व्यवहार होना चाहिए।[७] वस्तुतः कविता की भाषा में युग की लोकभाषा का ही विकास होता है। वैलरी ने भी स्पष्ट किया है कि कवि किस प्रकार यह कार्य करेगा। उसके अनुसार व्यावहारिक एवं दैनिक जीवन में साधारण भाषण में भाषा के भावात्मक (एफेक्टिव) साधन भाषा के साधारण तथा ऊपरी संप्रेषण के प्रकार्य (फंक्शन) से मिले रहते हैं जिन्हें कवि उद्घाटित तथा क्रियाशील करता है।[८] क्लियथ ब्रुक्स ने भी काव्यभाषा और लोकभाषा के संबंध के विषय में अपना अभिमत प्रकट करते हुए कहा है कि कविता साधारण बोली का ही विशिष्ट रूप है।[९] काव्यभाषा के निर्माण में लोकभाषा का श्रेय अद्वितीय है। परन्तु लोकभाषा हू-बहू काव्यभाषा के रूप में गृहीत नहीं होती। रूप और स्तर-भेद के कारण पार्थक्य रहते हुए भी दोनों में अविच्छेद्य संबंध है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। काव्यभाषा को अपने स्वरूप-निर्माण में संपूर्ण उपादान लोकभाषा से ही लेना पड़ता है।

ऊपर की विवेचना से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि लोकभाषा की कुक्षि से ही काव्यभाषा की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार दोनों में एक प्रकार की भिन्नता भी रहती है और अभिन्नता भी रहती है। काव्यभाषा का सतत यह प्रयास रहता है कि वह लोकभाषा के निकट रहे और उनके तत्वों से अनुप्राणित होते रहे। जहां कहीं भी यह सामीप्य दूर हुआ, काव्यभाषा यथार्थ की धरती से खिसक जाती है। इस प्रकार काव्य-भाषा हमेशा बोलचाल की भाषा का विस्तार पाना चाहती है और इधर लोकभाषा भी शिष्टजन मनोहारिणी बनने के हेतु काव्य की भाषा बन जाना चाहती है। निष्कर्षतः यह कहना बिल्कुल उचित है कि दोनों में अविच्छेद्य संबंध है।

तुलसी का रामचरितमानस ग्राम्य-गिरा में रचित है, पर है अद्वितीय महाकाव्य। भाषिक छंदों में दोहा और चौपाई ही प्रमुख है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार दोहा-चौपाई में काव्य-रचना की प्रणाली सूफी कवियों का आविष्कार नहीं है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि सहजयान के सिद्धों में से सरहपाद और कृष्णाचार्य के ग्रंथ में दो-दो, चार-चार चौपाइयों (अर्धालियों) के बाद दोहा लिखने की प्रथा पाई जाती है। अपभ्रंश काव्यों में दस-दस, बारह-बारह चौपाइयों, अर्धालियों के बाद घत्ता उल्लाला आदि लिख कर प्रबंध लिखने का नियम बहुत पुराना है। अपभ्रंश काव्यों में ठीक उन्हें चौपाई नहीं कहते थे परन्तु वे हैं वे वही चीज़ जिसे तुलसीदास ने और जायसी आदि ने चौपाई कहा है।"[१०] परन्तु सूफी कवियों ने दोहा-चौपाई का

क्रम निश्चित किया इसे तो सहर्ष स्वीकारा जाएगा। कुतबन और मंझन ने पांच अर्धालियों के बाद दोहे का क्रम रखा। जायसी, उसमान और शेखनबी ने सात-सात अर्धालियों के बाद दोहे का क्रम बैठाया। सूफी प्रेमाख्यानक परंपरा के प्रथम ज्ञात कवि मुल्ला दाऊद है जिन्होंने सन् १३८० ई० में चांदायन की रचना अवधी भाषा में की। संभावना है कि इनसे पूर्व भी अवधी की परंपरा होगी। डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी मानते हैं कि कोसली भाषा बारहवीं शताब्दी के मध्य में पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी।[११] अवधी को डॉ० चटर्जी ने पूर्वी हिन्दी की एक बोली कोसली कहा है जिसमें सत्यवती कथा, पद्मावत, रामचरितमानस आदि की रचना हुई।[१२] रोडा कवि कृत 'राउलवेला' नाम की एक कृति ग्यारहवीं शती की मिली है जिसका एक पाठ हिन्दी अनुशीलन के धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक में डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने प्रकाशित किया। यह कृति बिल्कुल कलात्मक है, इसकी भाषा पुरानी दक्षिण कोसली है।[१३], जिसके कुछ उदाहरण ये हैं—

१. अइं (सी) बेटिया जा घर आवइ। ताहि कि तू लिम्ब कोए पावइ।।

२. हांस गइ जा चालति अइसी। सावः खरणहु राउल कइसी।।[१४]

तात्पर्य यह कि दक्षिण कोसली में ग्यारहवीं शती से ही काव्य-रचना हो रही थी। इस प्रकार ग्यारहवीं शती से लेकर तुलसी-काल तक अवधी में अनेक रचनाएं हुईं, परन्तु किसी में काव्यत्व, भाषा, छंद, रस, गुण, अलकार, व्याकरण आदि की एक निश्चित विशिष्टताएं नहीं दिखलाई पड़तीं जो रामचरितमानस में है। इसी कारण तुलसी पूर्व अवधी रचित प्रेमाख्यानकों की भाषा को जन-सामान्य की भाषा मानना पड़ेगा। क्योंकि श्रृंगार रस के चित्रण के द्वारा पाठकों को मनोरंजन एवं प्रसिद्धि का ही उद्देश्य मुलसमान सूफी कबियों का था। यथा—

१. ओ मैं जानि कवित अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महं चीन्हा।
   जो यह पढ़ै कहानी, हम्ह सँवरे हुई बोल। —पदमावत: उपहार खंड

२. बांच कथा पोथी भुवन परसन तेहि जगदीस।
   हमहि बोल सुमिरे सोइ कासिम दई असीस।।—कासिम शाह : हंस जवाहिर

३. बिधना जब लग जगत माँ यह पुस्तक संचार।
   सबका साथ रहीम के नाँव रहै उजयार।।—शेख रहीम, भाषा प्रेमरस

इनमें जायसी का उद्देश्य उत्तम है, उन सबकी अपेक्षा बेहतर है। उसमान, आलमल, नूर मोहम्मद, शेखनबी आदि की रचनाएं गुण-सम्पन्न होते हुए भी तरुणों के हृदय में काम बढ़ाने वाली तथा भोग-विलासियों को तृप्ति देने वाली है—

१. तरुनन्ह के मन काम बढ़ावा। भोगी कह सुख भोग बढ़ावा।।—उसमान

२. कामी पुरुष रसिक जे सुनहीं। ते या कथा रैनि दिन सुनहीं।।—आलम

३. कासिम जीवन हाथ है, चहै, सो काज सँवार।—कासिम शाह

वे रचनाएँ हैं, प्रेम रस की ऐसी रस-मंजरी कि मूर्खों तक को विमुग्ध कर देने की सामर्थ्य इनमें है। इसलिए इन सब की बोली जन-सामान्य की अवधी है।

जायसी एक प्रतिभा-संपन्न कवि थे। उन्होंने जो कुछ लिखा, बिल्कुल जन-

सामान्य की भाषा में लिखा। कथन-भंगिमा जन-सामान्य की है। वे एक ऐसे कवि थे जिन्हें हिन्दू धर्म तथा स्थानीय भाषा का विस्तृत ज्ञान था। उन्होंने निरे बोलचाल की भाषा में रचना की। तुलसी की साहित्यिक शब्दावली का मात्र कहीं-कहीं प्रयोग है; अपवाद-स्वरूप ही। सर्वत्र जन-सामान्य की अवधी का प्रयोग है—

तोलन्हि साँस पेट महँ अही। जो लहि दसा जीउ कै रही ॥
काल आइ दिखराइ साँटी। उठि जिउ चला छांड़ि कै माटी ॥
काकर लोग कुटुम घर बारू। काकर अरथ दरब संसारू ॥
ओही घड़ी सब भयेउ परावा। आपन सोइ सो परसा खावा ॥

—पद्मावत

तुलसी के रामचरितमानस में पचहत्तर प्रतिशत संस्कृत तत्सम शब्दावली का प्रयोग है। ठीक इसके विपरीत जायसी के पद्मावत में मात्र दस प्रतिशत भी तत्सम शब्द मिलने की आशा नहीं और सर्वत्र ठेठ, तद्भव, ग्राम्य भाषा के ही रूप हैं। उदगम की दृष्टि से जायसी में चार प्रकार के शब्द पाये जाते हैं—

(क) संस्कृत तत्सम शब्द :—गगन, प्रेम, सुगंध, संसार आदि।
(ख) प्राकृत शब्द :—मकु, हम्ह, पुहुप आदि।
(ग) अरबी-फारसी शब्द :—सुल्तानू, सिद्दीक, बुरुज आदि।
(घ) हेरफेर से निर्मित—प्रेत का अर्थ पिरोती और पईता का अर्थ दैत्य आदि।

जायसीकी भाषा तद्भव शब्दावली की भाषा है। उन्होंने सामान्य बोलचाल की अवधी में रचना की और तुलसीदास ने परिष्कृत साहित्यिक अवधी में। इन्होंने संस्कृत तत्सम शब्दावली का ही सर्वाधिक प्रयोग किया है। इसी कारण इनके 'मानस' की भाषा साहित्यिक बन गई है। तुलसी की भाषा के स्वरूप को पूर्णतया समझने के लिए जायसी की भाषा का अध्ययन शुक्ल जी आवश्यक समझते हैं।[१५] उनके अनुसार 'पद्मावत', हिन्दी के सर्वोत्तम प्रबंधकाव्यों में है, ठेठ अवधी भाषा के माधुर्य और भावों की गंभीरता की दृष्टि से यह काव्य निराला है।[१६] डॉ० उदयभानु सिंह ने तुलसी के संबंध में लिखा है कि उन्होंने रामचरितमानस के विभिन्न सोपानों के मंगल-श्लोक संस्कृत में लिख, स्तुतियों और गीताओं में संस्कृत पदावली का व्यवहार किया और संपूर्ण काव्य में ठेठ अवधी के स्थान पर संस्कृत-गर्भित साहित्यिक अवधी का प्रयोग किया।[१७] आचार्य शुक्ल के अनुसार "जायसी की भाषा बोलचाल की और सीधी-सादी है। समस्त पदों का व्यवहार उन्होंने बहुत कम किया है—जहां किया भी है वहां दो से अधिक पदों के समास का नहीं।[१८] शुक्ल जी ने जायसी और तुलसी की भाषा का तुलनात्मक रूप रखकर जो विवेचना की है उसे उन्हीं की भाषा में प्रस्तुत करना हम आवश्यक समझते हैं।

"जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है, पर उसका माधुर्य निराला है। वह माधुर्य भाषा का माधुर्य है, संस्कृत का माधुर्य नहीं। वह संस्कृत की कोमल-कान्त पदावली पर अवलम्बित नहीं। उसमें अवधी अपनी निज की स्वाभाविक मिठास लिए हुए है। 'मंजु', 'अमंद' आदि की चाशनी उसमें नही है। जायसी की भाषा और

तुलसी की भाषा में यही बड़ा भारी अन्तर है। जायसी की पहुंच अवध में प्रचलित लोक भाषा के भीतर बहते हुए माधुर्य-स्रोत तक ही थी, पर तुलसी की पहुंच दीर्घ संस्कृतकवि परंपरा द्वारा परिपक्व चाशनी के भांडागार तक भी पूरी-पूरी थी।··· यदि गोस्वामी जी ने अपने मानस की रचना ऐसी ही भाषा में की होती जैसी कि इन चौपाइयों की है—

कोउ नृप होउ हमैं का हानी। चेरि छाँड़ि जब होब कि रानी॥
जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाय तुम्हारा॥

तो उसकी भाषा पद्मावत की भाषा होती और यदि जायसी ने सारी पद्मावत की रचना ऐसी भाषा में की होती जैसी कि इस चौपाई की है—

उदधि आह तेइ बन्धन कीन्हा। हति दसमाथ अमर पद दीन्हा॥

तो उसकी और रामचरितमानस की एक भाषा होती। पर जायसी में इस प्रकार की भाषा कहीं ढूंढने से एकाध जगह मिल सकती है। तुलसीदास में ठेठ अवधी की मधुरता भी प्रसंग के अनुसार जगह-जगह मिलती है।"[१९]

मानस की भाषा के सम्बन्ध में यह बात स्मरणीय है कि काव्यभाषा को मानस में इतना ऊंचा उठाया गया है कि वहां लोकभाषा को खोजना पड़ता है। पद्मावत की भाषा की स्थिति ठीक इसके विपरीत है। वहां काव्यभाषा को ही खोजना पड़ता है। तुलसीदास की भाषा जितनी ही लौकिक है, उतनी ही शास्त्रीय। उनमें संस्कृत का मिश्रण बड़ी चतुरता के साथ किया गया है। जहां जैसा विषय होता है, भाषा अपने-आप उसके अनुकूल हो जाती है। तुलसीदास के पहले किसी ने इतनी मार्जित भाषा का उपयोग नहीं किया था। जहां भाषा साधारण और लौकिक होती है वहां तुलसीदास की उक्तियां तीर की तरह चुभ जाती हैं और जहां शास्त्रीय और गंभीर होती है वहां पाठक का मन चील की तरह मंडराकर प्रतिपाद्य सिद्धान्त को ग्रहण कर उड़ जाता है।[२०]

मानस की भाषा भी काव्यभाषा से संयुक्त है, पर कहीं-कहीं लोकभाषा के भी दर्शन होते हैं। निराला ने महान् साहित्य को बृहत साहित्य बताते हुए उनके सम्बन्ध में जो अपना विचार प्रस्तुत किया है, वह तुलसी की भाषा के लिए बिलकुल फिट बैठता है। उनका कहना है कि "बृहत् साहित्य यानी ऊंचे भावों से भरे हुए साहित्य से ही देश, काल या संस्था का अब तक यथार्थ कल्याण हुआ है। उन प्राचीन बड़े-बड़े साहित्यिकों की भाषा कभी जनता की भाषा नहीं रही। सोलह आने में चार आने जनता के लायक रहना साहित्य का ही स्वभाव है, क्योंकि साहित्य में सब तरह की अभिव्यक्तियां होती हैं।"[२१]

जायसी की भाषा में न तो संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्राचुर्य है और न कोमल-कांत-पदावली का माधुर्य है। इनकी भाषा में स्थानीय रूप सुरक्षित है। इसलिए इनकी भाषा व्याकरण तथा शास्त्रीय नियमों से भी बन्धी हुई नहीं है। इसके विपरीत मानस की भाषा साहित्यिक है, परिनिष्ठित है, भावनानुकूल तथा रसानुकूल है, परिस्थित्यनुकूल और पात्रानुकूल है। जायसी की भाषा में ऐसे पात्रानुकूल भाषा

स्तर नहीं मिलते हैं, उन्होंने सब पात्रों के लिए एक जैसी भाषा का प्रयोग किया है। तुलसी का मानस महाकाव्य है और महाकाव्य में सब प्रकार के पात्रों के मानसिक और बाह्य, इनका सही रूप चित्रित करने के लिए अनेक स्तर की भाषाओं का प्रयोग कवि को करना पड़ता है। निम्न पात्रों के वर्णन में तुलसी की भाषा लोकभाषा हो जाती है, जैसे कोल-किरात और निषाद आदि की भाषा, मानस में कुछ ही स्थल पर पात्र-विशेष की मनोदशा के चित्रण में हम लोग भाषा का सौन्दर्य पाते हैं। यहां जायसी और तुलसी की भाषा का कुछ तुलनात्मक रूप प्रस्तुत किया जा रहा है।

रामचरितमानस के प्रतिपाद्य के विषय में कविवर का उद्घोष इन शब्दों में प्रकट हुआ है—

जेहि महँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥

यदि 'मानस' के आदि, मध्य और अवसान स्थलों की भाषा की जायसी की 'पद्मावत' से तुलना करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी में काव्यभाषा का स्वर निनादित है और जायसी में लोकभाषा का। दोनों महाकवियों ने अपने-अपने महाकाव्य का प्रारंभ वंदना से किया है। जायसी की वन्दना की भाषा है—

सुमिरौ आदि एक करतारू, जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू।
कीन्हेसि प्रथम जोति परकास, कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू।
कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा, कीन्हेसि बहुतै रंग उरेगा।
कीन्हेसि धरती, सरग, पतारू, कीन्हेसि बरन बरन ओतारू। [२२]

तुलसी की बंदना की भाषा का स्वरूप इस प्रकार है—

बंदौ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।
अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू।
सुकृत संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती।
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किए तिलक गुन गन बस करनी।
श्री गुरुपद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिएँ होती॥[२३]

जायसी की भाषा लोक कंठानुरूप प्रतीत होती है। उसमें प्रयुक्त 'परकास', 'पिरीत' 'उरेह', 'सरग', 'पतार' आदि के कारण भाषा बोलचाल के अधिक समीप है। पर तुलसी में हम संस्कृत-मिश्रित तथा कोमल-कांत पदावली एवं विविध अलंकारों से युक्त एक साहित्यिक भाषा पाते हैं।

रत्नसेन के दो पुत्र होते हैं, इसका वर्णन करते हुए जायसी कहते हैं—

जाराउं नागमती नगसेनहि। ऊँच भाग, ऊँचे दिन रैनहि।
कवंलसेन पद्मावति जाएउ। जानहुं चन्द धराति महँ आएउ।
पंडित बहु बुध वंत बोलाए। कासि बरग और गरह बताए। [२४]

रामचरितमानस में राजा दशरथ के पुत्र-रत्न की प्राप्यि के समय तुलसीदास लिखते हैं—

जोग लगन ग्रह बार तिथि, सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हरषै जुत, राम जन्म सुख मूल॥

... ...

भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभा सिंधु खरारी ।। [२५]

जायसी की भाषा में जहाँ हम 'धरति', 'बरग', 'गरह' आदि शब्द पाते हैं तो तुलसी में ग्रह, तिथि, दीनदयाल, कृपाल, मुनिमनहारी, अद्भुतरूप, लोचन अभिराम, तन घनश्याम, भूषण नयन, विशाल, शोभा सिंधू खरारी आदि समस्त शब्दयोजना संस्कृत की तत्सम शब्दावली से चयित है, जिसके कारण इनकी भाषा काव्यभाषा बन गई है।

'पद्मावत' के उपसंहार की भाषा का स्तर भी वही है—

मुहमद बिरिध बैंस जो भई। जोबन हुत, सो अवस्था गई।
बल जो गएउ कै खीन सरीरू। दिष्टि गई नैनहि देइ नीरू।
दसन गए कै पचा कपोला। बैंन भए अनरुच देइ बोला ।। [२६]

और, 'मानस' के उपसंहार की भाषा का सौन्दर्य देखें—

यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन विषादा।
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा।
मो समदीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि हरहु विषम भव भीर ।। [२७]

यह स्पष्ट है कि जायसी की रचना लोकभाषा के अंतर्गत आती है और तुलसी की काव्यभाषा के अंतर्गत। सचमुच जायसी की कृति में उनका मात्र कवि-रूप ही अधिक उभरा है, पर लोकभाषा में। इसलिए "इनकी कृति स्वाभाविक बोलचाल के यथातथ्य शब्दों से पूर्ण है।" [२८] लेकिन कुछ स्थलों को छोड़ कर 'मानस' में सर्वत्र काव्यभाषा प्रयुक्त हुई है।

नागमती और पद्मावती के विलाप की भाषा लोक-कंठ से प्रस्फुटित प्रतीत होती है, इसलिए इस भाषा में 'दुहेली', 'निचिंत', 'निबहुर', 'डोल', 'लेजुरि' और 'जिउ' जैसे तद्भव यथा ठेठ शब्दों का प्रयोग मिलता है—

पद्मावति बिनु कंत दुहेली। बिनु जल कवँल सूखि जस बेली।
गाढ़ी प्रीति सो मो सौं लाए। दिल्ली कंत निचिंत होइ छाए।
सो दिल्ली अस निबहुर देसू। कोइ न बहुरा कहै सँदेसू।
जों गवनैं सो तहाँ कर होई। जो आवै किछु जान न सोई।
अगम पंथ प्रिय तहाँ सिधावा। जो रे गएउ सो बहुरिन आवा।
कुवाँ धार जल जैस बिछोवा। डोल भरे नैंनन्ह चनि रोवा।
लेजुरि भई नाह बिनु तोही। कुवांवरी, धारि काढसि मोही।
नैंन डोलभरि ढारै, हिये न आगि बुझाइ।
धरी धरीजिउ आवै, धरी धरी जाइ ।। [२९]

रावण द्वारा सीता के हरण का वर्णन कवि करते हैं तो भाषा संस्कृत-गर्भित हो जाती है—विपत्ति की गहराई में भाषा भी संस्कृत-रूप धारण कर लेती है—

हा जगदेकबीर रघुराया। केहि अपराध बिसारिहु दाया।
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिन नायक ।। [३०]

सीता के वियोग में राम की भाषा तो और भी अनेक बिंबों, धारणाओं, अलंकारों से युक्त साहित्यिक हो जाती है—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखीं सीता मृग नयनी।
खंजन सुक कपोत मृगमीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना।
कुंद कलीं दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी।
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू।। [११]

लोक में विवाह एक प्रधान संस्कार है। विवाह-वर्णन की भाषा भी बिल्कुल संस्कृत शब्दावली से परिपूर्ण है—

पहिरें बरन-बरन बरचीरा। सकल विभूषन सजे सरीरा।
बिधुबदनी सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छवि रति मदु मोचनि।
सकल सुमंगल अंग बनाएँ। करहिं गान कलकंठ लजाएँ।
कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं। चालि बिलोकि काम गजलाजहिं। [१२]

वन-गमन के अवसर पर राम, सीता को समझा कर कह रहे हैं कि तुम वन नहीं जाओ। राम का यह समझाना भी काव्यात्मक हो उठा है। राम कहते हैं—

हंस गवनि नहिं बन जोगू। सुनि अपजसमोहि देइहि लोगू।
मानस सलिल सुधां प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली।
नव रसाल बन बिहरन सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला।
रहा भवन अस हृदयं बिचारी। चंदबदनि दुखु कानन मानी।। [१३]

भक्ति जैसे निगूढ़ और ज्ञान जैसे अगम विषयों के वर्णन में भी कवि की भाषा संस्कृत शब्दावली से ही निर्मित है, काव्यात्मक हो गई है। भक्ति के वर्णन में कहीं-कहीं तो आद्यंत विशुद्ध संस्कृत शब्दों की ही मधुर चाशनी से आप्लावित भाषा दीखती है। नारद-द्वारा राम की स्तुति की भाषा इसी प्रकार की है। यथा—

जातु धान बरुथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अध गंजन।
भूसुर ससि नव वृन्द बलाहक। असरन सरन दीन जन गाहक। [१४]

ज्ञान का वर्णन भी पारिभाषिक और साहित्यिक शब्दावली का मणि-कांचन योग कहा जा सकता है। ऐसे स्थलों की भाषा तो साधारण-जन की भाषा से बिल्कुल दूर हो जाती है—

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा।
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा।
प्रबल अविद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटै अपारा।। [१५]

ईश्वर के वर्णन की भाषा तो और भी संस्कृत-गर्भित हो जाती है। यथा—

अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथ बादी।
नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा। [१६]

निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा।
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ।।[३७]

ऋतु-वर्णन में भी तुलसीदास ने काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है। संस्कृत शब्दावली का तथा कोमल कांतपदावलियों का सुरम्य प्रयोग मिलता है। वसंत ऋतु का वर्णन देखें —

चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला।
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीकपटली कर गाना।
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहै मनोहर बाऊ ।।[३८]

जिस दृश्य के चित्रण में तुलसीदास ने कवि भाषा का सहारा लिया है, वहां तो कहना ही क्या है। "तुलसीदास के पहले किसी ने इतनी मार्जित भाषा का उपयोग नहीं किया था। काव्योपयोगी भाषा लिखने में तो तुलसीदास कमाल करते हैं।" उपमा के रजतपथ पर झूमती हुई भाषा जब आगे बढ़ती है तो उसका सौन्दर्य बड़ा ही आकर्षक हो जाता है। राम-कथा की महिमा दिखलाने के क्रम से कवि ने ऐसी ही काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है —

सदगुर ज्ञान बिराग जोग के। बिबुधबैद भव भीम रोग के ।।
जननि जनक सिअ राम पेम के। बीज सकल ब्रत धरम नेम के ।।
... ...

सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से ।।[३९]

जायसी की कृति में मात्र दो छंद मिलते हैं—दोहा और चौपाई। ये दोनों छंद लोक-भाषा के अपने छंद हैं। तुलसीदास के 'मानस' में इनका प्रयोगाधिक्य तो स्पष्ट है, पर इसके साथ-साथ लोक-कंठ से निःसृत अन्यान्य छंदों को भी कवि ने अपने पावन स्पर्श से सुरभित किया है। रामचरितमानस में कुल इक्कीस प्रकार के छंदों का प्रयोग मिलता है —अनुष्टुप, शार्दूलविक्रीड़ित, वसंततिलका, वंशस्थ, इन्द्रवज्रा, मालिनी, स्रग्धरा, रथोद्धता, दोहा, चौपाई, दोहरा, सोरठा, चरैबोला, हरिगीतिका, चौपैया, त्रिभंगी, पद्मावती, तोमर, प्रमाणिका, तोटक और भुजंगप्रयात्। ये सारे छंद भाव तथा विषय के अनुकूल प्रयोगित हैं।

मुहावरे, लोकोक्तियों तथा विविध अलंकारों और बिंबों का प्रयोग जायसी ने किया है, पर भाषिक सौन्दर्य की दृष्टि से तुलसी जैसे प्रयोग नहीं कहे जा सकते। आचार्य शुक्ल के कथनानुसार जायसी में "कहावतें और मुहावरें भी कहीं-कहीं मिलते हैं पर वे यों ही भाषा के स्वाभाविक प्रवाह में आए हुए हैं; काव्य-रचना के लिए कोई आवश्यक अंग समझ कर नहीं बांधे गए हैं।"[४०] जहां तक वाक्य-रचना का संबंध है, वह भी तुलसी के समान सुव्यवस्थित नहीं है।[४१]

सब दृष्टि से जायसी की भाषा लोकभाषा है। जायसी के 'पद्मावत' में बहुत कम ऐसे स्थल हैं, जहां भाषा में संस्कृत शब्दावली का आधिक्य हो। यहां कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

भौंह धनुक साधे सर फेरै। नयन कुरंग भूलि जनु हेरे ।।

... ...

केहरिलंक, गवन गज हारे। सुर नर देखि माथ भुई चारे ।।[४२]

आजु वसंत नवल ऋतु राजा। पंचमि होइ, जगत सब साजा ।।[४३]

प्रथम वसंतनवल ऋतु आई। सुऋतु चैत बैसाख सोहाई ।।[४४]

उदधि आइ तेइ बंधन कीन्हा। इति दसमाथ अमरपद दीन्हा ।।[४५]

रामचरितमानस में भाषा को इतना ऊंचा उठाया गया है कि वहां लोकभाषा खोजने से मिलती है। मंथरा के बहकाने के प्रथम प्रयास में जब कैकेयी झुकती नहीं है, तब भाषा लोकभाषा की गोद में बैठकर बोलती है—

हमहु कहबि अब ठकुर सोहाती। नाहि त मौन रहब दिनु राती ।।
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ।।
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाडि अब होब कि रानी ।।
जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ।।[४६]

भरत के ससैन्य, सपरिवार प्रयाग-आगमन का अर्थ निषाद कुछ दूसरा ही समझ रहे हैं। उनका अनुमान है कि भरत राम से युद्ध करने जा रहे हैं। अतः उनके हृदय में स्थित भक्ति वीर रस से अनुरंजित हो गई, भरत से युद्ध करने के लिए तैयार हो गए और अपने साथियों से कहते हैं—

होहु संजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरइ के ठाटा।
बेगहु भायहु सजहु संजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ।
... ...

दीख निषाद नाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाउ ढोलू ।।[४७]

यहां तुलसी की भाषा बिल्कुल साधारण बोलचाल की भाषा ही गई है. जिसमें स्थानीय तथा ठेठ शब्दों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। भाषा का यह रूप कहीं-कहीं मिलता है और जहां कहीं भी मिलता है, वहां साभिप्राय है। किसी पात्र-विशेष के संदर्भ में प्रयुक्त है। निषादों के मानसिक स्तर और उनके संस्कार-सूचक ये ठेठ शब्द हैं। जैसे— संजोइल, ठाटना, जोहारि जोहारी, भाथी, धनहीं, अँगरी, कूँड़ि, सेल, खाँड़, गुह, टोलू, ढोलू आदि स्थानीय प्रयोग हैं।

सीता-लक्ष्मण सहित राम के गंगा-पार होते समय केवट की अटपटी भक्ति जिन शब्दों में प्रकट हुई है, वह बिल्कुल लोकभाषा का ही रूप है :—

छुअत मिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई ।।
तरिनिउँ मुनिघरिनी होइ जाई। बाट परै मोरि नाव उड़ाई ।।
सहि प्रति पालउँ सबु परिवारू। नहि जानउँ कछु और कबारू ।।

केवट राम रजायसु पावा । पानि कठवता भरि लइ आवा ।।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी । आजु दीन्हि विधि बनि भलि भूरी ।।[४८]

यहां भी 'काठ', 'धरनी', 'कबारू', 'कठोता', 'मजूरी', 'बनि', आदि ठेठ शब्दों का आधिक्य है जिसके चलते भाषा लोकोन्मुखी अधिक हो गई है । लेकिन ऐसे प्रयोग 'मानस' में बहुत कम हैं । क्योंकि तुलसी ने इस स्तर की भाषा का प्रयोग भी जान-बूझ कर किया है, जिसके कारण पात्रानुकूल भाषा की सहजता दिखलाई पड़ती है । वस्तुत: ठेठ शब्दों के प्रयोग से भाषा की व्यापकता को क्षति पहुंचती है, इसी से तुलसीदास ने ऐसे शब्द कम रखे हैं ।"[४९]

निष्कर्ष यह कि तुलसीदास महाकवि थे और इन्होंने भाषा के विविध रूप प्रदान किए । परिस्थिति, अवसर, पात्र आदि के अनुकूल भाषा का व्यवहार किया है । इनमें आद्यंत काव्यभाषा अपने सुनियोजित रूप में दिखलाई पड़ती है । आचार्य शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि "गोस्वामी शास्त्र-पारंगत विद्वान थे अत: उनकी शब्द-योजना साहित्यिक और संस्कृत-गर्भित है । जायसी में केवल ठेठ अवधी का माधुर्य है, पर गोस्वामी जी की रचना में संस्कृत की कोमल पदावली का भी मनोहर चित्रण है ।"[५०]

भाषा के क्षेत्र में भी कवि का अपना संतुलित दृष्टिकोण रहा है । "उन्होंने न तो जायसी आदि कवियों की ठेठ अवधी को ही अपनी काव्यभाषा के अनुकरणीय आदर्श के रूप में स्वीकार किया और न परिष्कृति के नाम पर उन्होंने पंडितों की संस्कृत-गर्भित किन्तु कृत्रिम शब्दावली से ही अपनी काव्यभाषा को अनुरंजित होने दिया । यही कारण है कि इनकी भाषा में साहित्यिक सरसता एवं परिष्कृति के साथ ही सरलता सुबोधता एवं अकृत्रिमता के गुणों का भी पूर्ण समावेश पाया जाता है ।"[५१] सचमुच तुलसीदास ने अवधी में 'मानस' की रचना कर उसे सुसंस्कृत और मधुर बना दिया ।[५२] साहित्यिकता के कारण ही रामचरितमानस की अवधी अमर हो गई ।[५३]

संदर्भ

१. रेने वेलेक, ए हिस्ट्री ऑव मोडर्न क्रिटिसिज्म, लंदन, १९६१, पृ० ४१ ।
२. शांतिस्वरूप गुप्त, पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत, दिल्ली, १९६७, पृ० १३० पर उद्धृत ।
३. टी० एस० इलियट, दि यूज ऑव पोएट्री ऐण्ड दि यूज ऑव क्रिटिसिज्म, फेबर पेपर कवर्ड एडीसन, इन्ट्रोडक्शन, पृ० १५ ।
४. एफ० आर० लीविस, न्यू बियरिंग्स इन एंग्लिश पोयट्री, पेंग्विन बुक्श, १९६३, पृ० १६७ ।
५. हजारी प्रसाद द्विवेदी, विक्रमोर्वशीय ।
६. जॉन लिविंगस्टन लोवेस, कनवेंशन एंड रिवोल्ड इन पोएट्री; लंदन, १९३८, पृ० ११९ ।
७. रामचन्द्र शुक्ल, बुद्ध-चरित, वाराणसी, १९९५ वि०, 'वक्तव्य' पृ० ३८ ।
८. वैलरा, उद्धृत कृष्ण चैतन्य, संस्कृत पोयटिक्स, बम्बई, १९६५, पृ० १४१ ।
९. क्लिग्रन्थ बुक्स, अण्डर स्टेंडिंग पोयट्री, न्यूयार्क, १९५०, इन्ट्रोडक्शन, पृ० ११ ।
१० हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, दिल्ली, १९६९, पृ० ६५ ।
११. दामोदर पंडित, उक्ति व्यक्ति प्रकरण, चटर्जी की भूमिका, पृ० ७०
१२ उपरिवत्, पृ० २ ।

१३. डॉ० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, वर्ष १३, अंक १-२, सन् १९६०, पृ० २३ ।
१४. उपरिवत्, पृ० २६, २७ ।
१५. रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली, काशी, सं० २००३ वि०, 'वक्तव्य' पृ० १ ।
१६. उपरिवत्, पृ० १ ।
१७. डॉ० उदयभानु सिंह, तुलसी-काव्य मीमांसा, दिल्ली, १९६६, पृ० २४० ।
१८. रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रंथावली, काशी, सं० २००३, वि०, पृ० १९६ ।
१९. वही, पृ० १९६ ।
२०. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, दिल्ली, १९६९, पृ० १०३ ।
२१. निराला, भाषा और साहित्य, उद्धृत, साहित्य सरिता, सं० प्रो० शिवपूजन सहाय, पटना, वि० सं० २००१, पृ० १७४ ।
२२. रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली, काशी, सं० २००३, पृ० १ ।
२३. रामचरितमानस, १।१।
२४. रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रंथावली, काशी, सं० २००३, पृ० १९८ ।
२५ रामचरितमानस, १।१९०-१९२ छंद ।
२६. रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रंथावली, काशी, सं० २००,३ पृ० ३०२ ।
२७. रामचरितमानस, ७।१३० ।
२८. डॉ० रामकुमार वर्मा; हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वि० सं०, पृ० ४४४ ।
२९. रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रंथावली, काशी, सं० २००३, पृ० २६४ ।
३०. रामचरितमानस, ३।२९। १-२ ।
३१. रामचरितमानस, ३।३० ।
३२ वही, १।३१८ ।
३३. वही, २।६३ ।
३४. रामचरितमानस, ७।५१ ।
३५. वही, ७।११८ ।
३६ वही, १।१४४ ।
३७. वही, ७।७२ ।
३८. रामचरितमानस, ३।४० ।
३९. रामचरितमानस, १।३२ ।
४०. रामचन्द शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली, काशी, सं० २००३, भूमिका, पृ० १९२ ।
४१. उपरिवत्, पृ० १९६ ।
४२. रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली, काशी, सं० २००३, पृ० २० ।
४३ उपरिवत्, पृ० ८० ।
४४. उपरिवत्, पृ० १४८ ।
४५. उपरिवत्, भूमिका, पृ० १९७ पर उद्धृत ।
४६. रामचरितमानस, २।१६ ।
४७. रामचरिनमानस, २।१९०-१९२ तक ।
४८. रामचरितमानस, २।१००-१०२ ।
४९. लाला भगवान दीन तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कवितावली-टीका, प्रयाग वि० सं० २००३, 'अन्तर्दर्शन', पृ० १० ।
५०. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी, सं० वि० २००६, पृ० ७२ ।
५१. डॉ० राजकुमार पांडेय, रामचरितमानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन, कानपुर, १९६३, पृ० ४९३ ।
५२. डॉ० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, इलाहाबाद, सन् १९७१, पृ० ४५६ ।
५३. डॉ० बाबूराम सक्सेना, एवोल्यूशन ऑव अवधी, भूमिका, पृ० ९ ।

रामचरितमानस के पात्र और उसकी काव्य भाषा

अन्य विधाओं की अपेक्षा महाकाव्य में वैविध्य और व्यापकता अधिक रहती है। मानव, प्रकृति आदि अनेक रूपों का विशद चित्रण उदात्त शैली में महाकाव्य में देखने को मिलता है। महाकवि की विशद अभिव्यक्ति का माध्यम महाकाव्य में प्रयुक्त पात्र ही हैं, चाहे वे काल्पनिक हों या ऐतिहासिक हों या प्रख्यात। सचमुच महाकाव्य की भाषा का निगमन पात्र करते हैं।

संस्कृत के आचार्यों ने पात्रानुसारी भाषा का निर्देशन पहले ही कर दिया था। भरतमुनि ने इस पर विस्तार से विचार किया है। 'नाट्यशास्त्र' में चार प्रकार की भाषाओं का विवरण मिलता है— अतिभाषा, आर्यभाषा, जातिभाषा और योन्यन्तरी भाषा। अतिभाषा, वैदिक शब्द-बहुल होती है। आर्यभाषा श्रेष्ठजनों की भाषा है। योन्यन्तरी भाषा, पशु-पक्षियों की बोली की अनुकरणात्मक भाषा है और जातिभाषा रूपकों (नाटकों) की भाषा है।[1]

जातिभाषा अर्थात् नाटकों की भाषा के दो रूप हैं—संस्कृत और विभिन्न प्राकृत। उच्च वर्ग के पात्र संस्कृत बोलते हैं और निम्न तथा सभी नारी-पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। अप्सराएं सामान्य रूप से संस्कृत भाषा का प्रयोग करती हैं, परन्तु नृप-पत्नी होने पर प्राकृत-भाषा का व्यवहार करती हैं।[2]

यह सर्वथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है कि पात्रों के व्यक्तित्व के अनुरूप भाषा प्रयोग हो। महाकाव्य में प्रधान नायक और खलनायक के साथ-साथ पार्श्ववर्ती अनेक घटनाओं को संयोजने वाले अनेक पात्रों का भी विधान रहता है। पंडित, ज्ञानी साधु-संत, संन्यासी, देवता-राक्षस, ऊंच-नीच, राजा-रंक आदि के वर्णन में सबके, व्यक्तित्वों की परख कवि को अच्छी तरह करनी पड़ती है और तदनुकूल भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। यदि सब तरह के पात्रों के साथ एक ही प्रकार की भाषा का प्रयोग कर दिया जाए तो इससे महाकाव्य की भाषा में दूषण आ जाएंगे। यही कारण है कि प्राचीनकाल के प्रबुद्ध चिंतकों ने भाषा का सुस्थापन पात्रों के अनुरूप करने का आदेश दिया और कवियों ने उसका पालन भी किया है।

पात्रों के अनुसार ही भाषा रहे, उनके विविध स्तर की मनोदशा का नहीं मिले, तो भी पात्रानुसारी भाषा में सफलता और कसावट नहीं आती है। "गरिमामयी भाषा का उपयोग सर्वत्र नहीं करना चाहिए क्योंकि छोटी-छोटी बातों को बड़ी-बड़ी और भारी-भरकम संज्ञा देना किसी छोटे से बालक के मुंह पर पूरे आकार वाला त्रासद अभिनय

का मुखौटा लगा देने के समान है।"[३] इसीलिए भरतमुनि ने पात्र के साथ-साथ अवसर के अनुरूप भी भाषा का विधान करते हुए कहा है—

एषामेवतु सर्वेषां नायकानां सम्प्रयोजयेत् । ३०
कारणव्यपदेशेन प्राकृतं सम्प्रयोजयेत् ।
ऐश्वयेर्ण प्रमत्तस्य दारिद्रेण प्लुतस्य च ।। ३१
उत्तमस्यापि पठत: प्राकृतं सम्प्रयोजयेत् ।

अर्थात् ऐश्वर्य से प्रयत्न होकर तथा दरिद्रता से ग्रस्त होकर संस्कृत भाषा बोलने वाले नायक को भी प्राकृत बोलना चाहिए। जिस प्रकार शिक्षित और अशिक्षित, अभिजात और निम्नकुलोत्पन्न, सभी के लिए एक भाषा का बोलना स्वाभाविक नहीं, उसी प्रकार एक व्यक्ति का भी सभी अवसरों पर एक ही प्रकार की भाषा बोलना स्वाभाविक नहीं।

'अग्निपुराण' में भी पात्रानुसारी भाषा के प्रयोग करने की चर्चा आई है—

देवादीनां संस्कृतं स्यात्प्राकृतं त्रिविधं नृणाम् ।[३A]

अर्थात् काव्य या नाटक में संस्कृत भाषा का प्रयोग देवताओं के मुख से कराना चाहिए जबकि मनुष्यों के मुख से तीन प्रकार की प्राकृत (महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी) का प्रयोग कराना चाहिए।

आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य-दर्पण' में भाषा-विवेचन में पात्रानुसारी भाषा की चर्चा की है कि उच्च पात्रों की भाषा में उच्चता, गरिमा होगी और अन्य पात्रों में नहीं एवं उच्च पात्रों की संस्कृति तथा निम्न श्रेणी के पात्रों और नारियों की भाषा प्राय: प्राकृत या कभी-कभी अपभ्रंश भी होती है।[४]

जयशंकर प्रसाद और रामकुमार वर्मा ने भी अपने नाटकों में पात्र के देश, काल और अवस्था के अनुरूप विभिन्न स्तरों की भाषा का प्रयोग किया है।[५] वस्तुत: महाकाव्य के अंतर्गत "यदि किसी नागरिक नायिका का वर्णन आएगा तो उसकी शब्दावली दूसरे ढंग की होगी, ग्रामीण स्त्री का वर्णन होगा, तो उसकी शब्दावली अन्य।"[६] पं० किशोरीदास वाजपेयी ने भी पात्र और अवसर के अनुसार भाषा की ओर संकेत किया है कि "कभी-कभी अपने काव्यों और नाटकों में भी साधारण भाषा का प्रयोग शिष्ट जन करते हैं, वैसा कुछ प्रसंग आने पर। ग्रामीण पात्र के मुख से नाटक में सुसंस्कृत हिन्दी का प्रयोग कराने से तो नाटककार अपना उपहास करा लेगा। कहने का तात्पर्य यह कि एक ही भाषा के (व्यवहार-भेद से) कई रूप हो जाते हैं।[७] सचमुच पात्रों के मनोजगत सूक्ष्म भावों की अभिव्यंजना से महाकाव्य में सौन्दर्य की अभिवृद्धि हो जाती है।[८]

पाश्चात्य जगत् के विचारकों ने भी इस तथ्य की ओर संकेत किया है। गंभीर प्रकृति के व्यक्ति के लिए सभी शब्द गंभीर होते हैं।[९] इसलिए एक प्रकार की शब्दावली एक पाठक को विषय के अनुकूल प्रतीत हो सकती है तो दूसरे के लिए प्रतिकूल हो सकती है।[१०A]

महाकाव्य की भाषा जहां एक ओर पात्रों के अनुकूल होती है, वहीं दूसरी ओर विभिन्न मनोदशा के अनुरूप एक पात्र की भाषा के स्तर में भी अवसर और

परिस्थिति के अनुसार विभेद दिखलाई पड़ते हैं । "खंडकाव्य या महाकाव्य में नायक के देश, काल, संयोग अथवा उसकी परिस्थितियों के अनुसार भाषा कलेवर बदलती चलती है ।"[१. B]

रामचरितमानस सांस्कृतिक गरिमामय महाकाव्य है । इसमें रस, गुण, वृत्ति, प्रसंग परिस्थिति के अनुकूल भाषा के रूप सांदर्भिक विशेषता के साथ उपलब्ध होते हैं, साथ ही साथ पात्रानुसार और अवसरानुसार भाषा भी भाषा-प्रयोग की शोभा बढ़ा देते हैं। भरतमुनि ने पात्रानुसारी भाषा के साथ अवसरानुसारी भाषा की जो चर्चा की है, उसकी संपूर्ण विशेषता हमें 'मानस' की भाषा में दिखलाई पड़ती है । कथानक को दृष्टि में रखते हुए डॉ० श्रीधर सिंह ने 'मानस' में आए तीन प्रकार के पात्र बतलाए हैं । "वे पात्र जो मात्र भक्त हैं, और जिनका कथानक-विकास में कोई भी योगदान नहीं है । इनसे आराध्यदेव राम के गुणों पर प्रकाश पड़ता है, जैसे—अयोध्या-वासी, जनकपुरवासी, तटवासी, निषाद, तापस, भारद्वाज, सती अनुसूया, शरभंग, सुतीक्ष्ण, विराध, कबंध आदि। इनमें से विराध लौर कबंध प्रच्छन्न भक्त हैं । दूसरे प्रकार के वे पात्र हैं जो मात्र कथानक को प्रभावित करते हैं । इनमें तीनों ही नारी पात्र हैं, यथा—ताड़का, मंथरा और शूर्पणखा । तीसरे प्रकार के पात्र वे हैं जो प्रच्छन्न या अप्रच्छन्न रूप से भक्त भी हैं और कथानक को गति भी देते हैं।"[११] मोटे तौर पर मानस में आए पात्रों को हम तीन वर्गों में रख सकते हैं—

१. प्रथम वर्ग—राम, लक्ष्मण, भरत, दशरथ, विश्वामित्र, संत आदि ।
२. द्वितीय वर्ग—हनुमान, सुग्रीव, बालि, तारा, विभीषण ।
३. तृतीय वर्ग—रावण, कुंभकरण आदि ।

इन वर्गों के अनुसार 'मानस' की भाषा के भी तीन रूप हो जाते हैं। पात्रों के वैयक्तिक, चारित्रिक विशेषता के साम्य के कारण ही पात्रों में उपरिवत् वर्ग विधान किया गया है । 'मानस' में प्रत्येक पात्र का अलग-अलग व्यक्तित्व है और इस दृष्टि से देखने पर प्रत्येक की भाषा भी एक-दूसरे से कुछ न कुछ भिन्न अवश्य प्रतीत होती है । अवसर के अनुसार एक पात्र की भाषा में भी स्तर-भेद उत्पन्न हो जाते हैं ।

अब प्रथम वर्ग के अंतर्गत राम, लक्ष्मण की भाषा का मिला-जुला रूप देखें —

विगत निसा रघुनायक जागे । बंधु बिलोकि कहन अस लागे ।
उभेउ अरुन अवलोकहु ताता । पंकज कोक लोक सुखदाता ।
बोले लखन जोरि जुग पानी । प्रभु प्रभाउ सूचक मृदुबानी ।
अरुनोदय सकुचे कुमुद उड़गन जोति मलीन ।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन ।।[१२]

दोनों भाइयों के इस वार्तालाप की भाषा में पात्रों के अनुरूप ही वाक्य योजना सरल है । शब्द प्रायः तत्सम प्रधान है, असमस्त पदाधिक्य है । लक्ष्मण के उत्तर में उदाहरण, रूपक अलंकारों का समावेश है । श्रीराम की महिमा को दिखाने के लिए लक्ष्मण के द्वारा कवि ने जिन शब्दावलियों का प्रयोग किया वह उनके स्वाभानुकूल है ।

दशरथ एक गंभीर चेता राजा हैं और विश्वामित्र ज्ञानी महामुनि हैं। दोनों

गंभीर हैं। एक हैं तपस्वी और दूसरे हैं राजा। विश्वामित्र का वर्णन करते हुव कवि लिखते हैं—

विश्वामित्र महामुनि ज्ञानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी।
जहं जप जज्ञ जोग मुनि करहीं। सुनि मारीच सुबाहुहि डरहीं।
गाधितनय मनचिंता ब्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी।[१३]

विश्वामित्र के राम-लक्ष्मण मांगने पर दशरथ के मुख से निकली भाषा का रूप यह है —

सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी।
चौथेंपन पाएउँ सुत चारी। विप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी।
माँगहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा।
देह प्रानतें प्रियकछु नाहीं। सो मुनि देउं निमिष एक माहीं॥
सब सुत प्रिय मोहि प्रान किनाईं। राम देत नहिं बनै गोसाईं।
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा।
सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी। हृदय हरष माना मुनि ज्ञानी।[१४]

राम-लक्ष्मण, दशरथ के लिए प्राणवत् हैं, और विश्वामित्र उन्हें मांग रहे हैं तो राजा दशरथ को असीम दुख होगा ही और इस समय जिस भाषा का प्रयोग हुआ है, उसमें आधिक्य तत्सम शब्दावली का है, शब्द अत्यन्त छोटे और समास-रहित हैं। इन शब्दों में अभिव्यक्ति की क्षमता अधिक है, ये मर्मांतक पीड़ा के द्योतक हैं, अलंकारों का अभाव है। जब हृदय विपदानल में पिघल जाता है, तो वहां अलंकार की झलक प्रायः नहीं रहती, बल्कि भाषा सात्विकी हो जाती है और यही स्थिति दशरथ की भाषा की है।

द्वितीय प्रकार के पात्र हैं—हनुमान, सुग्रीव, बालि, अंगद आदि। हनुमान की भाषा दैन्य-भाव युक्त एवं सीधी-सादी है, तत्सम शब्दों के साथ अर्द्ध-तत्सम और तद्भव का प्रयोग है। यदि पचहत्तर प्रतिशत तत्सम के शब्द हैं तो पच्चीस प्रतिशत-तद्भव का विन्यास है। वाक्य बिल्कुल सरल हैं, पर लचर कहीं नहीं है। कुछ समस्त-पदों का भी प्रयोग है, जैसे—मोहवश, कुटिल-हृदय, दीन-बन्धु आदि। चित्रात्मकता और ध्वनि नहीं है, भाषा में प्रसाद गुण भरे हैं—

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीन बंधु भगवान॥
जदपिनाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें।
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा।
तापर मैं रघुवीर दोहाई। जानौं नहिं कछु भजन उपाई।
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें।
असकहि परेउ चरन अकुलाई। निज तन प्रगटि प्रीति उर छाई।[१५]

सुग्रीव की भाषा में भी हनुमान की भाषा की भांति सरलता है। पात्र के अनुसार

भाषा-स्तर यहां सुरक्षित है। तत्सम, तद्भव शब्दावली के साथ भाषा साभिप्राय विशेषणों से विशेषित है—

नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई।
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ।
अर्धराति पुरद्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहै न पारा।
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु संग लागा।[१६]

बाली एक स्वाभिमानी राजा है और राम का भक्त भी। इसकी भाषा तत्सम-बहुल है। वाक्य छोटे हैं, परन्तु काव्यशास्त्र की दृष्टि से रसात्मक नहीं, केवल अभिधात्मक है। अर्द्ध-तत्सम, तद्भव शब्दों का भी प्रयोग है। कोमल वर्णों के साथ कठोर वर्णों का भी विन्यास मिलता है। वाक्य की सरलता इसी से समझी जा सकता है कि लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ की यहां पहुंच नहीं है। प्रत्यक्ष-कथन की इस सरल, सहज भाषा में न उक्ति-वैचित्र्य है और न अलंकारों की बौछार—

कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदापि मोहि मारहिं, तो पुनि होउँ सनाथ॥
असकहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी।
भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा।
× × ×
परा बिकल महि सरके लागे। पुनि उठि बैठि देखि प्रभु आगें।
स्याम गात सिर जटा बनाएँ। अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ।
पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा।
हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा।
धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं।
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।[१७]

राम के राज्याभिषेक के पश्चात् सब कपियों को जब राम बिदा कर रहे हैं तो अंगद की स्थिति कुछ विचित्र हो जाती है। भाव-विह्वल अंगद ने जो कुछ कहा एक भक्त की दृष्टि से शोभनीय है। यहां अंगद के हृदय-स्थित दुखानुरूप भाषा का व्यवहार किया गया है। सार्थक विशेषणों का सटीक प्रयोग, असमस्त पद-योजना, वाक्य अति छोटे और सरल, तद्भव शब्दों का प्रयोग है। भक्ति-रस का भी प्रवाह है। संसार में सभी प्रकार के संबंध-सूत्र भक्त के लिए भगवान ही होते हैं। भाषा में दैन्य का भाव अधिक है, अलंकारादि का अभाव है—

सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो।
मरतीं बार नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली।
असरन सरन बिरिदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी।
मोरे तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता।
तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा।
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना।

तीचि टहल गृह कै सब करिहौं। पदपंकज बिलोकि भवतरिहौं।
असकहि चरन परेउ प्रभु पाहीं। अब जनि नाथ कहहु गृह जाहीं।[१८]

राम, लक्ष्मण, भरत, दशरथ, आदि की भाषा की तुलना में हनुमान, सुग्रीव, बाली, अंगद आदि भी भाषा का स्तर कुछ दूसरा है। जहां राम आदि की भाषा में भव्यता, प्रसादता, तन्मयता और अलंकारादि हैं, वहां कपियों की भाषा उस तरह की नहीं दिखाई देती। तत्सम शब्दावली का प्रयोग तो इनकी भाषा में मिलता है लेकिन साथ ही साथ तद्भव शब्दावली और वाक्य की सरलता, अलंकारादि-रहितता अधिक है। भाषा का यह अंतर एक सामान्य और ऊपरी अंतर है। सच तो यह है कि इनमें से प्रत्येक पात्र की भाषा प्रसंग और परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न तो होती ही है, एक पात्र की भाषा भी अवसरानुरूप अनेक रूप धारण करती चलती है, जिसका विवेचन बाद में किया जाएगा।

खरदूषण की भाषा में, व्याकरण की दृष्टि से मिश्र और संयुक्त वाक्यों का प्रयोग है; पर संयुक्त वाक्य कम हैं। शब्द अपने तत्सम रूप में भी है और तद्भव भी। परुषावृत्ति के कारण कठोर वर्णों की संख्या अधिक है, सरस वर्ण कम हैं। यह खर और दूषण जैसे कठोर, अत्याचारी राक्षसों के व्यक्तित्व के अनुरूप उचित ही है। कठोर राक्षस तो सिर्फ तीखा एवं कठोर ही बोल सकते हैं, अतः वाणी की सजावट के लिए न कोई अलंकार हैं न मुहावरे आदि। यथा—

सचिव बोलि बोल खरदूषन। येह कोउ नृप बालक नर भूषन।
नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते।
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुन्दरताई।
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बधलायक नहिं पुरुष अनूपा।
देहु तुरत निज नारि दुराई। जीवत भवन जाहु द्वौ भाई।
मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु।[१९]

रावण, तुलसी का वैसा महत्वपूर्ण पात्र है जिसके कारण उनके आराध्य भगवान राम को भी अवतार लेना पड़ा। रावण प्रधान खलनायक पात्र है। इसका व्यक्तित्व 'मानस' में है—अहंकारी, महाकामी, महाक्रोधी, अपनी प्रशंसा आप करने वाला, क्रूर, अत्याचारी और अद्वितीय लोभी। रावण के इन विविध रूपों के अनुसार भी भाषा में विभिन्नता आती गई है। खर-दूषण की अपेक्षा रावण का क्रूर, दबंगरूप अधिक सशक्त है, इसलिए खर-दूषण की भाषा से रावण की भाषा में साम्य होते हुए भी थोड़ा वैषम्य यह मिलता है कि रावण की भाषा अतिशयोक्तिपूर्ण तथा मुहावरेदार है। रावण राजा है, अतः वचन-भंगिमा का संकेत भाषा से ही मिल जाता है। अन्य भाषायी रूपें में समानता है। यथा—

सून बीच दस कंधर देखा। आवा निकट जती के वेषा।
जाकें डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं।
सो दससीष स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भंड़िहाईं।
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा।

नानाबिधि करि कथा सुहाई । राजनीति भय प्रीति देखाई ।।[२०]

× × ×

सठ साखामृग जोरि सहाई । बांधा सिंधु रहै प्रभुताई ।
नाघहिं खग अनेक बारीसा । सूर न होंहि ते सुनु सब कीसा ।
ममभुज सागर बलजलपूरा । जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा ।
बीस पयोधि अगाध अपारा । को अस वीर जो पाइहि पारा ।
दिगपालन्ह मैं नीर भरावा । भूप सुजस खल मोहि सुनावा ।
जौं पै समर सुभट तव नाथा । पुनि पुनि कहसि जासुगुन गाथा ।
तौ बसीठ पठबत केहि काजा । रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा ।
हर गिरि मथन निरखु मम बाहू । पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू ।
सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहि सीस ।
हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस ।।[२१]

कुंभकर्ण का व्यक्तित्व भी रावण से कुछ कम नहीं है । इनके डर से देवता और मनुष्य क्या, स्वयं ब्रह्मा भी डरते थे कि—

जौं यहि खल नित करब अहारू ।
होंइहहि सब उजार संसारू ।।

कवि ने कुंभकर्ण के व्यक्तित्व के अनुसार भी भाषा रखी है । तत्सम शब्दावली तो सब राक्षसों की भाषा में समान है । इनकी भाषा में कठोर वर्णों का आधिक्य मिलता है । तद्भव शब्दावली की संख्या भी कम नहीं है । कुंभकर्ण के हृदय तामसी वृत्ति के साथ कुछ सात्विकी वृत्ति भी है जिससे वह राम की शरण की ओर आकर्षित होता है । अलंकार, विशेषणाभिप्राय, क्रिया-चमत्कार आदि कुछ नहीं है, लेकिन रावण की भाषा में ये सब हैं क्योंकि वह राजनीतिज्ञ है । कुंभकर्ण की भाषा का एक रूप देखें—

भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा । अब मोहि आइ जगाएहि काहा ।
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना । भजहु राम होइहि कल्याना ।
हैं दससीस मनुज रघुनायक । जाकें हनुमान से पायक ।
अहहबंधु ते कीन्ह खोटोई । प्रथमहि मोहि न सुनाएहि आई ।
कीन्हेहु प्रभु बिराधतेहि देबक । सिय बिरंचि सुरजाके सेवक ।
नारद मुनि मोहि ज्ञान जो कहा । करते तोहि समय निरबहा ।
अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई । लोचन सुफल करौं मैं जाई ।
स्यामगात सरसीरुह लोचन । देखों जाइ त्रापतप मोचन ।।[२२]

विभीषण रावण का भाई होते हुए भी राम का भक्त है । रावण के भाई के नाते इनकी भाषा में समानता है, पर राम के भक्त के नाते भाषा में थोड़ी विशेषता भी है । जैसे, पद-लालित्य, कोमल-वर्ण-विन्यास, प्रसाद गुण प्रभृति —

सुनहु पवन सुत रहनि हमारी । जिमि दसनन्हि महुँ जीभ विचारी ।
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा । करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ।
तामसतनु कछु साधन नाहीं । प्रीति न पद सरोज मन माहीं ।

अब मोहि भा भरोस हनुमंता । बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता ।
जों रघुबीर अनुग्रह कीन्हा । तो पुनि मोहि दरसु हठि दीन्हा ॥[२३]

मेघनाद और प्रहस्त, दोनों रावण के बेटे हैं । इनमें मेघनाद की वीरता विख्यात है । ये इन्द्र विजयी हैं, युद्ध में इन्होंने राम को भी नागपाश से बांध लिया था । दोनों पात्रों में प्रयुक्त भाषा साधारण है, परुषावृत्ति का प्रयोग है, कोमल वर्ण कम हैं, शब्द और वाक्य छोटे हैं—

प्रहसन की भाषा है—

कहहिं सचिव सठ ठकुर सोचहाती । नाथ न पूर आवएहि भांति ।
बारिधि नाधि एक कपि आवा । तासु चरित मन महुँ सबु गावा ।
छुधा न रही तुम्हहि तब काहू । जारत नगरु कसन धरि खाहू ।
सुनत नीक आगें दुख पावा । सचिव न अस मत प्रभुहि सुनावा ।
जेहि बारीस बँधायउ हेला । उतरेउ सेन समेत सु बेला ।
सो मनु मनुज खाब हम भाई । बचन कहहिं सब गाल फुलाई ।
तात बचन मय सुनु अति आदर । जनि मन गुनहु मोहि करिकादर ।
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहिं । अैसे नर निकाय जग अहहीं ।
बचन परमहित सुनत कठोरे । सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ।
प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती । सीता देइ करहु पुनि प्रीति ॥[२४]

अब मेघनाद की भाषा देखें —

मेघनाद तेहि अवसर आयेउ । कहि बहु कथा पिता समुझायेउ ।
देखेहु कालि मोरि मनुसाई । अबहि बहुत का करौं बड़ाई ।
इष्टदेव सें बलरथ पामउं । सो बल तात न तोहि देखायउँ ।[२५]

हनुमान सुग्रीवादि की भाषा से इन राक्षस पात्रों की भाषा में समानता के तत्व बहुत हैं, पर कुछ अंतर भी जरूर है और अंतर है कठोर, कटु वर्णों के प्रयोग तथा तद्भव का कुछ आधिक्य ।

मानस के पात्रों का एक वर्गीकरण ऊंच और नीच पात्र के रूप में भी हो सकता है और इस रूप में भी भाषा का सौष्ठव विद्यमान है । उच्च वर्ग के पात्रों में राम, लक्ष्मण, भरत, गुरु आदि को रख सकते हैं और निम्न वर्ग के पात्रों में कंकेयी, रावण, कबंध आदि को । उच्च वर्गों की भाषा संस्कृत तत्सम शब्दों से मुक्त है, विविध अलंकारमयी है तथा निम्न वर्ग के पात्रों की भाषा नितान्त साधारण और ठेठ है । एक-एक उदाहरण यहां दिये जाते हैं । उच्च वर्ग की भाषा :—

कहेउ राम वियोग तव सीता । मो कहुं सकल भए बिपरीता ।
नवतरु किसलय मनहुँ कृसानू । काल निसा सम निसि ससिभानू ।
कुवलय बिपिन कुंत बन सरिसा । बारिद तपत तेल जनु बरिसा ।
जे हित रहे करत तेइ पीरा । उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ।
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एकु मनु मोरा ।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति रस एतनेहिं माहीं ।[२६]

निम्नवर्गीय पात्र की भाषा का एक रूप यह देखें —

प्रभू भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरि कीन्हीं।
ढोल गंवार सुद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।
प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटक न मोरि बड़ाई।
प्रभु अज्ञा अपेलश्रुति गाई। करों सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई।[२७]

मानस के पात्रों का एक वर्गीकरण इस प्रकार से भी संभव है —

१. नगरवासी पात्र, और

२. वनवासी पात्र

नगर में रहने वाले पात्र अयोध्यावासी और जनकपुर वासी हैं एवं जंगल में रहने वाले पात्र कोल-किरात, तथा भिल्ल हैं। अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, सरभंग, विश्वामित्र, वाल्मीकि, ये सब भी जंगल में तपस्या करने के उद्देश्य से आए हैं अतः ये लोग भक्त की श्रेणी में आते हैं।

दोनों प्रकार के पात्रों की भाषा में अंतर स्पष्ट है। चित्रकूट में राम को मनाने के लिए अयोध्यावासी-सह भरत पहले से आए हुए हैं। राजा जनक के आगमन होने पर दोनों नगरवासियों का मिलन होता है। इस अवसर पर तुलसीदास ने जो भाषा रखी है वह बड़ी ही सांद्र, और काव्योपयुक्त है। उत्प्रेक्षा और रूपक के सहारे ही सारी अभिव्यक्तियां हुई हैं। संस्कृत तत्सम शब्दावली की तूती बोलती है। यहां हृदय के साथ हृदय का मिलन है, भावना निगूढ़ होती गई है और भाषा अलंकारमयी; यथा—

आश्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथ।
सेन मनहुं करुन सरिता लिएँ जाहि रघुनाथ।
बोरति ग्यान बिराग करोरा। बचन ससोक मिलन नद नारे।
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुबर कर भंगा।
बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भंवर अबर्त्त अपारा।
केवट बुध विद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेई ऐक नहिं आवा।
बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हियं हारे।
आश्रम उदधि मिली जब आई। मनहुं उठेउ अंबुधि अकुलाई।
सोक बिकल दोउ राजसमाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा।
भूपरूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही।[२८]

ठीक इसके विपरीत वनवासियों की भाषा में अपेक्षाकृत अधिक सिधाई है, सरलता है, अलंकृति के स्थान पर सहजता और स्वाभाविकता है। अपने कर्मों की हीनता, जाति-हीनता और आर्थिक स्थितियों के अनुरूप ही भाषा का सौष्ठव है :—

तुम्ह प्रिय पाहुने बह पगुधारे। सेवा जोगु न भाग हमारे।
देब काह हम तुम्हहिं गोसाईं। ईंधन पात किरात मिताई।
यह हमारि अति बढि सेवकाई। लेहिंन बासन बसन चोराई।
हम जड़ जीव जीवगन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती।
पाप करत निसिबासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पटै अघाहीं।

सपनेहुँ धरम बुद्धि कसकाऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ।
जबतें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोस हमारे।
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्ह के भाग सराहन लागे।[२९]

राम की स्तुति करने वाले जितने पात्र 'मानस' में आए हैं, चाहे वे देवता हों या नर, अथवा नारी, उनकी भाषा का भी एक वर्ग हो सकता है। इसके दो उपभेद हम कर सकते हैं—पुरुष वर्ग और स्त्री-वर्ग। पुरुष-वर्ग में देव पुरुप और नर पुरुष, दोनों हैं, जैसे—देवता-समूह, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, नारद, अगस्त्य, शरभंग, अत्रि, निषादराज प्रभृति तथा नारी-वर्ग में अहल्या, कौशल्या सीता इत्यादि।

पुरुष वर्ग की भाषा में प्रौढ़ता, ओजस्विता, और प्रगलभता है तो नारी वर्ग की भाषा में कोमलता।[३०]

१. **सेव-स्तुति**

जय जय सुर नायक जन सुख दायक प्रनत पाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधु सुता प्रिय कंता।[३१]

२. **अत्रि-स्तुति—**

नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु सील कोमलं।
भजामिते पदाम्बुजं। अकामिनां स्वधामदं।।[३२]

३. **सरभंग-स्तुति—**

नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्हीं कृपा जानि जन दीना।
सो कछु देवन मोहि निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा।[३३]

४. **सुतीक्षण-स्तुति—**

जो कोसलपति राजिब नयना। करौ सो रामु हृदय मम अयना।।
अस अभिमान जाय नहिं भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।[३४]

५. **नारद-स्तुति—**

सुनहु परम उदार रघुनायक। सुन्दर अगम सुगम बरदायक।
देहु एकु बरु माँगउँ स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी।।[३५]

६. **निषादराज—**

नाथ कुसल पदपंकज देखें। भयऊँ भाग भाजन जन लेखें।
देवधरिन धनधाम तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा।।[३६]

नारी-वर्ग के पात्रों की भाषा में स्वाभाविक कोमलता के दर्शन होते हैं, यथा—

१. **कौसल्या—**

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ज्ञानातीत अमाना बेद पुरान भनंता।।
करुना सुख सागर सब गुज आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भए प्रगट, श्रीकंता।।[३७]

२. **अहल्या स्तुति—**

मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपुजन सुखदाई।

राजीव बिलोचन भवभय मोचन पाहि पाहि सरनहि आई ॥[३८]

मानस के समस्त स्त्री-पात्रों को ध्यान में रख कर विवेचन करने पर यह पता चलता है कि कौसल्या, सुमित्रा, अनुसूया, सीता, मंदोदरी इत्यादि के व्यक्तित्वों में कुछ न कुछ साम्य है और इन महान् नारियों की भाषा में एक अन्विति है, एक स्तरता है। ठीक इसके विपरीत ताड़िका, मंथरा और शूपर्णखा, ये तीन नारियाँ कथानक में मोड़ लाने के कारण अपना विशिष्ट व्यक्तित्व रखती हैं, अतः इन तीनों की भाषा का स्तर लगभग एक समान प्रतीत होता है।

राम के राज्याभिषेक-समाचार ने मंथरा को क्षुब्ध कर दिया। वह चाहती है कि किसी तरह राम का राज्याभिषेक नहीं हो, बल्कि भरत का हो। इसलिए वह कैकेयी को अपने पक्ष में करने के लिए अपने बहकावे में लाने का प्रयास करती हुई कहती है —

एकहिं बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी।
जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा।
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहिं करुइ मैं माई।
हमहुँ कहबि अब ठकुर सोहाती। नाहि न मौन रहब दिनु राती।
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा।
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी।
जारे जागु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा।
ताते कछुक बात अनुसारी। छमिअ देगि बड़ि चूकि हमारी॥ [३९]

यहां भाषा का ठेठ रूप है। तद्भव और तत्सम का सांकर्य प्रयोग है। कूटनीति की सूक्ष्मचालों का संकेत इस भाषा में विद्यमान है। आदि से अन्त तक भाषा मुहावरेदार है। ऐसी जाल-फरेबी दासी की भाषा यदि आद्यंत मुहावरेदार नहीं होती तो कैकेयी जैसी रानी कैसे उसके कहने में आती? यह भाषा एक कूटनीतिज्ञा दासी की मनोदशा एवं प्रकृति को उपस्थित करने के लिए अत्यन्त स्वाभाविक है, सुन्दर और मनोवैज्ञानिक है। कविवर ने भाषा के माध्यम से ही ऐसी नारियों की मनोवृत्तियों का संकेत कर दिया है।

महामुनि विश्वामित्र, राम-लक्ष्मण को राजा दशरथ से मांग कर अपनी यज्ञ-रक्षा हेतु ले गए और

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई।
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा। [४०]

यहां भाषा का रूप वृत्तात्मक है, किसी प्रकार का कोई चमत्कार नहीं।

राम-लक्ष्मण के अनुपम सौंदर्य से मोहित होकर उनसे विवाह की इच्छा कर उनके पास गई। इस अवसर शूपर्णखा के मुख से जिस भाषा का प्रयोग कविवर ने करवाया है, वह शूपर्णखा जैसे पात्र के लिए बिल्कुल फिट है—

रुचिर रूप धरि प्रभु पहि जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई।
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह संजोग बिधि रचा बिचारी।

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखिहूँ खोजि लोकतिहुँ माहीं।
तातें अबलगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहिं निहारी। [४१]

कुलटा और नीच प्रकृति की नारी के चित्रण में प्रयुक्त उपर्युक्त भाषा सटीक है, सार्थक झूठ और छल का प्रयोग ऐसी नारियां करती ही हैं। अवसर मिलने पर ये बड़ी-बड़ी दार्शनिक, उपदेशात्मक बातें भी कह जाती हैं, जिनमें श्रोता पर तुरत रोब जम जाय। शूर्पणखा भी जब नाक-कान कटा कर रावण के पास जाती है तो अपनी करनी का वर्णन नहीं करती, बल्कि रावण को ही फटकारती हुई कहती है——

वोली बचन क्रोध भरि भारी। देस कोस के सुरति बिसारी।
करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती।
राजुनीति बिनु धनु-बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा।
विद्या बिनु बिवेक उपजाएँ। श्रमफल पठें किएँ अरु पाएँ।
संग तें जती कुमंत्रतें राजा। मानतें ज्ञान पानतें लाजा।
प्रीति प्रनय बिनु मद तें गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी।
रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप करिलागी रोदनु करन ॥[४२]

कौसल्या, सुमित्रा, सीता की भाषा में एक भव्यता है, गंभीरता है, शालीनता है। कौसल्या की भाषा का एक रूप यह है——

कौसल्या कह धीर-धरि सुनहु देबि मिथिलेसि।
को बिबेक निधि बल्लभहि तुम्हहि सकइ उपदेसि ॥ [४३]

लक्ष्मण को उपदेश देती हुई सुमित्रा कहती है——

तात तुम्हारि मातु बेदेही। पिता रामु सब भांति सनेही।
अवध तहां जहँ राम निवासू। तहँइ दिवसु जहँ भानु प्रकासू।
जौं पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं।
गुरु पितु मातु बंधु सुरसाईं। सेइ अहि सकल प्रान की नाईं ॥ [४४]

राम-वन-गमन के समय सीता भी साथ होना चाहती है। सीता की भाषा इस प्रकार की है——

बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा।
कुस किसलय साँथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई।
कंदमूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू।
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी ॥[४५]

राक्षस-नारियों में मन्दोदरी और त्रिजटा की भाषा का भी स्तर एक है, क्योंकि दोनों में राम के प्रति भक्ति है। मन्दोदरी ने बारम्बार रावण को राम की शरण में जाने को कहा, साथ ही राम के विराट् विश्वरूप का वर्णन भी सुनाया——

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अंग बिश्रामा।
भृकुटिबिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच धनमाला।

जासु घ्रान अस्विनी कुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा।
श्रवन दिसादस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी।[४६]

तुलसीदास महाकवि थे। प्रत्येक पात्र की पहचान तथा उसकी अभिव्यंजनाशक्ति पूर्णरूपेण थी। इसलिए पात्रानुसारी भाषा का सफल प्रयोग हम पाते हैं।

'मानस' का एक निराला पात्र है—निषादराज गुह। ये राम के आदर्श भक्त हैं। जब भरतवासी के साथ राम को मनाने चित्रकूट जा रहे थे तो निषादराज को भ्रांति हो गई कि यह कलुष हृदय का है, राम को मार कर निष्कंटक राज्य करने की इच्छा से जंगल जा रहा है। तब उन्होंने अपनी जाति के सैनिकों को बुलाया। ये सब उमंग से कूद रहे हैं और इनके उत्साहों का वर्णन करने में कविवर ने जिस साभिप्राय एवं आंचलिकता-संयुक्त भाषा का प्रयोग किया है, वह पात्रों के क्रियाकलापों के अनुसार स्वाभाविक भाषा है—

होहु संजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरइ के ठाटा।
सनमुख लोह भारत सन लोऊँ। जिअत न सुर सरि उतर न देऊँ।
बेगहु भायहु सजहु सँजेऊ। सुनि रजाइ कदराइन कोऊ।
भलेंहि नाथ सब कहहि सहरषा। एकहिं एक बढ़ाइ करषा।
चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रुचइ रारी।
सुमिरि रामपद पंकज पनही। भाथीं बांधि चढ़ाइन्हि धनहीं।
अंगरी पहिरि कूंड़ि सिर धरहीं। फरसा बांस सेल सम करहीं।
एक कुसल अति आड़ेन खांड़े। कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाड़ें।
निज निज साज समाज बनाई। गुह राउतहि जोहारे जाई।
दीख निशादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाऊ जुझाऊ ढोलू॥[४७]

केवट के जाति-गत संस्कार एवं शील-स्वभाव आदि के द्योतक स्थानीय शब्दों का प्रयोग तथा स्थानीय शब्दों के योग से बने अनेक सटीक मुहावरों के सुन्दर विन्यास ने यहाँ की भाषा में एक प्रकार की स्वाभाविकता ला दी है। अवधी के ठेठ रूपों के प्रयोग का बड़ा ही सशक्त निर्वाह हुआ है। इसमें 'संजेइल', 'पनही', 'भाथी', 'अंगरी', 'कूड़ि', 'बाँस', 'जोहारी', 'टोलु' आदि से पात्रों के निवास-स्थल में प्रचलित शब्दों की विशेषता झलकती है, साथ ही अनेक मुहावरों ने भाषा में जान ला दी है, जैसे जुझाऊ, ढोल बजाना, जीते जी पैर पीछे न रखना, लोहा लेना, ठाठ ठाठना, ओजगुणात्मक एवं कठोर वर्णों के प्रयोग से युद्ध की साहसिकता और ओजस्विता स्वतः प्रकट है। पात्रों के अनुरूप भाषा का ऐसा सशक्त प्रयोग एक दूसरे प्रसंग में भी मिलता है। जब शृंगवेरपुर में केवट, राम को गंगा पार कर देने के पहले उनका श्री चरणामृत पान करने के लिए प्रेमरस भरी अटपटी वाणी कहता है तो उसकी भाषा भी बड़ी स्वाभाविक बन जाती है—

मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।
चरन कमल रज कहुं सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई।
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई।

तरिनिउं मुनि घसिनी होई जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।
एहि प्रति पालउँ सब परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू।
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लइ आवा।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलिभूरी।[४८]

यहां भी शब्दों के आंचलिक प्रयोग से कविवर ने केवट के संस्कारादि को बड़ी कुशलता के साथ चित्रित किया है। 'बाटपरइ', 'कबारू', 'कठौता', 'मजूरी', 'बनि' प्रभृति शब्दों ने केवट के संपूर्ण व्यक्तित्व को हमारी आंखों के सम्मुख अनावृत कर रख दिया है। वाक्य छोटे हैं, सामासिक शब्दों का अभाव है, भाषा प्रसाद गुण से संयुक्त है। कहने का तात्पर्य यह कि तुलसीदास ने केवट के प्रसंग में जिस भाषा का प्रयोग अपेक्षित था, उसी का प्रयोग किया है। सचमुच मध्ययुगीन अनेक महाकवियों ने महाकाव्य रचे, लेकिन पात्रानुसारी भाषा का जो सुन्दर, ललित विन्यास हमें रामचरितमानस में मिलता है, वह दूसरे में नहीं।

राम-लक्ष्मण आदि की भाषा की भव्यता कुछ और है। नगरवासियों की भाषा अलग है और गांव तथा वनों में रहने वाले पात्रों की भाषा पृथक। निषाद की भाषा की तुलना लक्ष्मण की भाषा से करने पर यह अंतर बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। केवट आदि की भाषा में लोकगत स्थानीय विशेषता है और राम आदि की भाषा में भव्यता।

रामचरितमानस में पात्रानुसारी भाषा का दूसरा रूप यह पाते हैं कि एक ही पात्र की भाषा अवसर के अनुसार अनेक प्रकार की होती चलती है। पात्रों के अवसरानुसारी भाषा का यह रूप भी बड़ा ही मनोवैज्ञानिक है। मानव-जीवन में अनेक प्रकार के भाव आते रहते हैं। वैसे तो कहने के लिए साहित्य में आठ स्थाई भाव, आठ सात्विक भाव और तेंतीस संचारी भाव हैं। परन्तु सच तो यह है कि मानव-हृदय से निःसृत ऐसे अनेक भाव महाकाव्य में उपस्थित होते हैं, जिनका अभी तक नामकरण भी नहीं हो सका है। अतः एक पात्र के विविध मनोदशा दिखाने के लिए एक ही स्तर की भाषा कोई भी महाकवि रखेंगे तो भाषा सौन्दर्य की शाश्वतता उससे गायब हो जाएगी। तुलसीदास तो एक अनुपम महाकवि थे, फिर इनके महाकाव्य में यह दूषण कैसे आ सकता है। पात्रों की विविध मनोवृत्तियों और क्रियाओं के अनुरूप भी उनकी भाषा मुड़ती चलती है, इस तथ्य का बेजोड़ उदाहरण है रामचरितमानस। कुछ प्रमुख पात्रों की भाषा का विवेचन यहां उपस्थित करना अभीष्ट है।

राम—मानस के राम अखिलेश्वर का अवतार हैं, शक्ति, शील और सौंदर्य के निधान हैं। वे अत्यंत पवित्र, कृतज्ञ, दृढ़ निश्चयी, अदम्य उत्साही, धैर्यवान, क्षमावान है। नैतिकता और आस्तिकता ने उनके निष्ठावन व्यक्तित्व में अनुपम योगदान दिया। मानस में आद्यंत राम ही चित्रित हैं—

जेहि महं आदि मध्य अवसाना।
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।।[४९]

अनेक अवसरों पर राम की भाषा अनेक प्रकार की होती गई है। यह स्वाभाविक भी है। मानस से कुछ स्थलों की भाषा का उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा।

'मानस' की जनक-वाटिका प्रसंग बड़ा रुचिर है, साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट है। राम के इस प्रारंभिक जीवन में सीता-दर्शन ने जो अनुभूति जगाई, वह एक अविस्मरणीय अंग हो गई। सीता के सौन्दर्य ने राम को आकर्षित कर लिया। इस अवसर पर राम की भाषा सात्विक अनुभवों से ओत-प्रोत है। सीता की सुन्दरता के कारण —

देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा।

इस स्थिति में आंखें रूप-मधु का पान कर रही हैं और जिह्वा आंतरिक रूप से सहयोग देती है, कुछ बोलती नहीं। यह संयोग-श्रृंगार की गहन अनुभूति है, जिसमें भाषा उत्प्रेक्षा, उपमा आदि अलंकारों के सहारे ही खड़ी है। सात्विक अनुभावों के रूप में भाषा का यह अच्छा निदर्शन है। उत्तम शब्द-विधान है —

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।
मानहुं मदन दुंदुभी दीन्हीं। मनसा बिस्व विजय कहं कीन्हीं।
अस कहि फिरि चितरावेहि ओरा। सिय मुख ससि यह नयन चकोरा।
भरा बिलोचन चारु अचंचल। मनहुं सकुचि निमि चले द्रिगंचल।
देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदय सराहत बचनन आवा।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहं प्रगटि देखाई।
सुंदरता कहुं सुंदर करई। छवि गृह दीपसिखा जनु बरई।[५०]

परशुराम के वार्तालाप में राम को अपने वंश एवं अपने स्वाभिमान पर उंगली उठाते देखकर उनके भीतर का सामाजिक राम उबल पड़ा, तब राम की भाषा का स्वर कुछ दूसरा हो गया —

जों हम निदरहिं बिप्रबदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभट जेहि भय बस नावहिं माथ॥
देव दनुज भूपति भट नाना। सभ बल होउ अधिक बलवाना।
जों रन हमहिं पचारै कोऊ। लाहिं सुखेन काल किन होऊ।
छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहिं पाँवर आना।
कहौं सुभाउ न कुलहिं हुं प्रसंसी। कालहु डरहिं नरन रघुबंसी।[५१]

यहां राम का स्वाभिमान जाग उठा है, अतः भाषा वीररसात्मक हो गई है। ओज गुण तथा टवर्गादि वर्णों का प्रयोग अधिक है। क्रोधावेश में भाषा सीधे प्रहार करती है, अतः न कोई अलंकार है और न दूसरे कोई प्रसाधन। राम के क्रोधानुकूल भाषा का विधान कवि ने किया है।

गुरुवर वशिष्ठ, राम के निवास-स्थान पर आते हैं। कृतज्ञता एवं शिष्यत्व का भाव राम में अधिक है। फलतः गुरु के आने पर मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने जिस भाषा में आदर-सत्कार किया है — अवसर के अनुसार उचित है। सरस पदों, प्रसाद एवं माधुर्य गुणात्मक शब्द-प्रयोगों ने राम की सरलता और प्रकृति आदि को जैसे प्रकट

कर दिया हो। गुरु के सम्मुख सरल हृदय से झुकना ही श्रेयस्कर है, इसलिए राम की इस भाषा में सरलता और सहजता है —

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगलमूल अगमंल दमनू।
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती।
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु येहु गेहू।
आवसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवक लहइ स्वामि सेवकाईं ॥[५२]

खरदूषण से युद्ध के समय, राम की भाषा युद्ध के अनुकूल है। शत्रुओं को ललकारने तथा शत्रु-पक्ष की कायरता दिखाने में राम की यह भाषा बेजोड़ है। परुषावृत्ति, ओज-गुण, कठोर ध्वनियों का प्रवेश युद्ध के अंतर्गत आई सारी झंकृतियों को साकार कर देता है—

को दंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बांधत सोह क्यों।
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सो जुग भुजंग ज्यों।
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप विसिख सुधारिकै।
चितबत मनहुं मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै ॥

× × ×

हम क्षत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं।
रिपु बलबंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहुं सन लरहीं।[५३]

राम तो नर-लीला करने के लिए अवतरित हुए हैं। पत्नी-वियोग से बढ़कर मानव-जीवन में शायद ही कोई दर्दनाक स्थिति हो। यह विपत्ति मानव को कुछ असामाजिक तो बना ही देती है। सीता के वियोग में, उनकी सुन्दरता का वर्णन करते हुए राम का भटकना कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। राम के मुख से निकली वियोगाग्नि युक्त भाषा जहां एक ओर प्रेम के गूढत्व को प्रकट करती है, वहां ही दूसरी ओर यह अनेक अलंकारों, बिंबों और प्रतीकों से आच्छादित है —

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।
खंजन सुक कपोत मृगमीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना।
कुंद कलीं दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी।
बरुन पास मनोजधनुहंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू।
किमि कहि जाति अनाप तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटै कि कस नाहीं।[५४]

विश्राम और मनोरंजन को स्थिति में राम की भाषा सहज अलंकारमयी हो जाती है। प्रायः भाषा रूपकमय बन जाती है, वाक्य कुछ लंबे हो जाते हैं पर अस्पष्टता नहीं आती है—

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी। परम प्रताप नेज बल रासी।
मत्तनागतम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बनचारी।

विधुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा।
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निजनिज मतिभाई ॥[५५]

'मानस' का लक्ष्मण एकनिष्ठ भक्त है। राम के ऊपर आई छोटी सी विपत्ति भी वह देखता नहीं चाहता। राम के विरुद्ध में जाने वाले के लिए वे काल हो जाते हैं। 'मानस' भर में इनका यही व्यक्तित्व व्याप्त है। परशुराम के प्रसंग में इनका विनोदी रूप भी मिलता है —

बधें पापु अपकीरति हारें। मारतहूं पा परिअ तुम्हारें।
कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनुबान कुठारा।
लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहिं अछत को बरनै पारा।
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भांति बहु बरनी।
नहिं संतोषत पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोष दुसह दुख दहहू।
बीरव्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु शोभा।
सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप।
विद्यमानरन पाइ रिपु, कायर कथहिं प्रताप।
कहेउ लखन मुनि सील तुम्हारा। को नहिं आन बिदित संसारा।
माता पिता उरिन हए नीकें। गुरु रिन रहा सोच बड़ जीकें।
सो जनु हमरेहि माथें काढ़ा। दिन चलि गए ब्याज बड़ बाढ़ा।
अब आनिअ व्यवहरिआ बोली। तुरत देउं मैं थैली खोली ॥[५६]

व्यंग्य-विधान में अनेक तरह की बातें आती हैं। यहां भी व्यंग्यात्मक शैली में परशुराम के जीवन चरित्र से संबद्ध अनेक बातें कही गई हैं। व्यंग्य-वचन हमेशा दूसरों के लिए दाहक होते हैं, अत: लक्ष्मण की इस भाषा में कठोर और महाप्राण ध्वनियों का अधिक प्रयोग किया गया है। ऋण के अधिक दिन हो जाने पर ब्याज बढ़ने के सामाजिक नियम का एक बिंब भी बड़ा अच्छा बन पड़ा है। भाषा में तीखापन अधिक है।

इसी लक्ष्मण की भाषा राम के वन-गमन के अवसर पर कुछ भिन्न हो जाती है। लक्ष्मण, राम के सेवक के रूप में वन जाने को तत्पर हैं, पर राम की आज्ञा हो तब न। यहां लक्ष्मण ने राम से साथ ले चलने की प्रार्थना की तो उसकी भाषा इस प्रकार की है —

अतरुन आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ ॥
गुरु पितु मातुन जानहुं काहू। कहउं सुभाउ नाथ पतिआहू।
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई।
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।
मन क्रम बचन चरन रति होई। कृपासिंधु परिहरइ कि सोई ॥[५७]

यहां भाषा में प्रसाद गुण का प्रयोग है। वाक्य सीधे-सादे हैं। अलंकृति निधान का संस्पर्श नहीं है। संस्कृत तत्सम शब्दावली की प्रधानता है, अल्पप्राण ध्वनियां अधिक

हैं, कठोर वर्णों तथा ओजगुण का प्राय: अभाव है। यहां लक्ष्मण की आंतरिक दशा को दिखाने में भाषा बड़ी सक्षम है। इसी तरह युद्ध में लक्ष्मण की भाषा तीसरा रूप धारण करती है।

सीता की भाषा के भी अनेक रूप 'मानस' में मिलते हैं। जब जैसी परिस्थिति आई, भाषा तदनुकूल हो गई। सीता जब गिरिजा देवी की प्रार्थना करती है तो उसकी भाषा यह है—

जय जय गिरिबरराज किसोरी। जय महेस मुखचंद चकोरी।
जय गजबदन षड़ानन माता। जगत जननि दामिनि दुतिगाता।।
नहि तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव वेद नहि जाना।
भवभव विभव पराभव कारिनि। बिस्व विमोहनि स्वबस बिहारिनि।।[५८]

यहां भाषा विशुद्ध संस्कृत शब्दावली की है। विशेषणों का ऐसा साभिप्राय प्रयोग 'मानस' में कम ही मिलता है। प्रार्थना में दीनता का भाव प्रमुख रहता है भाषा में प्रयुक्त विभिन्न विशेषणों ने सीता की दीन-दशा का जो संकेत किया है, उससे भाषा में एक कसावट आ गई है।

राम के वन जाने का समाचार सुनकर सीता भी पति के साथ जाना चाहती है। राम घर का सुख और वन की विपत्ति का वर्णन कर उसे घर ही में रहने के लिए कहते हैं। इस समय सीता की हालत कुछ विचित्र हो गई और तब भाषा भी प्रार्थना की भाषा से भिन्न प्रकार की हो गई—

सम महि तृन तरु पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसिदासी।
बार बार मृदु मूरति जोहि। लागिहि तात बयारि न मोही।।
को प्रभु संग मोहि चितवनिहारा। सिंध बधुहि जिमि ससक सिआरा।
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहूं भोगू।।[५९]

तत्सम शब्दावली का आधिक्य तो है, वाक्य मिश्र हैं, लंब समासों का अभाव है। सीता का हृदय दु:खित है, इसलिए भाषा में किसी प्रकार के अलंकार का प्रयोग भी हम नहीं पाते हैं।

इसी सीता के जीवन में जब विपत्ति का पहाड़ आया, रावण द्वारा अपहृत हुई तो उनके विलाप की भाषा का रूप कुछ और हो गया—

हा जगदेवी बीर रघुराया। केहि अपराध बिसारिहु दाया।
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिन नायक।
हा लछिमन तुम्हार नहि दोषा। से फल पायउं कीन्हेउं रोषा।।[६०]

इसकी भाषा भी तत्सम बहुला है, पर गिरिजापूजन की भाषा में विशुद्ध तत्सम शब्दावली की जो सघनता है, यहां नहीं है, क्योंकि विपत्ति की दशा में शब्द प्रयोगों पर ध्यान प्राय: कम ही रहता है।

भरत के जीवन में दो परिस्थितियां प्रसिद्ध हैं—पहली है ग्लानि की और दूसरी है हर्ष की। और, दोनों स्थलों की भाषा में अंतर है।

दशरथ की मृत्यु के पश्चात् भरत बुलाये जाते हैं। समाचार सुनते ही वे अवाक्

रह जाते हैं। कौसल्या माता से उन्होंने जो अपनी ग्लानि सुनाई, उसकी भाषा दृष्टव्य है—

जे अघ मातु पिता सुत मोर। गाइ गोठ महि सुर पुरजारें।
जे अघ तिय बालक बध कीन्हे। मीत महीपति माहुर दीन्हे।
जे पातक उप पातक अहहीं। करम बचन मन भव कवि कहहिं।
ते पातक मोहि होहुँ विधाता। जौं यहु होइ मोर यह माता ॥[६१]

ग्लानि की सांस बड़ी लम्बी होती है, अतः वाक्य भी अति लंबे हो गए हैं। भाषा में ग्लानि का भाव स्पष्ट है।

रावण-वध के पश्चात् राम का अयोध्या आना भरत के लिए परम प्रसन्नता की बात है। हनुमान से राम के आने का समाचार पाने पर भरत प्रफुल्ल हो उठते हैं, हृदय-कलिका खिल उठती है और तब कवि भाषा भी तदनुकूल रखते हैं—

कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते।
बार-बार बूझी कुसलाता। तो कहुं देउं काह सुनु भ्राता।
एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि विचारि देखेउँ कछु नाहीं।
नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरत सुनावहु मोही ॥[६२]

हर्षातिरेक के कारण किसी वाक्य में तत्सम शब्दावली का आधिक्य है तो किसी में तद्भव शब्दों का। कोई वाक्य अति छोटा है, तो कोई लंबा है। भरत के हृदय में स्थित हर्षातिरेक को यह भाषा ही प्रकट कर देती है।

दशरथ राम के पिता हैं, पर राम के श्रीचरणों के सत्यप्रेमी हैं। चौथे पन में उन्हें पुत्र रत्न मिले। फलतः प्रसन्नता के अवसर पर दशरथ की भाषा इस प्रकार की है —

दसरथ पुत्र जन्म सुनिकाना। मानहुं ब्रह्मानंद समाना।
परम प्रेममन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा।
जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई।
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा ॥[६३]

इस भाषा में विशुद्ध संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग है। अभूतपूर्व आनन्द को प्रकट करने की क्षमता भाषा में हैं।

राम के वियोग में दशरथ शोकाकुल हो जाते हैं। इस अवसर की भाषा का रूप यह है —

हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते।
हा जानकी लखन हा रघुवर। हा पितु हित चित चातक जलधर ॥[६४]

दशरथ शोक की चरम सीमा पर पहुंचे हुए हैं। प्रश्नवाचक शब्दों तथा विस्मयादि-बोधक अवययों के कारण भाषा में शोक की परिव्याप्ति हो गई है।

'मानस' का खलनायक रावण की भाषा भी अवसरानुसार अनेक प्रकार मिलती है। अचानक घबड़ाहट की स्थिति में रावण की भाषा में एक शब्द के ही अनेक

पर्यायों का प्रयोग सांदर्भिक विशेषता में अभिवृद्धि कर देता है। सेतु-निर्माण की खबर सुनते ही रावण घबड़ा गया, अकुला गया और भाषा इस प्रकार की हो गई।

सुनत श्रवन बारिधि बंधाना। दसमुख बोलि उठा अकुलाना।
बांध्यों बन निधि नीरनिधि, जलधि सिंधु बारीस।
सत्यतोयनिधि कंपति, अदधि पयोधि नदीस ॥[६५]

गर्वोक्ति की भाषा इससे भिन्न है। इसमें वास्तविकता को भी कायरता की सीमा में लाने के लिए अपने को ऊंच और दूसरे को नीच दिखाने का प्रयास लक्षित होता है। ऊंच-नीच भाव दिखाने के क्रम में वाणी का प्रत्येक वाग्विलास संभव है। रावण और अंगद के संवाद में भी हम ऐसी ही भाषा पाते हैं जिसमें शब्दों का चढ़ाव-बढ़ाव एवं विविध अलंकार समाहित है —

तुम्हरे कटक माझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहिं कवन जोधाबद।
तव प्रभु नारि बिरह बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना।
तुम्ह सुग्रीव कूल द्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ।
जामबंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समरारूढ़ा ॥[६६]

युद्ध में ललकार की भाषा कुछ भिन्न प्रकार की है ऐसी भाषा में अपना बल-कथन बहुत महत्व रखता है। अपने बल की तुलना करके ही दूसरे की हीनता बतलाई जा सकती है। राम से युद्ध करते समय रावण कहता है —

जीते हुजे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं।
रावन नाम जगत अस जाना। लोकप जाके बंदीखाना।
खरदूषन बिराध तुम्ह मारा। बधेउ ब्याध इव बालि बिचारा।
निसिचर निकर सुभट संघारेहु। कुंभकरन घननादेहि मारेहु।
आजु बयरु सब लेउं निबाही। जौं रन भूप भाजि जनिजाहीं।
आजु करौं खलु काल हवालें। परेहु कठिन रावन कें पालें ॥[६७]

एक ओर शब्दों में यदि ओजगुण है तो दूसरी ओर 'तापस' शब्द में हीनता का भाव भी निहित है। ललकार और क्रोध की इस भाषा में अलंकारहीनता है जो अवसर-अनुसार उचित और सार्थक है एक-एक वाक्य तीखा प्रहार बन गया है। रामचरित-मानस हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ प्रबंधकाव्य जिन कारणों और गुणों से कहलाता है। उनमें एक प्रधान गुण है—पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग।[६८] 'मानस' में मानव-जीवन अपने अत्यधिक विराट् परिप्रेक्ष्य में उपस्थित किया गया है। जीवन का अध्ययन व्यक्ति, समाज, प्रकृति और अध्यात्म, इन सभी धरातलों पर एवं सभी दृष्टियों से किया गया है। बाह्य जीवन के सभी संसार और विभिन्न स्तर भी इसमें समाहित हैं तथा आन्तरिक जीवन की असंख्य विषम और सम वृत्तियां भी इसमें गुम्फित हैं। यही नहीं, मानस में जो जीवन चित्रित है; वह स्थिति के रूप में भी चित्रित है और गति के रूप में भी। परंतु प्रधानता गत्यात्मक जीवन को मिली है। व्यक्ति और समाज की अवस्था के जितने भी सूक्ष्म और विशद चित्र हो सकते हैं 'मानस' में सब मिलते हैं तथा ये सारे चित्र एक-दूसरे को प्रभावित करते हुए द्वंद्वलीन अवस्था में चित्रित हुए हैं।

ऐसी स्थितियों में तुलसी ने स्थिति, स्थान और पात्र के अनुरूप अपनी शैली को परिवर्तित करते हुए जिस वैशद्य और वैविध्य से प्रस्तुत किया है, वह तुलसी की काव्य-कला अद्‌भुत विशेषता का प्रमाण है। सामान्य स्थितियों में शैली साधारण बोलचाल की भाषा की है, अन्य स्थितियों में शैली विदग्धतापूर्ण तथा द्वंद्वात्मक भी है। ऐसी स्थितियों में हृदय के भावों का सघर्ष भी शैली में उतर आया है।" पात्रानुकूल भाषा-विभेद और काव्योपयुक्त पदावली का प्रयोग इनकी भाषा को विशेषता है।"[६९]

निष्कर्षत: तुलसी के रामचरित मानस में पात्रानुसारी भाषा की जैसी रमणीय योजना हुई है, वैसी योजना तुलसीदास ही कर सकते थे। पात्रों के विविध वर्गों के अनुसार तो भाषा अनुपम है ही, पात्रों की अवसरानुसारी भाषा का निखार भी उसमें चरमोत्कर्ष पर हुआ है।

संदर्भ

१. भरतमुनि, नाट्यशास्त्रम्, १८।२५-३६ का० सं०।

२. (क) भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, १७।२६-४५ (गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ौदा) एवं
(ख) अभिनवगुप्त पादाचार्य, अभिनव भारती, भाग-२, वि० संस्करण, गा० ओ० सिरीज, बड़ौदा, १९३४, पृ० ३७२-७३।

३. लौंजाइनस, उद्धृत, काव्य में उदात्त तत्व, डॉ० नगेन्द्र, दिल्ली, १९५८, पृ० ९१।

३. (क) रामलाल वर्मा शास्त्री, अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, दिल्ली (१९६९) द्वितीय संस्करण, पृ० २६, श्लोक सं० ८।

४. आचार्य विश्वनाथ, साहित्य-दर्पण, ६।१५८-१६९.
लक्ष्मीटीका वाराणसी, १९५५., पृ० ४०५।

५. सत्य हरिश्चन्द, प्रसाद के नाटक,
रामकुमार वर्मा, कादंब या विष।

६. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग-२ काशी, सं० २०१७, पृ० ५८१।

७ किशोरीदास वाजपेयी, हिन्दी शब्दानुशासन, काशी, सं० २०२३ वि०, द्वितीय संस्करण, पृ० ३।

८. डॉ० राजकुमार पांडेय, रामचरितमानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन, कानपुर, १९६३, पृ० ३३८-३९।

९. वाल्टर पेटर, थ्री एस्सेज फ्रॉम एप्रिसियेशस, लंदन, १९५७, पृ० १४।

१० (क) जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', कविवर बिहारी, बनारस, १९५३, पृ० ११८।
(ख) डॉ० रामकुमार सिंह, आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा, कानपुर, १९६५, पृ० ४७। तथा
'एक ही भाषा समय के बदलने के साथ लय भी बदल लेती है और संग में होने वाली हरकतें भी।'
डॉ० विपिन कुमार अग्रवाल, आधुनिकता के पहले, इलाहाबाद, १९७२, पृ० ६७

११. श्रीधरहिं; मानस का कथा-शिल्प; वाराणसी, १९५९, पृ० २११।

१२. मानस, १।२३८

१३. मानस, १।२०६

१४. मानस, १।२०८

१५ मानस, ४।३
१६. मानस, ४।६
१७. मानस, ४।६
१८. मानस, ७।१८
१६. मानस, ३।१६
२०. मानस, ३।२८
२१. मानस, ६।२८
२२. मानस, ६।६३
२३. मानस, ५।७
२४. मानस, ६।६
२५. मानस, ६।७२
२६. मानस, ५।१५
२७. मानस, ५।५६
२८ मानस, २।२७५
२६. मानस, २।२५०
३०. डॉ० राजकुमार पांडेय, रामचरितमानस : काव्यशास्त्रीय अनुशीलन, कानपुर, १६६३, पृ० ३३७
३१ मानस, १।१८६
३२. मानस, ३।४
३३. मानस, ३।८
३४. मानस, ३।११
३५. मानस, ३।४२
३६. मानस, २।८८
३७. मानस, १।१६२
३८. मानस, १।२११
३६. मानस, २।१६
४०. मानस, १।२०६
४१. मानस, ३।१७
४२. मानस, ३।२१
४३. मानस, २।२८२
४४. मानस, २।७४
४५. मानस, २।६६
४६. मानस, ६।१५
४७. मानस, २।१८६-१६१ तक ।
४८. मानस, २।१००-१०२
४६. मानस, ७।६१।६
५०. मानस, १।२३०
५१. मानस, १।२८३
५२. मानस, २।६
५३. मानस, ३।१८-१६
५४. मानस, ३।३०
५५. मानस, ६।१२
५६. मानस, १।२७३-२७५

५७. मानस, २।७२
५८. मानस, १।२३५
५९. मानस, २।६७
६०. मानस, ३।२९
६१. मानस, २।१६७
६२. मानस, ७।२
६३. मानस, १।१९३
६४. मानस, २।१५५
६५. मानस, ६।५
६६. मानस, ६।२३
६७. मानस, ६।९०
६८. डॉ० कामिल बुल्के, उद्धृत हिन्दी साहित्यकोश, भाग १, सं० २०२०, पृ० ९७५ ।
६९ विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, गोसाईं तुलसीदास, वाराणसी, प्रथम संस्करण, पृ० ७८ :

रामचरितमानस के रूप और काव्यभाषा

महाकाव्य प्रबधकाव्य का एक भेद है, जिसके लक्षण स्पष्ट रहते हैं। प्रस्तुत प्रबंध में 'प्रबंधकाव्य' शब्द महाकाव्य के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत साहित्य में रचित अनेक महाकाव्यों को देखकर आचार्यों ने उसके लक्षण भी बनाए। रुद्रट ने महाकाव्य के लिए कथा-वस्तु की जटिल संघटना की ओर संकेत किया है।[1] भामह महाकाव्य को सर्गबन्ध सुखांत रचना मानता है, जिसमें जीवन के विविध रूपों और कार्यों का वर्णन अलंकृत शैली में किया जाता है। वे लंबे कथानक, महान् चरित्र तथा पंचसधियों को भी स्वीकार करते है।[2] दंडी के अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु प्रख्यात होनी चाहिए, चतुर्फल की प्राप्ति का उद्देश्य, तथा नायक उदात्त होना चाहिए। जिसका आकार बड़ा हो, जो सर्गबद्ध तथा पंचसंधियों से युक्त हो, अलंकृत भावों और रसों से परिपूर्ण हो।[3] हेमचन्द्र का कहना है कि महाकाव्य में रसानुरूप संदर्भ, अर्थानुरूप होना चाहिए, जिसमें व्यापक लोक-रंजकता हो।[4] आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि महाकाव्य में आठ या इससे अधिक सर्ग होने चाहिए, उसका नायक कुलीन, महान्, वीर, सर्वगुण संपन्न नीतिज्ञ होना चाहिए। उनके अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु के संघर्ष में अंतिम विजय नायक ही होती है। प्रतिनायक का भी प्रभावपूर्ण वर्णन आवश्यक है।[5]

पाश्चात्य साहित्य में भी महाकाव्य संबंधी धारणाओं पर विचार हुए हैं। अरस्तू के अनुसार षष्टपदी छंद में कथात्मक अनुकरण से युक्त, दु:खांत एवं अन्विति-पूर्ण कथानक होना चाहिए। समुचित आनंद देने वाला तथा कथानक इतिहास से थोड़ा भिन्न होना चाहिए। इसमें विविध व्यापार, युग-जीवन के विविध पक्षों का सुन्दर उद्घाटन एव गरिमामयी भाषा होनी चाहिए। डब्ल्यू० पी० करके ने महाकाव्य की परिभाषा को व्यापक बताते हुए लिखा है कि "महाकाव्य में चरित्रों की कल्पना बहुत ही स्पष्ट और संपूर्ण रूप में की जाती है, अत: उनकी विभिन्न मन: स्थितियों और समस्याओं के चित्रण के कारण महाकाव्यों में नाना प्रकार के दृश्यों और गुणों का चित्रण स्वभावत: हो जाता है। इस प्रकार इसमें समग्र जीवन के कार्यकलाप जीवन कथा का रूप धारण कर लेते हैं। महाकाव्य की सफलता कवि की कल्पना-शक्ति और चरित्र-चित्रण पर निर्भर होती है।"[6] एबर क्रोम्बी महाकाव्य की शैली पर अधिक बल देते हैं। शैली के कारण भी कोई रचना महाकाव्य की संज्ञा प्राप्त करती है। आनन्द की एक विचित्र दुनिया में ले जाने की शक्ति महाकाव्य में होती है।[7] सी० एम० बावरा का कहना है कि महाकाव्य एक वृहदाकार, कथात्मक काव्यरूप है, जिसमें गरिमायुक्त

घटनाओं का वर्णन रहता है।[८] महाकाव्य में किसी महती घटना का वर्णन रहता है।[९] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार महाकाव्य में मानव-जीवन का पूर्ण दृश्य, संबद्ध, श्रृङ्खला युक्त घटनाएं तथा हृदयस्पर्शी प्रसंगों का समावेश रहना चाहिए।[१०]

अनेक युग के आचार्यों ने महाकाव्य पर विचार किया है, अपने-अपने ढंग से, अपनी-अपनी पहुंच से। वस्तुतः महाकाव्य एक ऐसी विराट् चेतना की अभिव्यक्ति है, जिसे संकीर्ण बंधनों में कभी नहीं बांधा जा सकता। परिभाषा में इतनी व्यापकता होनी चाहिए कि सभी देश के, सभी प्रकार के महाकाव्यों के साथ मूल्यांकन हो सके। डॉ० शंभुनाथ सिंह ने ऐसी व्यापक परिभाषा देने की कोशिश की है। उनके अनुसार महाकाव्य में ये विशेषताएं होनी चाहिए —

१. महदुद्देश्य, महत्प्रेरणा और महती काव्य-प्रतिभा
२. गुरुत्व, गांभीर्य और महत्व
३. महाकार्य और युग जीवन का समग्र चित्रण
४. सुसंघटित, जीवन कथानक
५. महत्वपूर्ण नायक तथा अन्य पात्र
६. गरिमामयी उदात्त शैली
७. तीव्र प्रतिभान्विति और गंभीर रस-व्यंजना
८. अनवरुद्ध जीवनी-शक्ति और सशक्त प्राणवत्ता।[११]

प्राच्य और पाश्चात्य, दोनों कसौटियों पर 'मानस' एक महाकाव्य सिद्ध होता है। हां, पाश्चात्य काव्यशास्त्र के बाह्य लक्षण 'मानस' पर घटित नहीं होते, जो संस्कृति और सभ्यता की भिन्नता के कारण उचित भी है।

काव्य में गति लाने के लिए 'मानस' में कथात्मक सूत्रों की व्यापकता सर्वत्र दिखाई पड़ती है। तुलसीदास ने राम के उदात्त कथानक को एक महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनाया, जिससे राष्ट्र की तत्कालीन विषमताएं और विरूपताएं ढीली पड़ गईं। इनमें महती काव्य-प्रतिभा थी और इसीलिए काव्य-सौन्दर्य, भक्ति तथा लोक-संग्रह का अपूर्व समन्वय हो सका। इनका कथानक सुनियोजित, सांगोपांग तथा जीवंत है। 'मानस' की गंभीरता और गरिमा ऐसी है कि उसने संपूर्ण विश्व को अपनी ओर आकृष्ट किया और कुछ न कुछ प्रभावित भी किया। राम के उदात्त चरित्र का इतना प्रभाव भारतीय जनता के मानस-पटल पर हुआ कि आज तक लोगों की आस्था बनी है। 'मानस' की रचना अपने आप में एक महत्वपूर्ण घटना है। आज भी मानव इससे लाभान्वित हो रहे हैं। इसमें युग-जीवन का समग्र चित्रण किया गया है। मानव की शाश्वत वृत्तियों का उद्घाटन किया गया है।

'रामचरितमानस' में उदात्त पात्रों की सम्यक् अभियोजना की गई है। राम, लक्ष्मण, भरत, हनुमान, सीता, दशरथ आदि पात्रों का मनोरम, मनोवैज्ञानिक तथा गहराई के साथ वर्णन किया गया है। ये सारे पात्र अपनी वैयक्तिक सीमा और काल-परिधि के बाहर भी अपना काव्यात्मक प्रभाव रखते हैं। आज विश्व में 'मानस' की लोकप्रियता का प्रधान कारण है उदात्त कथानक, एवं उदात्त चरित्र का गरिमामयी

उदात्त शैली में अभिव्यक्ति। भाषा-शैली के कारण 'मानस' से सब तरह के पाठक, श्रोता, तृप्त होते हैं।

'रामचरितमानस' में अनेक साहित्यिक रसों का परिपाक मिलता है। इसके हर प्रसंग में तदनुकूल गंभीर, व्यापक तथा उदात्त रस-व्यंजना मिलती है। इस महा-काव्य में नौ रसों के अतिरिक्त तुलसी का अपना रस है, भक्ति-रस। उसकी आदर्श कथात्मक पद्धति, रस-व्यंजना तथा उद्धात्त शैली की शक्ति पर ही 'मानस' का महा-काव्यत्व टिका हुआ है।

तुलसी महान् कवि थे। उनकी प्रातिभ कल्पना ने महाकाव्य के स्वरूप निर्धारण में अपनी निराली विशेषता प्रदर्शित की है। महाकाव्य के पूर्व निर्धारित तथ्यों के पालन के साथ ही कुछ ऐसे तथ्य हैं जो तुलसी की प्रतिभा की ही उपज कही जा सकती है। 'रामचरितमानस' में जो विशेषताएं हैं वे महाकाव्य की परिभाषाओं में कुछ नये आयाम जोड़ती हैं। तुलसीदास के महाकाव्य में जैसी आदर्श और उन्नायक चरित्र-कल्पना है वैसी न मिल्टन के 'पैराडाइज लॉस्ट' में है, न स्पेंसर की 'फयरी क्वीन' में और न दांते की 'डिवाइना कमेडिया' में।[१२]

भाषा भी काव्यरूप का परिचायक होती है, क्योंकि कविता में नेत्र एवं कर्ण से जो दृश्य एवं श्रव्य है, वह भाषा के अतिरिक्त और क्या है? अतएव भाषा से ही काव्यरूप का महत्व निमित होता है। यदि रूप एक भवन है, तो भाषा ही ईंट, सीमेंट, चूना, पानी, लकड़ी, लोहा आदि अनेक सामग्रियों का समवाय है।[१३] आस्वाद की दृष्टि से सभी विधाओं में अभेद है, रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से ही उनमें भेद प्रतीती होता है। इसी कारण भाषा की दृष्टि से सभी विधाएं एक नहीं होंगी। भाषा के प्रति सामाजिक का जो दृष्टिकोण होता है, वह सभी विधाओं में एक समान होगा, किन्तु कवि का नहीं। रचनाकार के सामने भाषा की समस्या सभी माध्यमों में एक समान नहीं आती। लय के कारण काव्य की भाषा को प्राप्त करने में कवि को जितना अभ्यास करना पड़ता है, या उसमें जितना नियन्त्रित रहना पड़ता है, उतना गद्य-विधाओं में नहीं। इसलिए काव्यभाषा का स्वरूप के साथ घनिष्ठ संबंध है, क्योंकि उसके निर्णायक तत्वों में काव्यभाषा भी एक है। इस तरह दोनों में अंगांभिभाव संबंध है। काव्यभाषा अंग है और रूप अंगी है।[१४]

महाकाव्य-प्रणयन के क्षेत्र में जब एक नयी शैली (विचित्र मार्ग) को जन्म दिया गया तो उसके दो आधारों में भाषा को भी एक स्थान प्राप्त हुआ है। इसका बर्णन करते हुए बलदेव उपाध्याय ने लिखा है कि "संस्कृत साहित्य के विकास में महाकवि भारवि का नाम विशेष उल्लेखनीय होगा, क्योंकि उन्होंने महाकाव्य लिखने की एक नयी शैली को जन्म दिया। आचार्य कुंतक इस अलंकार बहुल पद्धति को 'विचित्र मार्ग' की संज्ञा देते हैं। इस अलंकृत शैली की दो विशेषताएं हैं—(१) विषय-सम्बन्धी, और (२) भाषा-सम्बन्धी। दूसरी बात भाषा-सम्बन्धी है। वाल्मीकि तथा कालिदास के महाकाव्यों में सीधी-सादी, चलती और प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग

किया गया है। उसकी कविता प्रसाद गुण से युक्त है। न तो उसमें कही क्लिष्ट कल्पना मिलती है और न अलंकारों की बेसुरी झंकार।[१५]

इससे महाकाव्य-रचना में भाषा की प्रधानता पर प्रकाश पड़ता है। महाकाव्य का पाठक मुक्तकों एवं लघु प्रबंधों के पाठकों से अधिक विदग्ध एवं विद्वान् रहता आया है, इसलिए महाकाव्यों की भाषा भी कुछ न कुछ दुरूह दिखाई देती है।

अरस्तू ने महाकाव्य की भाषा एवं शब्द-चयन पर विचार किया है कि महाकाव्य की शब्द-योजना (डिक्शन) उत्कृष्ट होनी चाहिए। महाकाव्य का भाषा वहीं तक अलंकृत होनी चाहिए जहां तक विचार अस्पष्ट न हो।[१६] "अरस्तू के मत से महाकाव्य की भाषा-शैली त्रासदी की करुण-मधुर अलंकृत-शैली से भिन्न, लोकातिक्रान्त प्रयोगों से जलात्मक, उदात्त एवं गरिमा-वरिष्ट होनी चाहिए, साथ ही प्रसन्न होनी चाहिए, उसका आधार अत्यन्त व्यापक होना चाहिए जिसमें सभी प्रकार की शब्दावली और प्रयोगों आदि का समावेश हो सके।"[१७] इलियट भी यही मानता है कि "कवि के शब्दों में न तो अस्पष्टता हो और न अतिशयता।[१८] महाकाव्य की भाषा सुन्दर एवं भावात्मक होनी चाहिए।[१९]

महाकाव्य में विषय की विविधता रहती है, कहीं वर्णनात्मक, कहीं गीतात्मक और कहीं नाटकीय। इसलिए इनकी भाषा में वैविध्य का होना बिल्कुल स्वाभाविक है। आनन्दवर्धन के अनुसार दो प्रकार के महाकाव्य होते हैं—रसप्रधान और इतिवृत्तात्मक। रस प्रधान महाकाव्य में भाषा रसानुकूल होनी चाहिए एवं इतिवृत्तात्मक में स्वतन्त्र।[२०] रस-प्रधान महाकाव्य में असमास अथवा मध्यम समास वाली रचना करनी चाहिए, करुण तिथा विप्रलंभ शृङ्गार में समास रहित संघटना रहनी चाहिए तथा रौद्रादि दूसरे रसों के वर्णन में मध्यम समास या दीर्घ समास की रचना का भी त्याग नहीं हो।[२१] हौब्स ने लिखा है कि—"ही (मि० हॉब्स) टेल्स अस दैट दि फर्स्ट ब्यूटी ऑव ऐन एपिक पोयम कनसिस्ट्स इन डिक्शन, दैट इज़, इन दि च्वायस ऑव वर्ड्स।[२२]

संस्कृत के आचार्यों द्वारा दी गई काव्य-परिभाषाओं में भाषिक तत्वों के कुछ संकेत मिलते हैं। कुंतक ने कहा है—

"शब्दार्थौ सहितो वक्र कवि व्यापार शालिनी।
बन्धं व्यवस्थितो काव्यं तश्विदाहह्लादकारिणि।।[२३]

अर्थात् काव्य-मर्मज्ञों को आह्लाद देने वाले वक्र कवि व्यापार से मुक्त रचना में व्यवस्थित शब्द और अर्थ मिलकर काव्य कहलाते हैं। यह परिभाषा संकेत करती है कि काव्य में प्रयुक्त होने वाले शब्द और अर्थ में पाठकों को आनन्द देने की शक्ति भी रहे। पंडितराज जगन्नाथ के अनुसार शब्दों में रमणीय अर्थ देने की क्षमता हो। आचार्य विश्वनाथ कहते हैं कि काव्य में प्रयुक्त वाक्य रसात्मक हो। ये सारे विचार काव्य (महाकाव्य) की भाषा के एक-एक अंग की पुष्टि करते हैं।

काव्यधारा विशेष कर काव्यभाषा में एक प्रकार का दोष स्वभावतः ही आ जाता है। एक ही प्रकार की शब्दावली सभी कवियों द्वारा प्रयुक्त होने लग जाती है।

मुक्तक और भाव-प्रधान काव्य-परंपरा में ऐसा निश्चित रूप से होता है। संत काव्य-परंपरा, छायावादी काव्य-परंपरा, नयी कविता आदि इसका प्रमाण है। इसके विपरीत राम काव्य या प्रेमाश्रयीशाखा में ऐसा नहीं है, क्योंकि ये काव्य-परम्पराएं प्रबंधात्मक है। प्रबन्धकाव्य में वर्णन-वैविध्य स्वभावतः ही बना रहता है।

दृश्यकाव्य की अपेक्षा श्रव्यकाव्य में रचयिता को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता होती है और सहृदय का अधिक ध्यान भी रखना पड़ता है। 'पैराडाइज लॉस्ट' की प्रशंसा करते हुए एडिसन ने महाकाव्य की भाषा में दो गुणों को आवश्यक माना है—प्रासादिकता और भव्यता। एबर क्रौम्बी के अनुसार उदात्त शैली में ही कोई महान् कृति महाकाव्य कहलाती है और वह शैली कवि की कल्पना, विचारधारा तथा उसकी अभिव्यक्ति में जुड़ी रहती है।[२४] विषय-गांभीर्य के अनुरूप महाकाव्य की शैली भी भव्य एवं गंभीर होती है।[२५] मैकनील डिक्सन ने महाकाव्य की एक व्यापक परिभाषा में अन्याय तथ्यों के साथ महाकाव्य की ऐसी गरिमामय एवं उदात्त शैली को स्वीकार किया है जो युग-युगान्तर तक रचना को जीवित रख सके।[२६] महाकाव्य की भाषा उदात्त होनी चाहिए। इसे रेने वेलेक ने शेक्सपीयर और मिल्टन की भाषा की विवेचना करते हुए कहा है—"दि लैंग्वेज स्पोकन बाइ मेन केम टू मीन समथिंग वेरी डिफरेन्ट फ्रॉम नेचरलिज्म। इट फाइनली मिन्ट दि लैंग्वेज आव मिल्टन ऐण्ड शेक्सपीयर, दि इमपैसन्ड लैंग्वेज आंव दि ग्रेट पोयट।"[२७]

वर्ड्सवर्थ की दृष्टि में "सच्ची भाषा वह है जिसे मनुष्य भावावेग के क्षणों में बोलता है। कवि जितना ऐसी भाषा के निकट पहुंच सकेगा, उसकी भाषा-शैली उतनी ही सच्ची मानी जायगी।"[२८] महाकाव्य की भाषा में एक-एक शब्द महत्वपूर्ण होते हैं। "क्रियापदों के प्रयोग के प्रति कवि का यह अभिनिवेश प्राचीन महाकाव्यों में वस्तु-वर्णन और व्यापार-वर्णन में दिखाई पड़ता है। आदिकाव्य, अश्वघोष के बुद्ध-चरित, प्रवरसेन के सेतुबंध तथा कालिदास की कृतियों में इसके निदर्शन हैं, विशेषतः आदि कृषि और अश्वघोष के वस्तु तथा व्यापार-वर्णन ऐसे क्रिया-प्रयोगों से भरे पड़े हैं।"[२९]

प्रबंध काव्यों में भाषा-प्रयोग का नियमन प्राप्त करते हैं। "सामान्य स्फुट-कविताओं की वैषायिक भिन्नताओं के अनुसार काव्यभाषा में अनिवार्यतः भिन्नता होती है और कवि इस तथ्य से अवगत भी होते हैं। उसी प्रकार खण्डकाव्यों अथवा महाकाव्यों में पात्रों के अनुरूप शब्द-चयन एवं भाषा के प्रयोग के साथ ही वे पात्रों के अनुरूप विचार व्यक्त करने के लिए सचेष्ट रहते हैं।"[३०] आनन्दवर्धन ने कहा है कि "व्यंजक के सुन्दर प्रयोग से ही महाकवियों को महाकवि-पद की प्राप्ति होती है, वाक्य-वाचक-रचना-मात्र से नहीं।"[३१] भरतमुनि ने काव्य की भाषा के सम्बन्ध में लिखा है कि—

मृदुललितपदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनं ।
जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्य योग्यम् ।

बहुकतरस मार्ग संधिसंधानयुक्तं ।
सभवति शुभ काव्यं नाटक प्रेक्षकाणाम् ।।[32]

अर्थात् जो कोमल एवं ललित पदयुक्त, गूढ़ शब्दार्थ से रहित, सर्व सुखदायी, नृत्य में प्रयुक्त किए जाने योग्य, रस की विविध धाराएं प्रवाहित करने वाला, संधि-संधानपूर्ण हो, वही सर्वश्रेष्ठ काव्य कहा जा सकता है। इस तरह महाकाव्य की भाषा में शब्द-चयन की ताजगी, भाव-सामर्थ्य, उत्कृष्ट सुन्दर, भावपूर्ण होनी चाहिए। यह भी ध्यान रहे कि भाषा कथ्य पर पर्दा न डाले एवं भाषा का विषय के औचित्य के साथ ऐक्य होना चाहिए। महाकाव्य में अलंकारपूर्ण भाषा कवि के लिए एक अनिवार्यता हो जाती है। सचमुच ही भावविष्ट क्षणों को वह सीधी भाषा में अभिव्यक्ति नहीं दे सकता है। ऐसा करने पर उसे संतोष नहीं होगा। पात्र की जिस भावावेशमयी मनोदशा को उसने समझा है, उसे संप्रेषित करने के लिए कदाचित् सीधी सादी भाषा कहीं पर्याप्त भी हो जाय तो कवि को सन्तोष नहीं होता। इसीलिए यह सर्वथा मनो-विज्ञान सम्मत है कि कवि भाव-विभोर क्षणों की अभिव्यक्ति के लिए अलंकारमयी भाषा का आश्रय लेता है। इसी कारण यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि गीतिकाव्य में भाषा भाव विष्ट हो जाएगी, क्योंकि वहां वक्ता स्वयं कवि रहता है।[33] लेकिन जहां भावाभिव्यक्ति में शिथिलता दिखाई पड़े, और वहां भी अलंकारमयी भाषा हो तो उसे प्रयत्न प्रसूत समझना चाहिए।[34] भाषा में कसावट लाने के लिए सामा-सिक शब्दावली का प्रयोग महाकवियों के लिए अति आवश्यक हो जाता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि "बे मुहाविरा भाषा अच्छा नहीं लगती। मुहाविरा ही भाषा का पुराण है, उसे जिसने नहीं जाना, उसने कुछ नहीं जाना। उसकी भाषा कदापि आदरणीय नहीं हो सकती।"[35] आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार "भाषा में विशेष प्रकार का वाग्योग उसकी शक्ति-सामर्थ्य का व्यंजक है। मार्मिकता के लिए प्रत्येक समर्थ भाषा वाग्योगों का अधिक व्यवहार करती है।[36] महाकाव्यों में उनकी अनुपम शोभा देखने को मिलती है। महाकाव्यों की भाषा रीति, गुण, वृत्ति आदि से समन्वित होनी चाहिए। सच पूछा जाय तो महाकाव्यों में छंद, अलंकार, रीति एव गुणादि तत्वों की नियोजना व्यापक रूप में भाषा के पक्ष को ही पुष्ट एवं परिष्कृत करने के हेतु की जाती है।[37] डॉ० ग्रियर्सन ने तुलसी की भाषा के संबंध में जो विचार प्रस्तुत किया है, उससे अनेक महाकाव्य की भाषा के कुछ संकेत मिलते हैं कि महाकाव्य का शब्दभांडार विपुल हो तथा उच्चारण माधुर्य से परिपूर्ण हो— "अवधी हैज़ दस विकम दि लैंग्वेज ऑव एपिक पोयट्री इन नदर्न इण्डिया. पुटिंग दि वर्क्स ऑव तुलसी दास, ए जिनीअस हूज नेम विल समडे बी इनसर्टेड बाइ यूनिवर्सल कन्टैक्ट इन दि लिस्ट ऑव दि ग्रेट पोयट्स ऑव दि वर्ल्ड, टू वन साइड. दि लैंग्वेज हेज़ नो ऐम्बुल ए वोकैवलरी, इज़ सो मेलोडियस इन इट्स इननसियेशन ।।[38]

रामचरितमानस एक अनुपम महाकाव्य है। प्राच्य एवं पाश्चात्य अनेक आचार्यों ने अपने-अपने ढंग से महाकाव्य की परिभाषाएं दीं। लेकिन महाकाव्य किसी सीमित बंधन में बंधने वाली विधा नहीं है। रामचरित मानस में महाकाव्य के सारे तथ्य

समाहित हैं, इसके एक-एक अंग की इतनी अधिक व्यापकता दिखाई पड़ती है महाकाव्य के आस्वादक आश्चर्यचकित हो जाते हैं। महाकाव्य जीवन के विविध पक्षों का विविधता के साथ अंकन रहता है। इसीलिए इसमें भाषा का महत्व सर्वाधिक है। मानस की भाषा अपने आप में एक उदाहरण है। महाकाव्योचित भाषा की सटीकता अपनी चरम सीमा पर हमें मानस में ही मिलती है 'तुलसीदास ने मनुष्य की शाश्वत वृत्तियों का अत्यन्त सरस उद्घाटन किया है। इसी से उनके ग्रंथों का शाश्वत महत्व है।'[३९] प्राचीन आचार्यों की भांति तुलसी ने भी शब्द और अर्थ की अभिन्न महत्ता को स्वीकार किया है —

"गिरा अरथ जल वीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।"

—मानस, १/१८

तुलसी के मतानुसार महान कवियों को शब्द और अर्थ पर असाधारण अधिकार होना चाहिए। ताल के इशारे पर जैसे नट नाचता है उसी प्रकार कवि के इशारे पर शब्द और उसके अर्थ को नाचना पड़ता है —

"कविहिं लरथ आखर बलु साँचा।
अनुहरि ताल गतिहि नटु नाँचा।।"

—मानस, २।२४७।४

मानस में प्रयुक्त हर शब्द अपना महत्व रखता है। अर्थ की सरसता और सरलता एवं निगूढता पारखियों के हृदय में आनन्द रस का संचार कर देती है। शब्द की गरिमा को कविवर अच्छी तरह जानते थे। मानस यद्यपि पौराणिक महाकाव्य है, फिर भी निरर्थक वाग्जाल में भारती को वे श्रीहीन होने देना नहीं चाहते हैं —

"अरथ अमित आखर अति थोड़े।"

मानस का शब्द नियोजन अत्यन्त सबल और सजीव है, सटीक है। प्रसंगों की सांदर्भिक विशेषताओं के निदर्शन में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस स्थल के शब्द को हटाकर उसके पर्याय शब्द ही रख दें तो मानस का साहित्यिक आनन्द धीमा पड़ जाएगा। मानस में ऐसी साहित्यिक सुषमा सर्वत्र विद्यमान है। यहां कुछ उदाहरण दिए जाते हैं —

१. जनकपुर में राजा जनक अपने समधी राजा दशरथ के चरण धो रहे हैं। इसका वर्णन करते हुए कविवर लिखते हैं —

"धोए जनक अवधपति चरना।"

—मानस, १।३२७।४

यदि गोस्वामी जी चाहते तो इसे यों भी कह सकते थे—

"दशरथ पद मिथिलापति धोए।"

और तब भी टीकाकार यही अर्थ करते जो, आजकल

"धोए जनक अवधपति चरना।"

का करते हैं, अर्थात् जनक जी ने दशरथ जी के चरण धोए।

यहां एक बात ध्यान देने योग्य है और वह है अवसर। यह बात गोस्वामी जी

ने किस अवसर पर या किस संदर्भ में कही है। इस समय जनक मिथिलापति नहीं हैं और न राजा दशरथ अवधपति के रूप में हमारे सामने हैं। बल्कि राजा जनक कन्या के पिता और राजा दशरथ वर के पिता के रूप में हमारे सामने उपस्थित हैं। कन्या के पिता का दरजा नीचा और वर के पिता का दरजा ऊंचा माना जाता है। इसलिए तो कन्या के पिता वर के पिता के चरण धो रहे हैं। यह ऊंच-नीच दिखलाने के लिए तुलसी दास ने यहां मिथिलेश के लिए सामान्य नाम जनक रखा और वर के पिता के लिए वैभवसम्पन्न नाम 'अवधपति' रखा। यदि इस चौपाई को वे लिखते— "दशरथ पद मिथिलापति धोए" तो बात विपरीत और असंगत होती, क्योंकि यहां वर के पिता को सामान्य नाम दे संबोधित किया गया है और कन्या के पिता के लिए वैभवसंपन्न नाम 'मिथिलापति' का प्रयोग हुआ है। अतः जैसी शब्द-सटीकता—"धोए जनक अवधपति चरना"—में है, और किसी प्रकार से नहीं हो सकती थी। इस शब्द-रचना से इस अवसर–विशेष पर जो जनक और दशरथ की तुलनात्मक सिद्धांत-भेद में महत्ता है, वह स्पष्ट है।

२. पुनि पुनि रामहिं चितव सिय सकुचति मन सकुचैन।
हरत मनोहर मीन छवि प्रेम पिआसे नैन ॥१।३२६।

यहाँ कवि ने सीता के नेत्रों की उपमा मीन से दी है। मछली जल में रहती है, आंखें सजल हैं—प्रेम के आधिक्य से। इस कारण उनको मीन कहा। इसी प्रकार प्रथम सोपान के २५८ दोहे में मीन का प्रयोग हुआ है—खेलत मनसिज मीन जुग जनु विधु मंडल डोल। क्योंकि इसके आगे लिखा है —

"लोचन जल रह लोचन कोना।"

मीन की उपमा सजल नेत्रों से, डबडबाई आंखों से कविवर ने दी है। जो मछली पानी में डूबी रहेगी, उसे जल का अभाव कैसा? परन्तु कविवर कहते हैं कि सीता जी के नयनों को श्रीराम के रूप की ऐसी अद्भुत प्यास थी कि जलमग्न मीन के समान होते हुए भी उनके नयन प्रेम-प्यासे बने रहे। जो अर्थ-चमत्कार यहां 'मीन' कहने से आता है, वह न आता, यदि सीता के नयनों की उपमा कमल, मृगशावक या खंजन से दी जाती। मछली के जल में पड़े रहने पर भी तृषा बनी रहे, तो उसकी तीव्रता अकथ है।

मानस में शब्द-प्रयोग की सहजता पाठकों को सहज ही आकृष्ट कर लेती है। काक-गरुड़-संवाद में प्रश्नकर्त्ता या श्रोता ज्ञानी गरुड़ हैं और वक्ता हैं भक्तशिरोमणि काक। शब्द-प्रयोग की ऐसी विशेषता दूसरे कवियों की कृतियों में नहीं मिलती। ज्ञानी प्रश्नकर्त्ता जब प्रश्न करते हैं तो ज्ञान का नाम पहले लेते हैं—

"ज्ञानहि भगतिहि अंतर केता।
सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता।।" ७।११५।११

और भक्त के उत्तर में भक्ति शब्द पहले आया है—

"भगतिहि ज्ञानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा।।" ७।११५।१३

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के शब्दों में "अपने-अपने पक्ष का प्राधान्य दोनों चाहते

थे। शब्द भावों को किस प्रकार वहन करते हैं, इसे तुलसीदास ही जानते थे।''[४०]

वस्तुतः वे भाषा की आवश्यकता और शब्दों की आत्मा को पहचानते थे। अपने काव्य को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए वे जहां जिस शब्द को ठीक समझते थे वहां उसका प्रयोग करते थे।''[४१] कवि का शब्द-चयन और शब्द-योजना प्रभावशाली है।[४२] महाकाव्य की भाषा में विशेषण का महत्व अधिक होता है, क्योंकि यह कवि की शब्द-चयन-कला है। ''विशेषणों के प्रयोग के समय शब्द चुनने के क्रम में ही कवि भाषा के सृष्टा का गौरवपूर्ण पद प्राप्त करता है।''[४३] विशेषणों का प्रयोग कवि की शक्ति पर निर्भर है, इसलिए विशेषणों के प्रयोग से भी हम किसी कवि के व्यक्तित्व की झांकी पा सकते हैं। महान कृति के कण-कण में विशेषणों की व्याप्ति रहती है।[४४] कवि भाव की गहराइयों में उतरता है, तो स्वतः उसके अनुरूप विशेषणों का मंजुल रूप प्रवाहित होने लगता है। महाकाव्य के जीवन के विविध अंगों, तत्वों का सामंजस्य-पूर्ण विवेचन रहता है। मानव-जीवन में विविधता, गहराई और शाश्वतता रहती है। पात्रों के जीवन में आई किसी आकस्मिक घटना की परिस्थितियों का चित्रण करने के लिए तदनुरूप अनेक नये सार्थक अभिव्यंजक विशेषणों को कवि सहारा बनाता है। काव्यभाषा का यह इतना महत्वपूर्ण तथ्य है कि इसके अभाव में काव्यभाषा काव्य की भाषा का पद प्राप्त नहीं कर सकती। आज तक दुनिया के जितने भी महाकवि हुए हैं, उनके महाकाव्य के महाकाव्यत्व का प्रधान श्रेय विशेषण-प्रयोगों को ही दिया जा सकता है।

हिन्दी में सूर, तुलसी, जायसी, कबीर, मीरा, बिहारी, केशवदास, निराला, दिनकर, पंत आदि सबके काव्य इसके प्रमाण हैं कि प्रसंगानुसार, स्थलानुसार, परिस्थिति के अनुसार काव्योचित विशेषणों का कितना सम्यक और रमणीय प्रयोगकिया है। तुलसी का रामचरितमानस तो विशेषणों का ही अति विशाल भांडार है। इसके सब विशेषणों पर तो एक अलग ही शोध-ग्रंथ बन जाएगा। यहां कुछ उदाहरण दिए जाते हैं। मानस में कविवर की विशेषण-संबंधी विशेष सूझ के दर्शन होते हैं। मानस में 'बड़भागी' विशेषण वहां ही आया है जहां राम या पूज्य के चरणा में प्रेम हो या प्रत्यक्ष राम-दर्शन का सुयोग मिले। कुल १७ बार बड़भागी शब्द का प्रयोग मानस में हुआ है। कुछ ये हैं :—

बड़भागी अंगद हनुमाना, चरन कमल चापत विधि नाना।६।११
अहह धन्य लछिमन बड़भागी, राम पदारबिंद अनुरागी।७।१
अतिशय बड़भागी चरनन लागी, जुगल नयन जलधारा बही।१।१२१।छंद
बड़भागी बन अवध अभागी, जो रघुवंस तिलक तुम्ह त्यागी।२।५६।५
जे गुरु पद अंबुज अनुरागी, ते लोकहुँ वेदहुँ बड़ भागी। २।२५६।५
रमा विलास राम अनुरागी, तजत बमन जिमि जन बड़भागी। २।३२४।८
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी, प्रेम मगन मुनिवर बड़भागी। ३।१०।२१
सोइ गुनग्य सोई बड़भागी, जो रघुबीर चरन अनुरागी। ४।२३।७
की तुम्ह राम दीन अनुरागी, आयहु मोहि करन बड़भागी। ५।६।८

मानस में परम विशेषण भी ध्यातव्य है। विशेषण के रूप में परम शब्द का प्रयोग कवि

ने प्रसन्नता, पवित्रता के सान्निध्य में किया है तथा दुःख एवं विपत्ति की दशा में विषम शब्द का प्रयोग मिलता है।

तापस समक्ष्य दयानिधाना। परमारथ पथ परम सुजाना। १।४४।२
भारद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिवर मन भावन। १।४४।६
रामकथा मुनिवर्ग बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी। १।४८।३
परम पुनीत न जाइ तजि, किएँ प्रेम बड़ पापु। १।५६
यहि अवसर मंगलु परम, सुनि रहँ सेउ रनिवास। २।७
सुनि जानकी परम सुख पावा, सापर तासु चरन सिर नावा। ३।६।१
परम प्रीति राखे उर लाई। ३।१०।२२
परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर मागहु देउँ सो तोही। ३।११।२३
बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए। ४।३।८
बरषा विगत सरद रितु आई, लछिमन देखहु परम सुहाई। ४।१६।१
परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिं बरनी।
परम रम्य गिरिवर कैलासू। सदा जहाँ सित उमा विपासू।

इसके विपरीत दुःख की स्थिति में विषम का प्रयोग हुआ है —

बन बहु विषम मोहमद नाना। नदी कुतर्क भयंकर नाना। १।३८।६
जड़ता जाड़ विषम उर लागा। गएहुं न मज्जन पाप अभागा। १।३६।२
मानहुँ सरोज भुजंग भामिनी। विषमा भाँति निहारइ। २।२५। छंद
जरहिं विषम उर लेहिं उदासा। कवीन राम बिनु जीवन आसा। २।५१।५
तौ प्रभु विषम वियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान। २।६७
विषम वियोग न जाय बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना ।२।८६।८
तलफत विषम मोहमन मापा। माजा मनहुं मोन कहुँ व्यापा। २।१५३।६
जरत सकल सुर वृंद, विषम गरल जेहि पान किए। ४।१
गइ विषम विपति वियोग भवतिन्ह, हरष सुख अगनित लहै। ७।६
अस विचारि रघुवंस मनि, हरहु विषम नव मीर ।७।१३०

विशेषणों के प्रयोग में भी कवि का एक सिद्धान्त रहता है। लेकिन कभी-कभी किसी परिस्थिति की सांदर्भिक उत्कृष्टता प्रदर्शित करने के लिए उसमें वे हेर-फेर भी कर देते हैं। तब अवसर और प्रसंग को देखते हुए प्रतीत होता है कि साहित्य के क्षेत्र में कवि की कितनी बड़ी अलौकिक सूझ थी। विपत्ति में विषम विशेषण उचित होता, परन्तु कवि ने जानबूझ कर परम का प्रयोग किया है —

१. देखी ब्याधि असाध नृपु, परेउ धरनि धुनि माथ।
   कहत परम आरत वचन, राम-राम रघुनाथ॥ २।३४
२. बहुविधि विलीप चरन लपटानी, परम अभागिनी आपुहि मानी ।२।५७।६
३. तब जानकी सासु पग लागी, सुनिअ भाय मैं परम अभागी। २।६६।३
४. निज पद नयन दिएँ मन, राम पद कमल लीन।
   परम दुखी भा पवन सुत, देखि जानकी दीन॥ ५।८

५. देखि परम बिहाकुल सीता, सो छन कपिहिं कलप समबीता। ५।१२।१३

प्रथम उदाहरण में राजा दशरथ राम के लिए व्यथित हैं। द्वितीय, तृतीय में सीता परम अभागिनी अपने को कहती है। चतुर्थ में सीता के दुःख से हनुमान दुःखी हैं एवं पंचम में सीता विरहाकुल है। विपरीत स्थिति के द्योतक विशेषणों का प्रयोग यहां कवि की भक्ति-भावना प्रदर्शित करता है। कविवर का अपना एक भाव है। जो दुख या भक्ति भावना राम के लिए है, उसे कवि दुःख का नहीं, सुख का स्थान देते हैं। इसलिए उपरोक्त उदाहरणों में कविवर ने जानबूझकर परम विशेषण का प्रयोग किया। इसी तरह के विशेषणों के अनुपम रत्नों से यह मानस भरा हुआ है। महाकाव्य की भाषा में क्रियापद का भी अपना विशिष्ट महत्व है। मार्जोरी बाउल्टन के अनुसार कवि अपना संपूर्ण प्रभाव विशेषण के द्वारा अर्जित करता है, जबकि प्रौढ़ कवि विशेषण से कम और क्रिया से अधिक प्रभाव अर्जित करता है। लेकिन सत्य तो यह है कि क्रियापद से अधिक महत्व विशेषण का ही है। मोपासों ने विशेषण की महत्ता स्वीकार की है, पर साथ ही साथ क्रिया को भी वे नहीं भूले हैं।[४५] रामचरित मानस महाकाव्य में क्रियाओं का जाल बिछा हुआ है। तुलसी के क्रिया-प्रयोग में भी चमत्कार दिखाई देता है। जहां वे आने-जाने पहुंचाने के वर्णन में क्रिया को पहले लिखते हैं और स्थान को बाद में, वहां गति शीघ्रतर होती है।[४६] सचमुच महाकवियों के शब्द-मात्र अपना अर्थ नहीं देते हैं, सूक्ष्मार्थ भी संकेतित करते हैं। एक उदाहरण दिया जाता है। हनुमान और कुंभकर्ण की लड़ाई का दृश्य है। दोनों एक-दूसरे पर प्रहार करते हैं, मुक्का-मुक्की करते हैं —

"तब मारुत सुत मुठिका हन्यो, परयो धरनि व्याकुल सिर धुन्यो।

पुनि उठि तेहि मारिउ हनुमंता, घुर्मित भूतल परेउ तुरंता॥ मानस, ६॥

हनुमान जब कुंभकर्ण को घूंसा मारते हैं तो, वह 'परयो धरनि' एवं 'व्याकुल सिर धुन्यो।' कुंभकर्ण जब हनुमान को घूंसा मारता है तो हनुमान भी तुरंत पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं—'भूतल परेउ तुरंता।' ऊपर से देखने पर तो दोनों महावीरों का पृथ्वी पर गिरना एक समान प्रतीत होता है, परन्तु क्रियाओं के प्रयोग से कवि का सूक्ष्म संकेत प्रकट हो जाता है। कुंभकर्ण के पृथ्वी पर गिरने के वर्णन में क्रिया 'परयो' का उल्लेख पहले है और स्थान 'धरनि' का बाद में, लेकिन हनुमान के पृथ्वी पर गिरने में स्थान 'भूतल' का उल्लेख पहले है और क्रिया 'परेउ' का बाद में। क्रिया के इस उलट-फेर से कविवर यह कहना चाहते हैं कि हनुमान के घूंसे से कुंभकर्ण अविलम्ब पृथ्वी पर गिर पड़ा, हनुमान भी कुंभकर्ण के घूंसे से तुरन्त गिरे, परन्तु कुंभकर्ण की अपेक्षा कुछ देर में। यह कविवर का महान गूढ़ अर्थ क्रिया से भी प्राप्त होता है। इसी भांति जब जनकपुर से दूत अवधपुर चलते हैं तो कवि लिखते हैं :—

पहुंचे दूत रामपुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन॥

भूप द्वार तिन्ह खबर जनाई। दसरथ नृप सुनि लिए बुलाई॥

यहां क्रिया पहले और स्थान 'रामपुर' बाद में आया है। इससे स्पष्ट है कि दूत अति शीघ्र ही अवधपुर पहुंचे। जहां पहुंचना था, वहां पहुंच गए, अब महारज दशरथ को

सूचना देती है। राज दरबार की शिष्टता और नियम पालन में देर का हो जाना स्वाभाविक है, इसे भी कवि ने क्रिया के माध्यम से ही व्यक्त कर दिया कि स्थान 'भूपद्वार' का उल्लेख पहले है और 'खबर जनाई' क्रिया का बाद में। क्रियाओं का कैसा अनूठा चमत्कार है यह। मध्यकालीन दूसरे महाकाव्यों में क्रियाओं की ऐसी सुनियोजित शुभ्रता के दर्शन नहीं होते।

रामचरितमानस में योजित विविध रसों की सुषमा देखने योग्य है। जिस रस का भी वर्णन किया गया है, रस-आस्वादन की दृष्टि से सभी पुष्ट और अत्यन्त मर्यादित है एवं संगत भाषा में हैं। इसीलिए विविध रसों की भाषाओं में भी अन्तर दिखाई पड़ता है। शृङ्गार, करुणा एवं शान्त रस की भाषा जहां सरस ललित पदों से युक्त है, वहां रौद्र और वीर रसों की भाषा में खूब खौलने वाला जोश है। वीभत्स रस में घृणा मानो साकार हो उठी है। अद्‌भुत रस में आश्चर्य एवं मानव यथार्थ से बाहर की मूर्त्तियां दिखाई पड़ती हैं। नव रसों के वर्णन में इनसे भी अधिक महत्व तुलसी का अपना रस है। वह है भक्ति रस। भक्ति रस की भाषा में विनय, दीनता अधिक है, शब्द छोटे और भाषा अत्यन्त सरल है। यहां कुछ उदाहरण दिए जाते हैं –

लता औट जब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए।
देखि रूप लोचन ललचाने। हर्ष जनु निजि-निजि पहचाने॥
थके नयन रघुपति छवि देखे। पलकन्हि हूँ परिहरि निमेखे॥
अधिक सनेह देह भए भोरी। सरद् ससिहिं जनुचितव चकोरी॥
लोचन मग रामहिं उर आनी। दीन्हें पलक कपाट सयानी॥
लता भवन ते प्रगट भए, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल विधु, जलद पटल विलगाय॥१।

भयानक रस की भाषा में उदाहरण उत्पेक्षा आदि अलंकार के साथ विविध वर्णों का साभिप्राय प्रयोग देखने को मिलता है—

अंगद दीख दसानन वैसे। सहित प्रानगिरि कज्जल जैसे।
भुजा विटप गिरि शृङ्ग समाना। रोमावली लता जनु जाना॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कन्दरा खोह अनुमाना॥

—मानस ६।१८

हास्य रस की भाषा के शब्द अत्यंत छोटे, असमस्त हैं, न कोई अलंकार है न मुहावरे। भाषा बिल्कुल अभिधा के सोपान पर से व्यंजन का अर्थ दे देती है—

तहं बैठे महेस गन दोऊ। विप्र वेष गति लखेउ न कोऊ॥
करहिं कूट नारदहिं सुनाई। नीक दीन्हि हीर सुन्दरताई॥
रीझिहि राजकुँवरि छवि देखी। इन्हहिं वरहिं हठि जानि विषेखी।

१।१३४

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न विलोकी भूली।
पुनि-पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हरगन मुसकाहीं॥

—मानस-१।१३५

वीर और रौद्र रस की भाषा में कठोर वर्णों और द्वित्व वर्णों का अधिक प्रयोग मिलता है। शब्दों की झंकृति अधिक मिलती है, उपमा, उदाहरण अलंकारों के योग रहते हैं और उन शब्दों में चित्रांकन की क्षमता अधिक रहती है।

रौद्र रस—

क्रुद्धे कृतांत समान कपिलनु श्रवत सोनित राजहीं।
मर्दहिं निसाचर कटक भट बलवंत जिमि धन गाजहीं।
मारीहँ चपेटन कटि दांतन्ह लातन्ह मीजहीं।
चिक्करहिं मर्कट, भालु छल बल करीहँ जेहि खल छीजहीं। ६।

वीर रस—

तोरौं छत्रक दंड जिमि, तब प्रताप बलनाथ।
जैं न करौं प्रभू पद सपथ, तौ न धरों धनु हाथ।। १।२५३

करुण और शान्त रस की भाषा के वाक्य प्रसाद गुण-सम्पन्न होते हैं। आवश्यकता अनुसार विविध प्रकार के मनोभाव-द्योतक शब्द-चित्र होते हैं। करुण रस की कविता भावातिरेक की स्थिति की कविता है। इस क्षण में भाषा का अलंकारमयी हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। मानस की भाषा में जहां करुण रस का वर्णन है, भाषा भावात्मक के साथ-साथ अलंकारमयी हो गई है। राजा दशरथ की मरणासन्न दशा का कैसा कारुणिक दृश्य है—

प्रान कंठगत भयउ भु आलू। मनि विहीन जनु व्याकुल व्यालू।
इन्द्री सकल विकल भइ भोरी। जनू सर सरीसज बनु बिनु बारी।।
कहाँ लखन कहँ राम सनेही। कहँ प्रिय पुत्र वधू वैदेही।
बिलपत राउ विकल बहु भाँती। भई जुग सरिस सिरीत न राती।
सो तन सखि करीब मैं काहा। जेहि न प्रेम पन मोर निवाहा।
—मानस २।११५

भक्ति रस की भाषा में शब्द सरस, छोटे, समासरहित, अलंकार युक्त चित्रोपम आदि गुणों से ओतप्रोत होते हैं। शब्दावली तत्समबहुल रहती है—

सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के वचन समुझि सियँ भाए।
सरसिज लोचन बाहु विसाला। जटा मुकुट सिर उर बन माला।
स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई।
प्रेम मगन मुख वचन न आवा। पुनि-पुनि पदसरोज सिर नावा।
सादर जल लै चरन पखारे। चुनि सुन्दर आसन बैठारे।
कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि।३।३४
जोरी पानि आगे भइ ठाढ़ी। प्रभुहिं विलोकि प्रीति अति बाढ़ी।
केहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।
अधमतें अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं कतिमंद अघारी। ३।३

इस तरह भाषा रसानुकूल विविध प्रकार की मिलती है जो महाकाव्य के लिए गौरव की बात है।

तुलसी की भाषा सर्वजन बोध्य है। इनके मानस-सृजन का उद्देश्य ही था—"कीरति भनिति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सब कहँ हित होई।१।१४।६ कविता की सरल भाषा पर उनका विशेष झुकाव था—

सरल कवित कीरति विमल सोइ आदरहिं सुजान। १।१४
सरल बरन भाषा सरल, सरल अर्थमय मानि।
तुलसी सरलै संत जन, ताहि पटी पहिचानि।

इसलिए इनकी भाषा सरल है। मानस की विश्वव्यापी लोकप्रियता का एक प्रधान कारण इसकी भाषा की सरलता और स्वाभविक प्रभावमयता है। मानस में कुछ ही प्रसंग ऐसे जो साधारण पाठक की ग्रहणशक्ति कुछ धीमी पड़ जाती है। जैसे—ज्ञान-दीपक हैं, प्रसंग। अन्य सब स्थलों की भाषा सर्वजन-ग्राह्य है। भाषा में स्तर-वैविध्य है, पर अस्पष्टता नहीं है—

गुरुवंदना की भाषा :—

बंदौ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबा सरस अनुरागा।
अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रूज परिवारू॥ १।१।१–२

नाम-महात्म्य की भाषा —

राम भालु कपि कटक बटोरा। संतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा।
नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं। करहु विचार सुजन मन माहीं।
राम सकुल रन रावन मारा। सीय सहित निजपुर पगु धारा।
राजा राम अवध रजधानी। गावत गुन सुरमुनि बरबानी।
सेवक सुमिरत नाम सुप्रीति। बिनु श्रम प्रबल मोह दल जीती।

—मानस, १।२५

विवाह की भाषा—

कुंअर कुंअरि कल भाँवरि देहीं। नमन लाभ सब सादर लेहीं।
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी।
राम सिया सुन्दर परिछाहीं। जगमगात मनि खंभन माहीं।
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिआहू अनूपा।
दरस लालसा सकुचन थोरी। प्रगट दुर त बहोरि बहोरी।
भए मगन सब देख निहारे। जनक समान अपान बिसारे।
प्रमुदित मुनिहर भाँवरी फेरी। नेग सहित सब रीति निबेरी।
राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जात विधि केही।
अरुन पराग जलज भरि नीके। ससिहिं भूषअहि लोभ अमी के।

—मानस, १।३२५

वनवास के समय की भाषा—

सजि बन साजु समाजु सब बनिता बन्धु समेत।
बंदि विप्र गुरु चरण प्रभु चले करि सबहि अचेत ।।२।७९

प्रेम की भाषा –

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा।
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस एतनहिं माहीं ।।

—५।११५

युद्ध की भाषा–

धीर कुधर खड प्रचंड मर्कट भालू गढ़ पर डारहीं।
झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि प्रचारहीं।
अति तरल तरुन प्रताप तरपहिं तमकि बढ़ चढ़ि-चढ़ि गए।
कपि भालु चढ़ि मन्दिरन्ह जहँ तहँ राम जसु गावत भरा। ६।४१

स्तुति की भाषा–

मो सम दीन न दीन हित, तुम्ह समान रघुवीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि, हरहु विषम भवभीर।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि रामचरितमानस महाकाव्य की भाषा सर्वजन बोध्य है। जो जितना ही अपढ़ है उसके लिए यह ग्रन्थ उतना ही सरल है और जो जितना ही पंडित है उसके लिए वह उतना ही गूढ़ है।[४७]

मानस की भाषा में भाव-वहन की सामर्थ्य सर्वाधिक है। विविध भावों का इतना विशाल भांडार और तदनुकूल भाषा के पुष्ट रूप हमें देखने को मिलते हैं। रति-जनित व्याकुलता का चित्र देखें—

देखी विपुल विकल वैदेही। निमिष बिहात कलप समतेही।
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करै का सुधा तड़ागा।
का बरषा जब कृषि सुखाने। समय चूकि पुनि का पछताने।
अस जिअँ जानि जानकी देखि। प्रभु पुलके लखि प्रीति वेखी।

—मानस १।२६१

सीता के विरह में विरही राम के उन्माद भाव का सजीव रूप निखरा है और भाषा अलंकारमयी हो गई है—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनयनी।
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना।
कुंद कली दाड़िम दामिनी। सरद कमल ससि अहि भामिनी।
बरुन पास मनोज धनुहंसा। गजकेहरि निज सुनत प्रशंसा।
श्री फल कनक कदलि हरषाहीं। वेकन सक संकुच मन माहीं।
सुनु जानकी ताहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू।

—मानस ३।३०

कैकेयी के वरदान से राजा दशरथ की दशा का बड़ा ही उत्कृष्ट कोटि का वर्णन किया गया है, जिसमें स्तंत, स्वरभंग, वैवर्ण्य आदि सात्विक भाव आ गए हैं—

सुनि मृदु वचन भूप हिय सोकू । ससिकर छुअत विकल जिमि कोकू ।
गए सहमि नहिं कछु कहि आवा । जनु सचान वन झपटेउ लावा ।।
विवरन भयउ निपट नरपालू, दामिनि हनउ महँहु तरुतालू ।

—मानस, २।२६

उत्साह भाव की वाहिका भाषा का सुन्दर निदर्शन लक्ष्मण के प्रसंग में हुआ है—

बाँधि जटा सिर कसि कटि माथा, साजिक सरासनु सायक हाथा ।
आज राम सेवक जस लेऊँ, भरतहिं समर सिखावन देऊँ ।
राम निरादर कर फल पाई, सोवहु समर सेज दोउ भाई ।
आइ बना भल सकल समाजू, प्रगट करौं रिस पाछल आजू ।
जिमिकर विकर ढलइ मृगराजू, लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ।
तैसेहिं भरतहिं सेन समेता, सानुज निदरि निपातौं खेता ।
ज्यौं सहाय कर संकर आई, तौ मारौं रन राम दोहाई ।

—मानस २।२३०

मानस की भाषा में निर्वेद का चित्रण—

राज सुनाइ दीन्ह वनवासू । मुनि मन भएउ न हरष हराषू ।
सो सुत बिछुरत गए न प्राना । को पापी वड़ मोहि समाना ।

मानस की भाषा में ग्लानि का इतना सुन्दर विवेचन कैकेयी के माध्यम से कवि ने किया है कि ग्लानि बिल्कुल मूर्त्तितय हो उठी है—

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई । कुटिल रानि पछितानि अघाई ।
अवनि जमहि जाचति कैकेयी । महिन बीचु विधि मीचु न देई । २। ५२

भाषा भावों, विचारों को व्यक्त करती है । भावों, विचारों को व्यक्त करने के लिए भाषा चाहे जो हो तो ठीक है, परन्तु जैसी हो, ठीक नहीं । उसे भाव-विचार के अनुरूप होना चाहिए ।[४८] मानस की भाषा आद्योपांत भाव-वहन करने में अत्यन्त समर्थ है । कविवर की भाषा भाव, प्रसंग, परिस्थिति, अवसर के अनुरूप उत्कृष्ट, सुन्दर और भावपूर्ण होती चली गई है । रामचरित मानस की भाषा में प्रसादमयता एवं भव्यता के दर्शन स्थल-स्थल पर होते हैं । भरत पुरवासी सहित राम को मनाने जा रहे हैं । भरत का चित्रण करते हुए कविवर लिखते हैं—

गवने भरत पयादेहि पाए । कोतल संग जाहिँ डोरि आए ।
कहहिँ सुसवक बारहिँ वारा । होइउ अस्व असवारा ।
राम पयोदेहि पाँय सिधाँए हम कहुँ रज गज बाजि बनाए ।
सिर भर जाऊँ उचित अस मोरा । सबतें सेवक धरम कठोरा ।
देखि भरत सुनि मृदु बानी । सब सेवक गन गरहिँ गलानी ।
भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रवेसु प्रयाग ।
कहत रामसिय रामसिय, उमगि उमगि अनुराग । २।२०३

भाषा की भव्यता का एक अन्य रूप इस प्रकार हैं --

सेवक बचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ निअराने।
भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू।
इति भीति जनु प्रजा दुखारी। विविध ताप पीड़ित ग्रह मारी।
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहिं भरत गति तेहि अनुहारी।
राम बास बन सपति भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा।
सचिव बिराग विवेक नरेसू। विपिन सुहावन पावन देसू।
भटजम नियम सैल रजधानी। साँति सुमति सुचि सुन्दर रानी।
सकल लंग संपन्न सुराऊ। रामचरन आश्रित चित चाऊ।

—मानस,२।२३५

मानस में गरिमामयी और उदात्त भाषा का चरम रूप देखने को मिलता है।

मानस की भाषा में विविध अलंकारों का भी एक विशिष्ट महत्व है, प्राच्य और पाश्चात्य, दोनों जगह के विद्वान इसे स्वीकार करते हैं। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कहना है कि "जिस प्रकार व्याकरण भाषा के प्रयोग का विश्लेषण करता है, उसी प्रकार अलंकारशास्त्र भाव-प्रकाशन के ढंग का[४९] कविवर पंत के अनुसार, "अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं।"[५०] मानस में भी भावों की महनीयता एवं गूढ़ता दिखाने के लिए विविध अलंकार कवि के वर्णन में स्वयं समाहित होते गए। तुलसी के अलंकार भावों का उत्कर्ष दिखाने में सहज हैं, वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में सहायक बनकर आए हैं, भार बनकर नहीं। अलंकार, इनके स्वाभाविक हैं, प्रयास-जन्य नहीं। सचमुच में मानस में प्रयुक्त विविध अलंकार भाषा की रमणीयता के सेतु कहे जा सकते हैं। इनकी भाषा में प्रधानतः रूपक, उदाहरण आदि प्रमुख हैं। यहां उपमामयी भाषा का एक उदाहरण दिया जाता है—

जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना। श्रवन रघु अहि भवन समाना।
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोर पंख कर लेखा।
ते सिर कटु संबुरि सम तूलां। जे न नमत हरि गुरु पद मूला।
जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनीं। जीवत सब समान तेइ प्रानीं।
जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना।
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनिहरि चरित न जो हरषाती।

—मानस, १।११३।२-७

मानस की भाषा में प्रयुक्तता एक सुख्यात रूपक यह है—

संत प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत माना।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा।
राम सीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि विलास मनोरम।
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मीन सीय सोहाई।

—मानस, १।३७

उत्प्रेक्षा तो मानस में पग-पग पर है, सबसे अधिक संख्या में उत्प्रेक्षा ही प्रयुक्त है। अकेले रामचरित मानस में ४१५ उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग कवि ने किया है। एक उदाहरण देखें—

राज कुँवर तेहि अवसर आए। मनहुँ मनोहरता तन छाए।
राज समाज विराजत रूरे। उडगन महुँ जनु जुग विधु पूरे।
देखहिं रूप महारन धीरा। मनहुँ वीर रस धरे सरीरा।
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी।
नारि बिलोकहि हरषि हियँ, निज-निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि, मूरति परम अनूप। १।२४१

मानस में अलंकारों के जमघट दो प्रकार के स्थलों पर है—एक वैसे स्थलों पर, जहां रूप, गुण चित्रण किया जाता है, और दूसरे वहां, जहां वर्णन बिलकुल भावात्मक होता गया है। महाकाव्य की भाषा की दृष्टि से मानस की भाषा सटीक है। भाषा ही तो काव्य है। रामचरितमानस की भाषा स्थल और प्रसंगानुसार विविध प्रकार की होती हुई भी इस तरह की है कि वह कथ्य पर पर्दा नहीं डालती है, जिस भी वस्तु का वर्णन किया गया है, साफ-सुथरा है। नाना प्रकार की शब्दावली है और एक-एक भाव-विशिष्ट सुन्दर प्रयोग है। मानस की शैली अपने कथानक की महानता के अनुरूप ही गरिमापूर्ण है, यद्यपि गरिष्ठ नहीं, और वह अपने सात्विक भावों के अनुरूप ही ऋजु, सुबोध, सरल चारु और ललित भी है।[११] कम से कम भाषा की क्लिष्टता के कारण भाव कहीं-भी दुरूह नहीं हो पाया है। अपितु दुरूह भाषा के लिए भाषा अत्यन्त सरल कर दी गई है जिससे भाव भली-भांति स्पष्ट हो जाता है।[१२]

तुलसी ने प्रकृति के अनुरूप भाषा का सृजन किया है। कठिन एवं गहन भावों की अभिव्यक्ति में भाषा भी प्रायः कठिन हो गई है और सरल भावों, प्रसंगों में भाषा भी अत्यन्त सरल हो गई है। निष्कर्ष यह कि रामचरितमानस की भषा महाकाव्योचित है।

संदर्भ

१. रुद्रट, काव्यालंकार, १६ वां अध्याय, पृ० २०-२३।
२. भामह, काव्यालंकार, १ : १६ : २१।
३. दंडी, काव्यादर्श, १ : १४:१६।
४. हेमचन्द्र, काव्यानु०, अध्याय ८।
५. आचार्य विश्वनाथ, साहित्य-दर्पण, ६ : ३१५-३२८।
६. डब्ल्यू० पी० कर, एपिक ऐंड रोमांस, पृ० १७।
७. एवर क्रोम्बी, दि एपिक, पृ० ४१-४२।
८. सी० एम० बावरा, फ्रॉम वर्जिल टु मिल्टन, पृ० १।
९. उद्धृत, मैकनील डिक्शन, इंग्लिश एपिक ऐंड हीरोइक पोयट्री, पृ० ९।
१०. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रंथावली, काशी सं० २००३, पृ० ६८।
११. उद्धृत, हिन्दी साहित्य कोश, काशी, सं० २०२० वि०, पृ०६२७।

१२. डॉ० राजपति दीक्षित, तुलसीदास और उनका युग, काशी, १९५३ पृ०३९७।
१३. दि एनेटोमी ऑव पोइट्री, मार्जोरी बाउल्टन, लंदन. १९५९ पृ०११।
१४. संस्कृत पोएटिक्स, कृष्ण चैतन्य, बम्बई, १९६५, पृ० ११४।
१५. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाराणसी, १९५३, पृ० २८२।
१६. अरस्तु, ऑन दि आर्ट आव पोयट्री, पेंग्विन बुक्स, १९६५, पृ० ६६।
१७. डॉ० नगेन्द्र, अरस्तु का काव्यशास्त्र, दिल्ली, सं० २०२३, पृ० १३५।
१८. शान्तिस्वरूप गुप्त, पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, दिल्ली १९६७, पृ० २१० पर उद्धृत।
१९. हर्बर्ट रीड, फॉर्म्स इन माडर्न पोयट्री, लन्दन, १९५७, पृ० ७२।
२०. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, व्या० विश्वेश्वर, सिद्धान्त शिरोमणि वाराणसी, २०१७ वि०, ३/७ की वृत्ति, पृ० १८५।
२१. उपरिवत्, ३/६ की वृत्ति, पृ० १७९-८०।
२२. बी० राजन तथा ए० बी० जॉर्ज, मेकर्स ऑव लिटररी क्रिटिसिज्म, वाल्यूम १, बम्बई, १९६५, पृ० २२९।
२३. कुन्तक, वक्रोक्ति जीवितम्, १/१७१।
२४. एबर क्रॉम्बी, दि एपिक, पृ० ४१।
२५. मैकनील डिक्शन, इंगलिश एपिक एण्ड हीरोइक पोयट्री, पृ० २४।
२६. उपरिवत्, पृ० १८-१९।
२७. रेनेवेलेक, ए हिस्ट्री ऑव मोडर्न क्रिटिसिज्म, वाल्यूम २, पृ० १३७।
२८. शान्तिस्वरूप गुप्त, पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, दिल्ली १९६७, पृ० १३० पर उद्धृत।
२९. आचार्य दंडी एवं संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास दर्शन, डॉ० जयशंकर त्रिपाठी, इलाहाबाद, १९६८, पृ० ३३७।
३०. आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा, कानपुर, १९६५, पृ० १५९ (डॉ० रामकुमार सिंह)।
३१ आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, व्या० विश्वेश्वर, प्रथम सं०, १९५२, पृ० ४८।
३२. भरतमुनि, नाट्यशास्त्रम्, १६। ११८।
३३. वी० राघवन, भोजाज श्रृंगार प्रकाश, मद्रास, १९६३, पृ० ३३९।
३४. अरस्तू, पोयटिक्स, सं० टी० ए० माक्सन, १९४९, पृ० ५०।
३५. महावीरप्रसाद द्विवेदी, रसज्ञ रंजन, पृ० १७।
३६. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, वाराणसी सं० २०१७, पृ० ७१६।
३७. डॉ राजकुमार पाण्डेय, रामचरितमानस : काव्यशास्त्रीय अनुशीलन, कानपुर, १९६३, पृ० ४९३।
३८. ए० जी० ग्रियर्सन, लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इंडिया, अध्याय ६, पृ० १३।
३९. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, गोसाईं तुलसीदास, वाराणसी, सं० २०२२, पृ० १९।
४०. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, गोसाईं तुलसीदास, वाराणसी, सं० २०२२; पृ० ७९।
४१. मानस की रूसी भूमिका, अनु० डॉ० केसरी नारायण शुक्ल, लखनऊ, १९५५, पृ० १५।
४२. डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव, तुलसीदास की भाषा, लखनऊ, सं० २०१४, पृ० २८४।
४३. रामधारी सिंह दिनकर, मिट्टी की ओर, पटना, १९४६, पृ० ११७-१८।
४४. रेनेवेलक, एप्रिशिएसंस, ए हिस्ट्री ऑव मॉडर्न क्रिटिसिज्म, पृ० २९।
४५. जी० डी० मोपार्सो, ऑन फ्लावर्ट्स मेनर, एप्रिसियेसन्स, वाटरपेटर, पृ० २९।
४६ डॉ० हरिहरनाथ हुक्कू, श्री रामचरितमानस की काव्यकला, आगरा, १९७३, पृ० २००।
४७ विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, गोसाईं तुलसीदास, काशी, सं० २०२२, पृ० ८०।
४८. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग-३, सं० २०१७, पृ० ५७६।
४९. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग-२, सं० २०१७, पृ० ३४४।
५० सुमित्रानन्दन पन्त, 'पल्लव', पृ० २९।
५१. डॉ० माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास, प्रयाग, १९६५, पृ० ३७८।
५२. कवितावली, टी० लाला भगवानदीन एवं विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रयाग, सं० २०१३, अंतदर्शन, पृ० ११।

मानस के छन्द और उसकी काव्य भाषा

भाषा और छंद का घनिष्ठ संबंध है। ऋग्वेद में इसका प्रथम विवरण मिलता है। वेद के छह अंग माने गए—व्याकरण, कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, छन्द और शिक्षा। छन्द वेद के चरण माने गए।[1] मानव का जीवन अपने उत्कृष्ट क्षणों में संगीतमय हो जाता है।[2] ये ही उत्कृष्ट क्षण कविता के प्रवाह-क्षण हैं। छन्दों का मूल आधार लय है, जिससे भाषा में सांगीतिकता आती है। "छंद वह लयात्मक, नियमित तथा अर्थपूर्ण वाणी है, जिसमें आबद्ध होकर कोई वाक्य या वाक्यांश पद्य का रूप धारण करता है।[3] कवि की वाणी छंद का आधार पाकर ही शाश्वतता प्राप्त करती है। छंद के कारण ही आज वैदिक वाङ्मय बाल्मीकि रामायण तथा अन्य ग्रंथ सुरक्षित हैं।[4] प्राचीन काल से लेकर आज तक भाषा ने छांदिक रूप नहीं त्यागा है। संस्कृत की रचनाओं में छंद का नियम-राहित्य देखने को मिलता है, परन्तु वह छंद भी छंद ही होता था, जिसमें लय, स्वर का एक सुव्यवस्थित क्रम रहता था। अनेक भारतीय आचार्यों ने भी छंद को मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। प्राचीन काल के ऋषियों, महर्षियों ने जितने ग्रंथ लिखे प्रायः सभी छंदोबद्ध हैं। वेद, पुराण, स्मृति आदि सब छन्दोबद्ध हैं। छांदिक ढांचे में रमणीयता अधिक होती है जिसके कारण विषय को कंठस्थ रखने में लोगों को सुविधा होती थी। सहस्त्रों वर्षों तक वेद स्मृति कहलाए, क्योंकि ऋषियों ने इन्हें कंठस्थ कर लिया था। यदि उनमें छांदिक चारुता, सहजता नहीं होती तो वेद कभी भी स्मृतिपटल पर इतने वर्षों तक जीवित नहीं रह सकता था।

"छंद-स्पंदन समस्त सृष्टि में व्याप्त है। कला ही नहीं, जीवन की प्रत्येक शिरा में यह स्पंदन नियम से चल रहा है। सूर्य, चंद्र, ग्रहमंडल और विश्व की प्रगति में एक लय है जो समय के ताल पर यति लेती हुई अपना काम कर रही है।—समस्त कलाएं इसी महान सुर-सामंजस्य से मानवता के मिलने का प्रयास है।"[5]

भारतीय काव्याशास्त्र में पिंगल नामक ऋषि ने सर्वप्रथम व्यवस्थित छंदशास्त्र की रचना की। 'छंद' शब्द 'छद्' धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है—प्रसन्न करना, फुसलाना, आच्छादन करना, बांधना। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छंद को बंधी हुई लय के भिन्न-भिन्न ढांचों (पैटर्नस्) का योग माना है।[6] काव्य में छंद की महिमा के अनेक कारण हैं—

१. काव्य और संगीत दोनों श्रव्यकला हैं। इस नाते काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध है और इस संबंध को दृढ़ करने के लिए कविता में छंद की आवश्यकता है।

२. मानवीय जीवन तथा प्रकृति में व्यापकता एवं सुर-साम्य है।
३. कविता और संगीत का संबंध बहुत पुराना है, क्योंकि सृष्टि के आरंभ से मनुष्य के भाव संगीतमयी भाषा में व्यक्त हुए हैं, जो अधिकांश में गंभीर और मार्मिक हैं।
४. छंद-निःसृत कमनीयता एवं आनंद से मनोवेगों की अभिव्यक्ति में तीव्रता आती है।

लय ही मूल आधार है और लय का अलीली रूप छंद में प्रकट होता है।[७] छंदगत प्रत्येक शब्द मधुर, मसृण तथा मृदुल भावनाओं के वाहक बन जाते हैं।[८]

पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों में अरस्तू के अनुसार छंद काव्य का अनिवार्य माध्यम नहीं है। सिडनी, रोनसर्ड, शैली, होपकिन्स आदि ने छंद का विरोध किया। सिडनी ने कहा कि छंद काव्य का अलंकारमात्र है, मूलतत्व नहीं।[९] ड्राइडन, जॉनसन, कार्लायल, स्टुअर्ट मिल आदि ने छंद की आवश्यकता को स्वीकार किया है। अरस्तू के शिष्य स्कैलिजर ने छंद का समर्थन किया। दांते और ह्वटले ने इसे आवश्यक अंग माना। डॉ० जॉनसन के अनुसार कविता छंदोबद्ध रचना का नाम है। कार्लाइल के भी अनुसार कविता छंदोबद्ध एवं संगीतमय होनी चाहिए।[१०] स्टुअर्ट मिल का कहना है कि जब से मानव मानव है, तभी से वह गहन और स्थाई भाव लययुक्त भाषा में ही अभिव्यक्त होते आए हैं—भाव जितना ही गहन होता है, लय उतनी ही विशिष्ट और सुनिश्चित हो जाती है।[११] जा० एच० लेविस ने भी छंद को स्वीकारा है। डॉ० जॉनसन काव्यगत सौंदर्य का आधार भाषागत सौंदय तथा छंद-माधुर्य को मानते थे। छंदों की सांगीतिकता एवं नियमितता से काव्य-सौंदर्य की निर्मिति होती है।[१२] वर्डस वर्थ छंद को अनिवार्य नहीं मानते परन्तु एक आवश्यक अंग जरूर मानते हैं। लय के कारण छंद में सांगीतिक लालित्य आ जाता है, जो गद्य में संभव नहीं है। गद्य और पद्य दोनों दो विधाएं हैं। दोनों में काव्य का सौंदर्य हो सकता है। दोनों के आनंद प्रकार में अंतर है, इसे ह्वटले ने भी माना है। लेविस ने कहा है कि 'गद्य रागात्मक और काव्यात्मक हो सकता है, पर काव्य नहीं।[१३] दिनकर ने कहा है कि 'गद्य की अपेक्षा छंदोबद्ध वाणी रागात्मक आनंद को उत्तेजित करने में अधिक समर्थ है। बात भी ध्यान देने योग्य है कि तमसा के पुलिन पर जो प्रथम काव्य-धारा फूटी थी, वह गद्य के रूप में नहीं थी। जिस दिन आदिकवि के मुख से श्लोक निकला था, उसी दिन इस बात का प्रमाण मिल गया था कि जब मनुष्य का हृदय किसी असाधारण आवेश में बाहर निकलना चाहता है, तब उसकी भावना गेय हो उठती है। मेरे जानते, छंद काव्य-कला का सहायक नहीं, बल्कि उसका स्वाभाविक मार्ग है।[१४]

कॉलरिज ने छंद और कविता को अविभाज्य मानते हुए छंद को अनिवार्य बतलाया और कहा है कि छंद अनुभूतियों और ध्यान की संवेदनशीलता तथा अभिव्यक्ति प्रवणता की वृद्धि करता है। इस प्रकार की मार्मिक अनुभूति और भाव-प्रवणता का निर्माण आश्चर्य और नवीनता की बार-बार अभिव्यक्ति के द्वारा होता है। कुतूहल आता है, एक की समाप्ति पर दूसरे का जन्म होता है। यद्यपि भावनाए

एक-एक रूप से पूर्ण ग्राह्य नहीं होतीं, तथापि पूर्णरूप से प्रभावोत्पादक होती हैं। जिस प्रकार से भेषज द्वारा निर्मित परिस्थिति लोगों के बिना जाने ही उन्हें प्रभावित करती है, अथवा जिस प्रकार से मदिरापान किए हुए लोग यह बिना जाने ही विचार-विमर्श करते हैं कि नशे के प्रभाव में बोल रहे हैं, उसी प्रकार काव्य और छंदों का प्रभाव अचेतन रूप से ही श्रोता और पाठक को प्रभावित करता है।[१५] छंद के प्रयोग से भाषा की प्रेषणीयता में अभिवृद्धि हो जाती है, भाषा में व्यापकता के साथ-साथ प्रभविष्णुता आ जाती है। भाषिक सौंदर्य उस संपूर्ण कविता को अपने में समेट लेता है। इसलिए छन्द, काव्य के लिए एक आवश्यक तत्व माना जाना चाहिए। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार 'साहित्य' और 'काव्य' में अंतर है। साहित्य शब्द ललित या रस के साहित्य के लिए रूढ़ हो गया है और काव्य अतिशय रागात्मकता के लिए। उन्होंने साहित्य के 'काव्य' नामक रूप के लिए छंद को अनिवार्य माध्यम माना है और कहा कि इसके अभाव में काव्य का रूप अपूर्ण रह जाता है।[१६] राजशेखर ने छंद को सरस्वती का रोम बतलाया है।[१७] सुमित्रानंदन पंत का कहना है कि छंद का राग भाषा के राग पर निर्भर करता है और जहां दोनों में मैत्री नहीं रहती, वहां छंद अपना स्वर खो बैठता है।[१८] डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' ने भाषा की भांति छंद को कवि के अन्तर्जगत् की अभिव्यक्ति माना है।[१९] भाषा का बोधात्मक पक्ष हमेशा लययुक्त रहता है, अत: छंद एक स्वाभाविक प्रवृत्ति का कृत्रिम बंधन है।[२०] लय की इसी विशिष्टता को ध्यान में रखते हुए मैथ्यू आर्नल्ड ने लिखा है कि नियमितता, निश्चितता और वेग की ऊंचाई तक पहुंची हुई लय और लय-खंड उसकी (कविता की) पूर्णता का एक अंग है।[२१]

पाश्चात्य आधुनिक आलोचक आई० ए० रिचर्डस ने काव्य-रचना के लिए छंद को अनिवार्य साधन माना है। उनके अनुसार छंद लय का ही विशिष्ट रूप है जो आवृत्ति आकांक्षा पर निर्भर करता है लय और छंद से संबद्ध सभी प्रभाव प्रत्याशा से उत्पन्न होते हैं, चाहे इसकी अनुरूपता फलित हो या प्रतिरूपता। यह प्रत्याशा एक अचेतन प्रक्रिया है।[२२] रिचर्डस का कहना है कि समय संबंधी लयात्मक अनुक्रम का जटिल एवं विशिष्ट रूप छंद है। छंद वह साधन है जिसके द्वारा शब्द एक-दूसरे को अधिकतम सीमा तक प्रभावित करने वाले बनाए जा सकते हैं।[२३] उन्होंने मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण करते हुए कहा है कि छंद का रूप-विधान हमारे शरीर में व्याप्त एक चक्रीय उत्तेजना है, मन के स्रोतों से ढलता हुआ उत्तेजनाओं ज्वार है।[२४] इसलिए उन्होंने छद को सर्वाधिक कठिन और सर्वाधिक सूक्ष्म कथनों के लिए करीब-करीब अनिवार्य साधन सा माना है—'मीटर फार दि मोस्ट डिफिकल्ट ऐण्ड मोस्ट डेलिकेट अटरेंसेज इन दि ऑल बट इनएविटेबल मिन्स।[२५] छंद से सम्मोहक प्रभाव उत्पन्न होता है।[२६] छंद से कविता में ऐसे प्रभाव आते हैं जिसकी पूर्ति किसी भी दूसरे साधन से असंभव है।[२७] कविवर पंत के अनुसार "कविता तथा छंद के बीच बड़ा घनिष्ठ संबंध है। कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छंद हृत्कंपन। कविता का स्वभाव ही छंद में लयमान होना है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बंधन से धारा की गति को सुरक्षित रखते—

जिनके बिना वह अपनी ही बंधनहीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है—उसी प्रकार छंद भी अपने नियंत्रण से राग को स्पंदन-कंपन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल, कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं। वाणी की अनियंत्रित ांसें नियंत्रित हो जातीं, ताल-मुक्त हो जातीं, उनमें परिपूर्णता आ जाती है। छंद-बद्ध शब्द, चुम्बक के पार्श्ववर्ती लोहचूर्ण की तरह, अपने चारों ओर एक आकर्षण-क्षेत्र तैयार कर लेते, उसमें एक प्रकार का सामंजस्य, एक रूप, एक विन्यास आ जाता, उनमें राग की विद्युत् धारा बहने लगती, उनके स्पर्श में एक प्रभाव तथा शक्ति पैदा हो जाती है।"[२८]

मुक्त छंद के समर्थकों ने क्रांति की आवाज में छंद का विरोध किया। परन्तु उनका विरोध नियम-गत बंधनों से ही है, लय से नहीं। निराला ने तो स्वयं लिखा कि "मुक्त छंद का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छंद सिद्ध करता है और उसका नियम-राहित्य उसकी मुक्ति।"[२९]

तात्पर्य यह कि निराला ने मात्रा, अक्षर, तुक आदि परंपरागत बंधनों का विरोध किया, छंद का नहीं, 'उसके प्रवाह का नहीं, जो उसे छंद का रूप प्रदान करता है। दिनकर ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि कविता के पार्श्व में काव्य कहकर हम जो गद्य को बिठा रहे हैं, उसका भी न्यूनाधिक श्रेय छंद को ही है।[३०] गिरिजाकुमार माथुर का कथन भी इससे मिलता-जुलता है। उनका कहना है कि "छंद से मुक्ति का अर्थ लय से मुक्ति नहीं। कविता के अर्थ के आंतरिक नाद अर्थात् लय से मुक्त हो कर कविता नहीं रह जाती, वह गद्य भी नहीं रहती, अपद्य (नान वर्स) हो जाती है। अर्थ-सौंदर्य और नाद-सौंदर्य अविभाज्य हैं। विशेषीकृत शिल्प के रूप में नाद तत्व अर्थ का ही कायिक आयाम है। वही कविता में लय का आधार है।"[३१] श्यामसुन्दर दास को सिद्धान्त रूप में छदों की अनिवार्यता का खंडन करते हुए भी विश्व के अधिकांश साहित्य की छंदोबद्धता तो स्वीकार करनी ही पड़ी।[३२] डॉ० गुलाबराय ने छंद को भावमयी भाषा की स्वाभाविक गति का बाह्य आकार माना है, जिससे भाषा भावानुकूल बनती है।[३३]

प्राचीनकाल से आज तक प्राय: सब ने भाषा और छंद के सम्बन्ध को स्वीकार किया है। अत: 'छंद एक ऐसा अस्त्र है जिससे सभी लड़ाइयां लड़ी जा सकती हैं, यदि कवि के हाथों में अस्त्र-संचालन की क्षमता हो।"[३४] वस्तुत: 'छंदशास्त्र काव्य रचना की सुगमता के लिए है, उस पर कोई प्रतिबंध डालने के लिए नहीं।" और कवियों के लिए यह प्राय: अनिवार्य साधन-सा है। क्योंकि 'छंद ही काव्य का संगीत है। संगीत में जो संयम ताल से आता है, वही संयम कविता में छंद से आता है "कविता के रूप में प्रकट होने वाला प्रत्येक शब्द इस विश्वव्यापी संगीत की झनकार है।"[३५]

तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के प्रथम वाक्य में 'वर्णानामर्थ संघानांरसंधानां' के पश्चात् 'छन्दसां' लिखा है, इससे छंद के विषय में उनकी निश्चित मान्यता का संकेत मिलता है। प्रतीत होता है कि छंद को वे काव्य के स्वाभाविक प्रवाह का माध्यम मानते थे। इस मान्यता का विकसित रूप आगे देखते को मिलता है, जहां वे काव्य के अन्य आवश्यक तत्वों से छंद को मुक्तकंठ से स्वीकार करते हैं—

आखर अर्थ अलंकृत नाना। छंद प्रबंध अनेक विधाना।।
भावभेद रस भेद अपारा। कवित दोषगुन विविध प्रकारा ।।[३६]

कवि की शब्दावली के अनुसार 'अर्थ' को रूपायित करने वाला तत्व 'आखर' है, अतः उसका प्रथम नाम है और 'आखिरी समूह' को सुनियोजित प्रवाह में लाने वाला छंद ही है। इसलिए भाव, भेद, रस कविता के दोष-गुण आदि छंद पर आधारित हैं। यहां 'छंद' शब्द पिंगलशास्त्र की संकुचित परिभाषा से अति व्यापक अर्थ प्रकट करता है।

उपर्युक्त कथन से छंद के संबंध में तुलसीदास की यह मान्यता बिलकुल स्पष्ट हो गई कि काव्य में रसादिकों के परिपाक के लिए छंद अत्यावश्क है।

'मनस-रूपक' में छंद को रामचरित-सर के कमनीय कमल की संज्ञा दी है; जिस प्रकार तालाब के लिए कमल मात्र एक शोचनीय दृश्य नहीं, बल्कि उसकी सौंदर्याभिव्यक्ति के आवश्यक अंग हैं, जिसके अभाव में उसकी सुषमा नहीं, उसी प्रकार तुलसी के मत में छंद भी है—

छंद सोरठा संदर दोहा—सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा।[३७]

छंद के संबंध में अपनी धारणा को अयोध्या से बारात चलने के दृश्य के वर्णन करने में और अधिक पल्लवित किया है—

बाहन अपर अनेक बिधाना। सिबिका सुभग सुरवासन जाना।
तिन्ह चढ़ि चले विप्रवर बृंदा। जनु तनु धरे सकल श्रुति छंदा ।।[३८]

बारात के आगे सुन्दर पालकी और सुखासन पर सवार होकर वेदज्ञ ब्राह्मण ऐसे चले मानो सब वेद शरीर धारण कर छंद हो गए हों। यहां श्रुति-परंपरा से श्रुति कहलाने वाले वेद की ओर संकेत है। पहले तो वेद ध्वनि रूप में ऋषियों के कलकंठ में निवसित थे, बाद में उन्हें छंद-रूपी शरीर मिला।

स्पष्ट है कि भाव, रस तथा भाषा से छंद का संबंध नैसर्गिक है, स्वाभाविक-है। "कविता को छंदों से मुक्त करने का लाख छल-छंद किया जाए, वह न छंदों से मुक्त हुई है और न हो सकती है।"[३९]

रामचरितमानस में वर्णिक एवं मात्रिक—कुल इक्कीस प्रकार के छंदों का प्रयोग किया गया है— अनुष्टुप, शार्दूलविक्रीड़ित, वसंततिलका, वैशस्थ, इन्द्रवज्रा, भुजंग-प्रयात, प्रमाणिका, मालिनी वसुन्धरा, रथोद्धता, त्रिभंगी, पद्मावती, तोमर, तोटक, चौबोला, चोपैया, हरिगीतिका, दोहा, दोहरा, सोरठा और चौपाई।

तुलसीदास परम भक्त महाकवि थे। उनके जितने भी छंद हैं, सार्थक एवं विषयानुकूल। अनेकानेक प्रकार की उमड़ती भावनाएं कुछ विशेष मार्ग, विशेष रूप में निःसृत होती हैं। इसलिए महाकाव्य में अनेक प्रकार के छंदों के प्रयोग देखने को मिलते हैं। अरस्तू ने लिखा है कि "जहां तक ऐसी काव्यानुभूति का प्रश्न है जिसका रूप समाख्यानात्मक हो और जिसमें एक छंद का प्रयोग किया गया हो।"[४०] अरस्तू के इस कथन से स्पष्ट है कि महाकाव्य में विषयवस्तु उत्तम गतिमयता में एक ही प्रकार के छंद का विशेष महत्व है। इससे काव्य-प्रवाह की सुरक्षा होती है। अनेक छंदों के प्रयोग

उस प्रवाह को खंडित कर देते हैं। अरस्तू महाकाव्य में विविध छंद-प्रयोग को अनुपयुक्त समझते हैं। परन्तु भारतीय काव्यशास्त्री दंडी और विश्वनाथ ने भावानुकूल-अनेक छंदों की शुभाशंसा की है। महाकाव्य में जीवन के विभिन्न भाव-विचारों की अभिव्यक्ति के लिए छंद अनुकूल मार्ग प्रदान करता है, छंद पांडित्य-प्रदर्शनार्थ नहीं है।[४१] सचमुच में छंद-वैविध्य अभिव्यक्ति-वैविध्य के संकेतक हैं। इसीलिए काव्य में छंद प्रायः विषयानुकूल रहते हैं। विषयानुकूल छांदिक परिवेश काव्य में अत्यावश्यक है।" जो कवि हैं चाहे जिस छंद का प्रयोग करें उनका पद्य अच्छा ही होता है; परन्तु सामान्य कवियों को विषय के अनुकूल छंद-योजना करनी चाहिए। — प्राचीन संस्कृत कवि इसका पूरा-पूरा विचार रखते थे। उन्होंने ऋतुओं का वर्णन प्रायः उपजाति छंद में किया है, नीति का वंशस्थ में किया है, और स्तुति, शौर्य आदि का शार्दूलविक्रीड़ित और शिखरिणी में किया है।"[४२] अतः रस और विषय के अनुकूल छंद-योजना होनी चाहिए—

"काव्ये रसानुसारेण वर्णनागुणेन च ।
कुर्वीत् सर्ववृततानां विनियोगं विभागवित् ।।"[४३]

भावनाएं विषयानुकूल विशिष्ट रूप (फार्म) में स्वयं परिवर्तित हो जाती हैं। "भावनाएं अपनी ऐंठन के अनुरूप यति तथा प्रवाह खोजती हैं। उमड़ते हुए पुष्ट एवं सुस्पष्ट भाव पुष्ट एवं सु स्पष्ट छंदों में व्यक्त होते हैं तथा रुक-रुक कर या सिसक-सिसक कर चलने वाले मनोवेग अभिव्यक्ति के क्रम में अधिक यतियों की अपेक्षा करते हैं। गजमान विचारों को सुष्ठु अभिव्यक्ति प्रवाहपूर्ण तथा बलशाली छंदों में एवं करुणा की अभिव्यक्ति पग-पग पर रुकते हुए मंदगामी छंदों में सुन्दर होती है। छंदों के भीतर से कवि की मनोदशा भी व्यंजित होती है।"[४४]

अंग्रेजी छंदशास्त्रियों में भी विषयानुकूल छंद योजना महत्वपूर्ण है—"इच ऑव आवर फाइव प्रिन्सिपल मेजर्स हैज़ इट्स ओन डिसटिंक्टिव क्वालिटी ऐण्ड देयरफोर इट्स स्पेशल फिटनेस फॉर परटीकुलर परपसेज···वी फाइण्ड क्रिटिक्स डिसक्राइबिग दि आयम्बिक मेजर्स ऐज़ स्मूथ, डिगनीफायड एण्ड स्टेटली, एण्ड दि ट्रोचेक ऐज़ इनरजेटिक ऐण्ड एवरप्ट, दि अनापेस्टिक ऐज़ स्विफ्ट ऐण्ड फोर्सिवल दि डैक्टिलिक ऐज़ एयरी एण्ड ग्रेसफुल ऐण्ड दि ऐम्फिब्रेचिक ऐज़ स्विंगिग एण्ड फ्री।[४५] अर्थात् अंगरेजी के पांच पर्वों में प्रत्येक की अपनी विशेषता है और इसलिए वे खास उद्देश्य के उपयुक्त हैं···आयम्बिक मसृण और गरिमामय होता है, ट्रोचेक फुर्तीला आर अक्खड़। अनापस्टिक तीव्र और वेगवान; डैक्टिलिक वायवीय और सुन्दर तथा एम्फिब्रेचिक दोलयामान और स्वच्छंद होते हैं।

रामचरितमानस में प्रयुक्त छंद विषय, भाव तथा रस के अनुकूल हैं। "भाषा छंद को पाकर और भी खिल उठती है तो चौपाई, छंद, सोरठा आदि पुरइन और रंग-रंग के जलज हैं। इसी से रस की निष्पत्ति के लिए भाषा को छंदमय बनाना तुलसी को इष्ट है।"[४६]

१. अनुष्टुप छंद

यह वर्णिक छंद है। इसके चारों चरणों में पांचवा वर्ण लघु और छठा गुरु होता है। सम (दूसरा-चौथा) चरणों में सातवां वर्ण लघु तथा विषम चरणों के सप्तम वर्ग गुरु होते हैं। "अनुष्टुप श्लोक गण बंधन में बंधा नहीं है। संस्कृत वर्णवृत्तों के बीच ऐसा यह अकेला छंद है, जो व्यापक रूप से बाल्मीकि की रामायण, भगवद्गीता आदि समस्त संस्कृत-काव्य-वाङ्मय से प्रारंभ करके तुलसी के 'मानस' तक में लोकप्रिय रहा है।"[४]

तुलसी ने रामचरितमानस में सात अनुष्टुप छंदों का प्रयोग किया है, प्रथम सोपान की देव-वंदना में पांच, षष्ठ सोपान में एक और सप्तम सोपान में एक। यथा :—

१. वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंद सामपि ।
मंगलानां च कत्तारौ वंदे वाणीविनायकौ ॥ १, प्र०सो०

२. भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वासरुपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वांतस्थमीश्वंर ॥ २, प्र०सो०

३. वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणं ।
यमाश्रितो हि वक्रोपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते ॥ ३, प्र०सो०

४. सीतारामगुण ग्रामपुण्यारयविपारिणौ ।
वंदे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ ॥ ४, प्र०सो०

५. उद्भयवस्थिति संहारकारिणीं क्लेश हारिणीं ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोहं रामवल्लभां ॥ ५, ष०सो०

६. यो ददाति सतां शंभुः कैवल्यमापि दुर्लभं ।
खलानां दंडकृद्योसौ शंकरः शं तनोतु मां ॥ ६, प्र०सो०

७. रूद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये ।
ये पठति नरा भक्त्या तेषां शंभुः प्रसीदति ॥ ७॥ १०८ श्लोक।

भाषा में तथ्यात्मकता, भावात्मकता के साथ दार्शनिक शब्द–शैली, रूपक का योग, संयुक्त वाक्यों का प्रयोग किया गया है। शब्द साधारणतः छोटे हैं, समास छोटे हैं, पर एकाध स्थल पर बड़े समास का प्रयोग किया गया है। भाषा सार्थक विशेषणों से युक्त है। वाच्यार्थ के लक्ष्यार्थ सबका प्रयोग है। भाषा बिंबात्मक है, शब्द विशुद्ध संस्कृत के हैं, साथ ही जटिल और दुरूह नहीं। भाषा का बोधात्मक पक्ष प्रबल है। षष्ठ सोपान में प्रयुक्त अनुष्टुप में कहीं-कहीं ओजगुणमयी भाषा है, पर शब्द वहां भी सरल हैं।

भाषा की परिवर्तनशील प्रकृति के अनुसार किसी कालविशेष में रचित छंद दूसरे काल की भाषा में अच्छे नहीं लगते हैं। इसलिए महादेवी वर्मा ने अनुष्टुप छंद को हिन्दी भाषा के लिए अनुपयुक्त समझा।[८] तुलसीदास भी भाषा की प्रकृति से पूर्णतः परिचित थे। इसलिए उन्होंने छंद को संस्कृत में ही रखा, हिन्दी में नहीं।

२. शार्दूलविक्रीड़ित छंद

इसमें मगण, सगण, जगण, सगण, तगण और एक गुरु के योग से यह वृत्त बनता है और १२,७ वर्णों पर यति रहती है। वर्णिक छंदो में समवृत्त का यह एक भेद है।

रामचरितमानस के विभिन्न सोपानों में प्रयुक्त शार्दूलविक्रीड़ित की संख्या दस है। प्रथम सोपान में छठा श्लोक, द्वितीय सोपान में पहला श्लोक, तृतीय सोपान में दोनों श्लोक, चतुर्थ सोपान में दोनों श्लोक, पंचम सोपान में पहला श्लोक, षष्ठ सोपान में दूसरा श्लोक, और सप्तम सोपान के अंत के दोनों श्लोक शार्दूलविक्रीडित हैं। प्रत्येक सोपान में इसका प्रयोग हुआ है। यह छंद शौर्यपरक है। जैसे सिंह अद्वितीय वीरता के कारण वनराज कहा जाता है, वैसे ही राम भी रघुराज हैं, नरराज हैं। तुलसी ने अपने राम में शक्ति, शील और सौन्दर्य —तीनों में शक्ति को प्रथम सेतु माना है, जिस पर शील और सौन्दर्य की शोभा निर्भर करती है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी इसे स्वीकार किया है कि शौर्यादि के वर्णन के लिए यह छंद बहुत उपयुक्त है।[४९] तुलसी ने प्रत्येक सोपान में राम और शिव के शौर्य, तेज, कीर्त्ति आदि के प्रदर्शन हेतु इस छंद का प्रयोग किया है। यथा—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवसुरा ।
यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथा हेर्भमः ।
यत्पादलवमेकमेव हि भवाम्भो धोस्तितीर्षावतां ।
वन्देऽहं तमशेष कारण परं रामाख्याकीशं हरिम् ।।[५०] आदि

भाषायी दृष्टि कोण

(क) प्रत्येक में संयुक्त वाक्य का सटीक प्रयोग हुआ है।

(ख) संधि और समासों से वाक्य–खंड बड़ा हो गया है। साथ ही कहीं-कहीं लघु भी है, लघुवाक्य-खंड विशेषतः शिव-स्तुति में मिलते हैं। रूपक भी प्रयुक्त हैं।

(ग) भक्ति का आवेग सब में वर्तमान है।

(घ) भाषा का बिंबात्मक प्रयोग सब में हुआ है, जैसे–रज्जौ, गंगा नदी, बाल चंद्रमा, व्याल आदि।

(ङ) प्रायः सब में **ओजगुणपूर्ण** रसात्मक वर्णों का प्रयोग है।

इन छंदों की भाषा **ओजगुण** वर्णों के प्रयोग से ही छंदों की विषयवस्तु का सारांश, उद्देश्य आदि सब कुछ स्पष्ट हो रहा है। शार्दूल (सिंह) हमेशा ओजत्व से प्रदीप्त रहता, इसका स्पष्टीकरण इनकी भाषा से ही हो जाता। इन छंदों की भाषा के विवेचन के क्रम में तुलसी की दो प्रवृत्तियां दिखाई पड़ती हैं—(१) राम की स्तुति में जहां इस छंद की भाषा है, वहां वाक्य,संधि, समास आदि अपेक्षाकृत अधिक लंबे होते हैं। (२) जहां शिव-स्तुति है, वहां वाक्य-खंड छोटे होते हैं, शब्द लघु और समास-संधि में कम दिखाई पड़ते हैं। शिव-स्तुति की भाषा, बिम्बात्मक, ओजगुणात्मक अधिक है। छंद का रस से निकट का संबंध है। प्रत्येक सोपान में प्रयुक्त इन छंदों का रस-दृष्टि से विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस छंद में शान्त रस का ही अधिक वर्णन किया है। शिव-स्तुति की भाषा भले ही वीर रसात्मक है, परन्तु वह

कवि की स्तुति है, अंतः करण में तो भक्ति-भावना है, लेकिन भाषा-शैली से राम और शिव के ऐश्वर्य तथा शौर्यादि की दीप्ति कराई गई है। इससे प्रतीत होता है कि ऐश्वर्य एवं ओजस्विता के वर्णन के लिए कवि की दृष्टि में यह छन्द उपयुक्त समर्थ ठहरा और इसकी भाषा भी अत्यंत विषय अनुकूल है।

३. वसंततिलका

भरत के नाट्यशास्त्र[५१] और और पिंगल-सूत्र[५२] के अनुसार इस छंद में तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु होते हैं। इसमें लय का महत्व रहता है। "लय की तरंग एक निश्चित नियम के अनुसार एक रूप होकर चलती है और ध्वनि के पारस्परिक सामंजस्य के कारण जो लय निः सृत होती है, उसका नाम वसंततिलका रखा गया है।"[५३] रामचरितमानस में वसंततिलका के दो छंद मिलते हैं--प्रथम सोपान का सातवां श्लोक और पंचम सोपान का दूसरा श्लोक, यथा --

१. नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वाचिदत्यतोऽपि।
स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषानिबन्धमति मंजुल मातनोति ॥[५४]

२. नान्या स्पृहा रघुपते हृदयऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानलिखान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामदि दोष रहितं कुरु मानसं च ॥ [५५]

भाषा की दृष्टि से शार्दूलविक्रीड़ित और वसंततिलका की विवेचना करने से दोनों में अंतर प्रतीत होता है। वसंततिलका की भाषा में तथ्यात्मकता अधिक है। प्रार्थना के कारण दोनों में शांत रस है। इसके शब्द शार्दूलविक्रीड़ित की तुलना में छोटे हैं। रूपक, उपमा, बिंब, ओज आदि शार्दूलविक्रीड़ित में है, परंतु वसंततिलका में ये तत्व नहीं हैं या यदि हैं तो स्वल्प मात्रा में। इसमें इतिवृत्त की मात्रा अधिक है। जैसे शांत संत सांसारिक उत्तेजनाओं से रहित होता है, वैसे ही इस छंद की भाषा बिल्कुल सरल, सहज है। भाषा की दृष्टि से भी तुलसी एक सच्चे, मंजे प्रयोक्ता हैं।

४. वंशस्थविल छंद

इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, तगण जगण और रगण आते हैं।

मानस में इसका प्रयोग केवल एक बार हुआ है—द्वितीय सोपान में—

प्रसन्नतां यां न गताभिषेकतस्तथा नमम्ले वनवास दुः खतः।
मुखाम्बुज श्री रघुनंदनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा ॥ [५६]

इसकी भाषा प्रसादगुण पूर्ण है, कठोर, रेफ और द्वित्व वर्णों से रहित। शार्दूलविक्रीड़ित छंद की तरह इसमें लंबे सामासिक शब्दों का प्रयोग है। रूपक भी है। इस भांति भाषा की दृष्टि से यह शार्दूलविक्रीड़ित के समान है। स्वाभाविक अलंकार, अनुप्रास आदि हैं। रस की से दृष्टि शांतरस है।

५. इन्द्रवज्रा

पिंगलसूत्र (६ : १६) और नाट्यशास्त्र (१६ : ३१) के लक्षणानुसार इसमें दो तगण, एक जगण और दो गुरु (SSI , SSI , ISI , SS) रहते हैं। मानस में इन्द्रवज्रा छंद एक ही है— द्वितीय सोपान में। लेकिन मानस में वर्णित इन्द्रवज्रा का चौथा चरण उपेन्द्रवज्रा का है, क्योंकि इसके आदि में जगण (नमामि = ISI) है।

नीलाम्बुजं श्यामल कोमलांग सीतासमारोपितवाम भागम्।
पाणौ महासायक चारूचापं नमामि रामं रघुवंश नाथम् ॥[५७]

इसकी भाषा में लंबे सामासिक शब्दों का प्रयोग है, भाषा रूपकमयी तथा बिंबात्मक है। वाक्य संयुक्त हैं। प्रसाद गुण तथा कोमलावृत्ति है वंशस्थविल और इसकी भाषा में रूपगत भिन्नता नहीं दिखाई पड़ती। प्रार्थना है, अतः शांतरस है।

६. मालिनी

इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः दो नगण, एक मगण और दो यगण होते हैं।

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यं।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपति वरदूतं वातजातं नमामि ॥[५८]

भाषायी दृष्टि से इसमें वाक्य संयुक्त हैं, शब्द अधिक न लंबे हैं और न अधिक छोटे। "दनुजवन—कृशानुं" में रूपक भी है। इसमें परुषावृत्ति है, आद्यंत ओजागुणात्मक वर्ण हैं। अनुष्टुप, शार्दूलविक्रीड़ित, वसंततिलका आदि छंदों की तुलना में एक बात विशेष यह है कि इसकी भाषा आद्यंत ओजमयी है। हनुमान के व्यक्तित्व-निरूपण में जो "कनकभूधराकार सरीरा" है, उनके लिए ओजमयी भाषा उपयुक्त है। यहां पर कवि ने व्यक्तित्व के अनुरूप भाषा का संकेत दिया है। यह छंद मानस में केवल एक बार आया है।

७. स्रग्धरा छंद

इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक मगण, एक रगण, एक भगण, एक नगण और तीन यगण होते हैं।

मानस में षष्ठ और सप्तम सोपान में कुल दो बार यह छंद प्रयुक्त है—

१. रामं कामारि सेव्यं भवभयहरणं कालमत्ते भसिंहं
....
वंदे कंदावदातं सरसिज नयनं देवमुर्वीशरूपमं् ॥[५९]

२. केकीकंठाभनीलं सुखरविलसद्विप्र पादाब्ज चिह्नं
....
नौमीड्य जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ॥[६०]

भाषा छोटे समास, रूपक, बिंब, अनुप्रास, ओज तथा प्रसादगुण से पूर्ण है। सुकुमार कोमल शब्दों के साथ कुछ कठोर वर्णों का भी प्रयोग है।

८. रथोद्धता छंद

इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक रगण, एक नगण, एक रगण और एक गुरु होते हैं।

मानस में रथोद्धता छंद का दो बार प्रयोग हुआ है—

(क) कोसलेन्द्र पदकंज मंजुलौ कोमलवज्ञमहेशवन्दितौ ।
जानकी कर सरोज लालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्ग सङ्गिनौ ।।[६१]

(ख) कुन्द इन्दु दर गौर सुंदरं अम्बिकापतिमभीष्ट सिद्धिदम् ।
कारुणीक कल कञ्जलोचन नौमि शंकर मनंग मोचनम् ।।[६२]

ऊपर की भाषा में लंबे समासों, लंबे वाक्य-खंडों का प्रयोग है, रूपक, अनुप्रास आदि अलंकार हैं तो प्रसाद गुणमय मंजुल प्रवाह । छंद चूंकि संस्कृत भाषा में है, अतः संस्कृत में वर्णित अन्य छंदों की भाषा की तुलना में कोई खास वैषम्य स्पष्ट नहीं होता ।

९. प्रमाणिका छंद

प्रा० पैं० में इसका उल्लेख नहीं है। पिंगल, जयदेव, जयकीर्त्ति ने इसे प्रामाणिक कहा है, स्वयंभू ने इसे नगस्वरूपिणी कहा है। यह अष्टाक्षर अनुष्टुप जाति का छंद है। इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक जगण, एक रगण, एक लघु और एक गुरु होते हैं।

रामचरितमानस के तृतीय सोपान में अत्रि मुनि के द्वारा राम की स्तुति में लगातार बारह छंद हैं, और सप्तम सोपान में एक स्थल पर एक छंद है ;

नमामि भक्त वत्सलं । कृपालु शील कोमलं ।
भाजामि ते पदाम्बुजं । अकामिनां स्वधामदं ।। १
....

पठंति ये स्तवं इदं । नरादरेण ते पदं ।
व्रजंति नात्र शंसयं । त्वदीय भक्ति संयुताः ।। १२[६३]

तथा

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे ।
हरि नरा भजंति तेऽति दुस्तर तरन्ति ते ।।[६४]

इसकी भाषा बड़ी मनमोहक है। छोटे शब्द, छोटे वाक्य, समास की लघुता, लघु स्वरयुत् कोमल वर्णों का संतुलन, तथा भाषा में ऐसा रमणीय प्रवाह है कि पाठक की जिह्वा स्वतः आगे की ओर बढ़ने लगती है। जैसे घोड़े की टाप द्रुतगति से जल्दी-जल्दी पड़ती है उसी तरह भावनाएं एक के बाद एक, शीघ्रातिशीघ्र आती हैं, जिनकी अभिव्यक्ति ऐसी भाषा में अच्छी प्रतीत होती है। विशेषणों का सार्थक प्रयोग, समास-शैली का रम्य-निरूपण हुआ है। जब भाव एक सरल, स्वाभाविक गति में भावातिरेक के कारण स्वतः फूट पड़ता है, तब अपने अन्दर की सारी बातें कह देने की आकुलता दिखलाई पड़ती है। यह विशेषता इस छंद की त्वरागति में देखी जा सकती है। छंद के अंग-प्रत्यंग में सांगीतिकता ठूंस-ठूंस कर मानो भर दी गई है, जिसके कारण भाषा किसी दूसरे को जल्द प्रभावित करती है। लय (रिदम) की कमनीयता से इसकी भाषा में एक अजीब माधुरी भर गई है, जिसका अनुभव अधिक किया जा सकता है। विवरण कम।

१०. भुजंगप्रयात छंद

इसके प्रत्येक चरण में चार यगण होते हैं।

मानस में सप्तम सोपान के विप्रकृत स्तुति में इसके आठ वृत्त आए हैं, उसके बाद कहीं नहीं।

नमामी शमीशान निर्वाण रूपं। विभुं व्यापक ब्रह्म वेद स्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं॥
....

न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभुतुभ्यं।
जरा जन्म दुःखौध तातप्यमानं। प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो॥[65]

इसकी भाषा में संस्कृत की विशुद्ध तत्सम शब्दावली का प्रयोग हुआ है, वाक्य अति लंबे हैं। कोमल और कठोर, दोनों प्रकार के वर्गों का प्रयोग है। जहां शिव की ज्ञान-गरिमा का वर्णन है, वहां शब्द प्रसाद गुण सम्पन्न, कोमल पदावली से युक्त है, और जहां शिव के भयंकर वाह्य रूप का वर्णन है, वहां भाषा में परुषावृत्ति के कारण ओजस्विता आ गई है। यह स्तुति है, इस कारण, सार्थक विशेषणों का भांडार सा हो गया है। छंद में गेयता, लयात्मकता तो भरी है, परन्तु प्रमाणिका छंदों की भांति इसकी लय-गति द्रुतत्वरा नहीं है। पाठक इसे शीघ्रता से पढ़ना चाहे, तो छंद का भाषात्मक रूप उसे शीघ्र आगे बढ़ने नहीं देगा। जैसे भुजंग लंबा होता है, वैसे ही इसकी पद-योजना लंबी है। दीनता-भाव के प्रदर्शन में शब्दों का जो प्रयोग हुआ है, वह सटीक है। भाषायी रूप में कहीं-कहीं मिथकीय अर्थवत्ता तथा रूपक की नक्कासी की गई है। जिस प्रसंग में यह शिव-स्तुति है, सारी घटना को इसकी भाषा भी व्यंजित कर देती है, अब इससे बढ़कर भाषा का क्या काव्यात्मक प्रयोग होगा।

११. तोमर छंद

इसके प्रत्येक चरण में बारह मात्राएं होती हैं, अंत में गुरु-लघु। कबीर की रचना तथा विद्यापति की पदावली में यह छंद नहीं मिलता। सूरदास में इसका मिश्र रूप ही मिलता है। तुलसी के रामचरितमानस में यह छंद तीस स्थलों पर प्रयुक्त है। इसकी कुल संख्या साढ़े बाइस है। तृतीय सोपान में राम और खरदूषण के युद्ध में साढ़े छह छंदों का, षष्ठ सोपान के राम-रावण-युद्ध में आठ छंदों का और इन्द्र द्वारा राम की स्तुति में आठ छंदों का प्रयोग हुआ है।

१. तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु व्याल।
कोपेउ समर श्री राम। चले बिसिख निसित निकाम॥१
....

खग कंक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल।[66]

राम और खरदूषण का युद्ध-वर्णन है। इसमें वीर रस साकार हो उठा है। युद्ध की भयंकर आवाज, अस्त्र-शस्त्रों की टंकार, वीरों के गर्जन, कहीं चिक्कार, कहीं कराह— इन दृश्यों के चित्रण के लिए इसकी भाषा बड़ी उपयुक्त है। टवर्ग, द्वित्व वर्ण, कठोरतम ध्वनियों के संवाहक शब्दों का प्रयोग हुआ है। युद्धात्मक बिंबों का प्रयोग

बड़ा ही स्वाभाविक है। कहीं-कहीं उत्प्रेक्षा अलंकार भी है, अनुप्रास तो नाद में सहायक बनकर आया है। वाक्य छोटे हैं, पर कठोर। 'कटकटहिं' में ध्वनि की अनुकरण-मूलकता विद्यमान है।

२. जब कीन्ह तेहि पाषंड। भय प्रगट जंतु प्रचंड।
बेताल भूत पिशाच। कर धरे धनु नाराच ॥१
....
मारहु धरहु जनि जाइ। कटक टहिं पूंछ उठाइ।
दहुं दिसि लंगूर बिराज। तेहि महय कोसलराज ॥८॥[६७]

पहले की भाषा और इसकी भाषा बिलकुल मिलती-जुलती है। स्थिति और प्रसंग भी वही है। इस छंद में युद्ध में रावण की मायावी चाल का वर्णन किया गया है। रावण की माया से प्रकट विविध जीव-जन्तुओं ने राम की सेनाओं, यहां तक कि लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान आदि को भी बेचैन कर दिया। अर्थात् युद्ध करने के क्रम में ही मायावी विधियों का प्रयोग रावण ने किया। यहां वीर और अद्‌भुत रस का वर्णन है।

३. युद्ध-स्थल में इन्द्र द्वारा राम की स्तुति में भी यह छंद है—
जय राम सोभाधाम। दायक प्रनत विश्राम।
धृत त्रोन बर सरचाप। भुजदंड प्रबल प्रताप ॥१
....
बैदेहि अनुज समेत। मम हृदय करहु निकेत।
मोहि जानिए निज दास। दे भक्ति रमानिवास ॥८॥[६८]

यह भी तोमर है, भाषा पूर्ववत है। स्तुति का वातावरण केवल वीर रसात्मक है; यह छंद वीर रस में नहीं है। इसमें तो राम की स्तुति है, हृदय की कोमल भावनाएं ही तो स्तुति की भाषा में प्रकट होती हैं। मानस भर में प्रायः ऐसा देखा जाता है कि हिन्दी छंदों में राम की स्तुति में हरिगीतिका का छंद प्रयोग अधिक आया है, तोमर का नहीं। तब प्रश्न है कि यहां स्तुतिपरक रचना में तोमर का प्रयोग कवि ने क्यों किया? बात यह है कि राम अभी-अभी तुरंत रावण-विजयी हुए हैं। चारों ओर भयानक से भयानक, वीभत्स दृश्य है। युद्ध में दोनों ओर की मरी सेनाएं समरभूमि में पड़ी है, चतुर्दिक सामरिक रूप है। स्थल को ही ध्यान में रखकर कवि ने यहां तोमर छंद का प्रयोग किया। वैसे रस की दृष्टि से इसे भक्ति रस कह सकते हैं। दूसरी बात यह है कि जिसके डर से देवता थर-थर कांपते थे, आज राम के हाथों मारा गया। इसकी अत्यधिक प्रसन्नता देवताओं को हुई, जो रण-क्षेत्र में ही युद्ध देखते चक्कर लगाते रहते थे। अतुलित बलवीर राम की प्रार्थना की गई है, इसलिए भी तोमर छंद सार्थक है। जहां युद्ध का संकुल वातावरण, उसकी भावोत्पादकता, विह्वलता, वीभत्सता, और इसी प्रकार के अन्याय व्यापारों से हृदय की धुकधुकी बढ़ाने वाला, आंखों को झंपाने वाला युद्ध-वर्णन नितांत आवश्यक था, वहां हमारे कवि ने तोमर छंद का प्रयोग किया है ॥[६९] इस प्रकार एक ही छंद के द्वारा तुलसीदास ने भयानक, वीभत्स?—जैसे परुष रसों की तथा भक्ति-जैसी कोमल भावना की अभिव्यजना सफलतापूर्वक की है ॥[७०]

१२. तोटक छंद

इसके प्रत्येक चरण में चार सगण होते हैं।

रामचरितमानस में तोटक की कुल संख्या ३१ है, जो चार स्थलों पर प्रयुक्त है। षष्ठ सोपान में ब्रह्मा द्वारा राम की स्तुति में एक स्थल पर ११ छंद हैं, सप्तम सोपान में शिव द्वारा राम की स्तुति में १० छंद हैं तथा इसी सोपान में कलयुग के युग-धर्म-वर्णन में ५+५ छंद हैं।

१. जय रामसदा सुख धाम हरे। रघुनायक सायक चाप धरे।
भव बारन दारन सिंह प्रभो। गुन सागर नागर नाथ विभो ।।१

....

खल खंडन मंडन रम्य छमा। पद पंकज सेवित संभु उमा।
नृप नायक दे बरदान मिद। चरनाबुंज प्रेम सदा सुभदं ।।११।।[७१]

छोटे और चुस्त वाक्य, सामासिक शब्दों का प्रायः अभाव, भावों को गहन बनाने के लिए एवं सांगीतिकता लाने के लिए शब्दों के अंत में अनुस्वार लगाकर संस्कृत-रूप लाने की प्रवृत्ति भाषा में दिखाई पड़ती हैं। संस्कृत सर्वनामों का भी प्रयोग किया गया है। उपनागरिका वृत्ति भी है। कहीं-कहीं कठोर वर्णों का भी व्यवहार है। रूपक भी आए हैं। तोमर छदों की भाषा से इसकी भाषा की तुलना करने पर हम पाते हैं कि जहां तोमर में अत्यंत ओजगुण-पूर्ण शब्दों तथा वाक्य-सारणियों का प्रयोग है, वहां तोटक की भाषा में कठोर वर्णों की मात्रा कम है, ओज और प्रसाद दोनों गुण यहां हैं। तोमर में अधिकांश शब्दों को संस्कृत की ध्वनि में डालने की प्रवत्ति नहीं है, परन्तु यहां है। ब्रह्मा जी राम की स्तुति कर रहे हैं, रण-क्षेत्र में रावण अभी तुरत राम के बाणों से मरा है, अतः वीर रस के कुछ अंश तो हैं, इसलिए कुछ ओजगुणात्मक ध्वनियों का प्रयोग हो गया है: विशेषणों का सार्थक प्रयोग दर्शनीय है। भाषा में आंतरिक कथा का भी संकेत दे दिया गया है :

सप्तम सोपान में राम के राज्याभिषेक के पश्चात् शिवजी अयोध्या आकर राम की स्तुति करते हैं—

२. जय राम रमा रमनं समनं : भवताप भयाकुल पाहिजनं।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो : सरनागत मागत पाहि प्रभो ।।१

... ...

गुन सील कृपा परमायतनं : प्रनमामि निरंतरश्री रमनं।
रघुनंद निकंदय द्वन्द्वघनं : महिपाल बिलोकय दीन जनं ।।१०।।[७२]

भाषायी रूप पूर्ववत है, प्रसंग भी स्तुति का है, स्तुत्य एक है, स्तुतिकर्त्ता भिन्न हैं, पूर्व छंद में ब्रह्मा द्वारा राम की स्तुति है, यहां शिव द्वारा राम की स्तुति है।

शिवजी कहते हैं—हे भवतापों का नाश करने वाले, मेरी रक्षा कीजिए। हे दस सिरों और बीस भुजाओं वाले रावण के नाश करने वाले, आपने पृथ्वी के महारोग-समूहों का नाश किया। राक्षस-समूह पतंग रूप थे, आपकी बाण-रूपी अग्नि की तीक्ष्ण ज्वाला में जल मरे। मद, महामोह और महाममता रूप रात्रि के अंधकारों के नाश करने के लिए

आप सूर्य-किरण के समूह हैं। कामदेव रूप किरात ने मनुष्य रूपी मृगों को उनके हृदय में कुभोग रूपी बाण मार कर उसका नाश किया। हे नाथ! उस काम को मार कर विषय रूपी वन में भूले-भटके अनाथों की रक्षा करें। आप संसार रूपी महान् रोग की महान् औषधि हैं और मान के शत्रु हैं। आप गुण, शील और कृपा के परम स्थान हैं। हे रघुनंदन! मेरे द्वन्द्व-समूह को नाश करें।

कलयुग के युग-धर्म-वर्णन में भी यह छंद प्रयुक्त है—

३. बहु दाम संवारहिं धाम जती। विषया हरि लीन्हि न रहि बिरती।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही ॥१

....

कवि वृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दोषक ब्रात न कोपि गुनी।
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै ॥५॥[73]

यहां की भाषा वर्णनात्मक है, अधिकतर तत्सम शब्दों का ढेर है, रूपक, उत्प्रेक्षा, बिंब, विशेषण आदि का प्रयोग नहीं है, क्योंकि इन सब का व्यवहार काव्यात्मक स्थल पर अधिक हो जाता है। अन्य बातें पूर्ववत् हैं।

४. अबलाकच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुःखी ममता बहुधा।
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरी कठोर न कोमलता ॥१

....

दमदान दया नहिं जानपनी। जड़ता पर बंचनाताति धनी।
तनु पोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मो बगरे ॥५॥[74]

कार्य-कारण की असंबद्धता के फलस्वरूप जीवन के हर क्षेत्र में कलह का आगमन हो गया है, क्योंकि साध्य के पाने के हेतु साधन बिल्कुल विपरीत अपनाए गए, परिणाम यह हुआ कि सुख चाहने वाली स्त्रियां प्रायः सब हैं, काम करने वाली कोई-कोई। कर्म से कुछ भी लगाव नहीं, बुद्धि थोड़ी है, कठोर है। मनुष्य रोगों से पीड़ित हैं, सुख-भोग कहीं नहीं। बिना कारण ही अभिमान और दूसरे से विरोध करते हैं। आयु तो दस-पांच वर्षों की थोड़ी ही है, परन्तु गुमान ऐसा है कि कल्पांत में भी नाश नहीं होगा। वासना ने मनुष्यों को ऐसा बेहाल कर दिया कि बहन और बेटी के रिश्ते भी गायब हो जाते हैं। संतोष, विचार, सहनशीलता कुछ भी नहीं। सभी जाति के लोग भिक्षुक बन गए। ईर्ष्या, कटुवचन, छल और लालच। समता कहां? धर्म और आचरण समाप्त, अवगुणों का बोलबाला हो गया।

ये सारे के सारे दृश्य आंतरिक कलह पर निर्भर हैं। कर्तव्य-च्युतता, कर्महीनता का परिणाम शुभ कैसे? इससे प्रतीत होता है कि कवि ने सोच-समझ कर यह छंद प्रयोग किया है।

एक ही तोटक के द्वारा कवि ने स्तुति की कोमल भावनाओं और वर्णनात्मक, घटनात्मक युग-धर्म का चित्रण भी सफलतापूर्वक किया है।

१३. चौपैया छंद

प्रा० पैं० में इसका नाम 'चउपइया' है, जिसमें तीस मात्राएं होती हैं तथा १०,८ और १२ पर यति। इसे ही आजकल चौपैया कहते हैं।

रामचतिमानस मे नौ चोपैया छंदों का चार स्थलों पर प्रयोग हुआ है और ये सब प्रयोग केवल प्रथम सोपान में हैं।

१. जप जोग बिरागा, तप मख भागा, श्रवन सुनइ दससीसा।
आपुन उठि धावइ, रहै न पावइ, धरि धालइ सब खीसा॥
असभ्रष्ट अचारा, भा संसारा, धर्म सुनिअ नहिं काना।
तेहि बहुबिधि त्रासइ, तेस निकासइ, जो कह वेद पुराना॥[७५]

अत्याचारी रावण की आज्ञा से ससैन्य मेघनाद ने जो धर्म और सामाजिक व्यवस्था का निर्मूलन किया, इसी का वर्णन यहां है।

भाषा की दृष्टि से तत्सम शब्दों का अवधी ढांचों में ढला हुआ रूप पाते हैं। न अलंकार है न अन्य कोई विशेषता। इतिवृत्तात्मकता है। मिश्र और संयुक्त वाक्य बिल्कुल गढ़े हुए और संयत हैं। तोटक छंदों की भाषा से उसकी भाषा की तुलना करने पर विदित होता है कि इसके शब्द अधिकतर मसृण अधिक है। कुछ परुष ध्वनियों का भी प्रयोग हुआ है, जैसे—

"आपुनु उठि धावउ,
असभ्रष्ट आचारा, भा संसारा।"

कुल मिलाकर भाषा यहां तत्सम प्रधान है, विदेशी शब्दों का प्रयोग एकदम नहीं है।

२. सुरसुनि गंधर्बा मिलि सर्वा, ये विरंचि के लोका।
संग गोतनधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका॥
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जा करि तैं दासी सो अविनासी हमरेउ तोर सहाई॥[७६]

रावण, मेघनाद आदि राक्षसों की पहली कोपदृष्टि धेनु और द्विज पर ही पड़ती थी वसुन्धरा ने चोपैया (गाय) का वेष धारण किया। इस आधार पर चौपैया छंद का लालित्य बढ़ जाता है।

पृथ्वी की विपत्ति को दूर करने के लिए ब्रह्मा आदि सब देवताओं ने ईश्वर की प्रार्थना और यह प्रार्थना चार चौपैया छंदों में है—

जय जय सुरनायक जनसुखदायक प्रनत पाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधु सुता प्रिय कंता॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानई कोई।
जो सहज कृपाला दीन दयाला करउ अनुग्रह सोई॥१
....

सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा, जा कहुं करेउ नहिं जाना।
जेहि दीन पिआरे वेद पुकारे दुवहु सो श्री भगवाना।
भवबारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुख पुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कुंजा॥४॥[७७]

इस स्तुति का हेतु है—गौ-रूपधारी वसुंधरा की विपत्ति से त्राणार्थ ईस-प्रार्थना। यदि पृथ्वी घर-घर जाकर अपना दुःखभार निवेदित न करती तो देवता सब न ब्रह्मा के पास जाते और न सब की स्तुति से प्रसन्न हो आकाशवाणी होती। इन कार्यों के मूल कारण के रूप में वसुन्धरा का महत्व है और यह महत्व चोपैया छन्द से अभिप्रेत है।

देवताओं की प्रार्थना से आर्द्र हो, विप्र, धेनु, सुर, संत-हित प्रभु का अवतार हुआ और इसका वर्णन तुलसी ने चौपैया में किया है—

भय प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभा सिंधु खरारी ॥१

....

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु, तात यह रूपा।
कीजै सीसुलीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूपा।
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा।
यह चरित जे गावहि हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ।।३ ।।[७८]

विप्र, धेनु, सुर और संत—इन चारों के उद्धारार्थ ईश्वर ने मनुष अवतार लिया। इसलिए चौपैया छंद प्रसंगगत अर्थ में सौंदर्य ला देता है। इस भांति तुलसीदास ने इसका प्रयोग क्रमशः अत्याचार-वर्णन, शोकाकुल स्थिति में विचार-विमर्श, ईश्वर-स्तुति तथा रामजन्म के वर्णन में किया है। रस की दृष्टि से क्रमशः भयानक, शांत और रूप चित्रण में संयोग शृंगार का आयास होता है।

१४. त्रिभंगी छन्द

इसके प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएं रहती हैं, और १०, ८, ८, ६ पर यति रहती है। मानस में चौपैया छन्दों के बीच में ही एक त्रिभंगी छन्द मिलता है—

ब्रह्मांड निकाया, निर्मित माया, रोम-रोम प्रति, वेद कहै।
मम उर सो बासी, यह उपहासी, सुनत धीरमति, थिर न रहै।
उपजा जब ग्याना, प्रभु मुसुकाना, चरित बहुत बिधि, कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई, मातु बुझाई, जेही प्रकार सुत, प्रेम लहै ।।[७९]

भाषा में तत्सम शब्दावली की प्रधानता है, असमस्त पद-योजना है, कहीं शब्द के तद्भव रूप भी आए हैं। शैली इतिवृत्त की है। चौपैया की भाषा से इसकी भाषा में बहुत साम्य है।

१५. पद्मावती छन्द

भानु के अनुसार पद्मावती में १०, ८, १४ पर यति और अंत में दो गुरु होते हैं। पा० पैं० में ८ चतुर्मात्रिक गण के साथ दो गुरु माना है, पर उदाहरण में एक ही गुरु है। निष्कर्षतः, इसके अंत में दो गुरु भी रह सकता और एक गुरु भी। डॉ० गौरीशंकर मिश्र के अनुसार त्रिभंगी और पद्मावती में अंतर केवल यति को लेकर है, चरणांत विशेष महत्व नहीं रखता। दुर्मिला का अस्तित्व पृथक नहीं, वह पद्मावती ही है।[८०]

'मानस' के प्रथम सोपान में एक स्थल पर चार पद्मावती छंदों का प्रयोग मिलता है। इसे छन्दः प्रभाकरकार ने त्रिभंगी माना है, परन्तु डॉ० गौरीशंकर मिश्र के अनुसार इसमें १०-८-८-६ की यति नहीं होने के कारण यह त्रिभंगी नहीं, बल्कि पद्मावती छन्द है।

परसत पद पावन, सोक नसावन, प्रगट भइ तप पुंज सही।
देखत रघुनायक, जन सुखदायक, सतमुख होइ कर जोरि रही।
अतिप्रेम अधीरा, पुलक सरीरा, मुखनहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी, चरनन्हि लागी, जुगलनयन जलधार बही ॥१

....

जेहि पद सुर सरिता, परम पुनीता, प्रगट भई सिव सील धरी।
सोई पद पंकज, जेहि पूजत अज, मम सिर धरेउ कृपालु हरी।
एहि भांति सिधारी, गौतम नारी, बार-बार हरिचरन परी।
जो अति मन भावा, सो बर पावा, गै पति लोक अनंद भरी ॥४॥[८१]

इसमें आद्यंत लघु तत्सम शब्दावली की संरचना है, भावातिरेकवश भाषा कुछ रूपकमयी हो गई है। वाक्य साधारण लंबे हैं। भाषा में गलदश्रु का स्पष्ट संकेत है। सार्थक विशेषणों द्वारा गहन भावों की अभिव्यक्ति की गई है। करुणा से ओत-प्रोत होने के कारण छंदगत भाषा का प्रवाह मंथर गति से रुक-रुककर चलता है। इसकी पद-योजना भी दीर्घ है। भक्तों की दीन दशा का बखान करने में ऐसी भाषा बड़ी सटीक होती है। प्रसंग भी वैसा ही है। गौतम की नारी अहल्या शापवश पत्थर रूप में है। विश्वामित्र की आज्ञा से राम ने अपने पावन पद के स्पर्श से इसे उद्धार कर दिया। वर्षों से शापित आज सचेता बन प्रभु के दर्शन कर रही है—"अतिप्रेम अधीरा पुलक सरीरा, सुख नहिं आवर वचन कही"—ऐसी दशा में वाक्यों का दीर्घ हो जाना, शब्दों की तद्भवता गौण होकर संस्कृतमय हो जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। चौपैया और त्रिभंगी वर्णनात्मक के कारण भावानुरूप भाषा-लालित्य का वह गढ़ा हुआ रूप नहीं है, जो पद्मावती में है।

१६. चौबोला छन्द

यह पंचमदशमात्रिक छन्द है, जिसके अंत में एक लघु और एक गुरु होता है।[८२] काव्य में इसका प्रयोग पुराना है। केशवदास ने चौबोला और चौपाई को चौपाई ही कहा है।[८३] तथ्य यह है कि चौबोला, चौपाई नहीं है। यह एक स्वतन्त्र छन्द है। छन्दोदृष्टि से देखने पर इसकी स्पष्ट प्रतीति होती है। रामचरितमानस में चौपाइयों के बीच-बीच में इसका प्रयोग देखने को मिलता है, हां, यह बात दूसरी है कि इसकी अलग स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, चौपाई के ही सहयोग में शायद इनका उपयोग तुलसी ने किया है। प्रथम और द्वितीय सोपान में इसके उदाहरण संभवतः नहीं हैं। अन्य सोपानों में मिलते हैं। मानस में चौबोला और चौपाई का मिश्रण प्रयुक्त है।[८४] एक स्थल पर तो इसकी पंक्तियां हैं, चौपाइयों के बीच से उठाकर यहां हम प्रस्तुत कर रहे हैं—

१. तब खिसियानी राम पहिं गई, रूप भयंकर प्रगटत भई।३।१७।१८
२. सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी, बैद्य बंदि कबि भानस गुनी।३।२८

३. जननसुता कइ सुधि भामिनी, जानहि कहु करिबर गामिनी ।३।३६।१०

४. नाम लंकिनी एक निसिचरी, सो कह चलसि मोहि निंदरी ।५।४।२ आदि

और भी उदाहरण मानस में है। छन्दो दृष्टि से नहीं देखने के कारण इन चौबोला की पंक्तियों को सामान्यत: चौपाई कह दिया जाता है। यदि चौपाई की १६ मात्राओं की जगह १५ मात्राओं की एक-दो पक्तियां मिलतीं, तब भले ही सकुचाते हुए यह कहा जा सकता था कि यह तुलसी की असावधानी है। परन्तु, जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह तो एक अलग छन्द ही है, जिनकी ओर विद्वानों और टीकाकारों, कथा-वाचकों का ध्यान प्राय: नहीं गया।

तुलसी ने इनका प्रयोग विषय-वैविध्य निरूपण में किया है। शूर्पणखा के क्रोध, नीतिकथा, समाचार, दो व्यक्तियों की बातचीत, मुक्का-प्रहार, भक्ति-याचना, ईश्वर के विराट्-रूप-प्रदर्शन, राज-सभा में निर्भय-प्रवेश, रावण की कल्पना, भूकम्प जनित प्रभाव, रावण के निरादृत उदास मुख-वर्णन, युद्ध से सन्ध्या समय सेना का लौटना, कुंभकरण का उपदेश, वाण-प्रहार, रावण को जल्द मारने की मुनियों की राम से स्तुति, अतुलित वीरों का सक्रोध चलना, घायल वीरों का कराहना, वीरों की लाश से गीधों का आंत खींचना, सेनाओं का अचानक आ जाना, राक्षसों और कपियों का युद्ध, रावण को कालनेमि का धमकाना, युद्ध-त्याग कर कंदरे में जाकर तपस्या करना, निशाचरी माया, राम को शक्ति लगना, रावण का सिर काटना, स्वारथी देवताओं की विनय, युद्धोपरांत राम की सीता सहित शोभा, सीता का गंगा-पूजन, अयोध्या-वासियों के उत्साह, धार्मिक भाव, नीति-नैपुण्य, सम्पूर्ण पृथ्वी पर राम का राज्य, उनके राज्य के वर्णनातीत सुख, आनन्द, ज्ञानियों और गृहस्थों को राम की कथा में आनन्द लेना, सीता का सेवा-कार्य, राम का उपवन-निरीक्षण, नित्य-नूतन चरित्र, विमल कथा का बखान, राम का नगर से बाहर भ्रमण, काक की कल्पना, माया-ग्रन्थ की जटिलता, कृतज्ञता-ज्ञापन, विषय की प्रबलता आदि का वर्णन बड़ी सफलतापूर्वक हुआ है।

जहां तक भाषा निरूपण का प्रश्न है, यह पहले ही कहा जा चुका है कि चौबोला छन्द तो है अवश्य, पर यह अनेक चौपाइयों के बीच-बीच में आया है; इसलिए उन प्रसंगों और स्थलों की चौपाइयों की भाषा से इनका गहरा सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। लेकिन फिर भी इनकी पद-योजना की भिन्नता से भाषा में भिन्नता आ गई है। वाक्य पूरा होते समय एक झटका लगता है और मुख-ध्वनि वेग के साथ रुक जाती है। चौबोला की हर पंक्ति में यह विशेषता पाई जाती है। विषय की दृष्टि से अनेक विषयों का वर्णन इनमें निहित है। रस की दृष्टि से शांत, वीभत्स, शृंगार, वीर, भयानक, अदभुत आदि का वर्णन है। रस-विवेचन में भाषा कुछ भिन्न हो जाती है। जहां शांत-रस से संबद्ध अनुनय, विनय, भक्ति आदि का प्रसंग है, वहां वर्ण-प्रयोग में माधुरी है, शब्द-योजना-संयत है, और अन्य दूसरे रसों का वर्णन है, वहां परुषावृत्ति एवं तत्सामयिक चित्रण की बिंबात्मकता आ गई है। ऐसे प्रसंगों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों से विशेष सहायता ली गई है। "दो गुरु आ जाने से चौपाई के चरण की समाप्ति एक गम्भीर वातावरण की सृष्टि कर देती है। चौबोला का अन्तिम

लघु-गुरु एक हल्कापन लिए हुए हैं। इसलिए जहां चौपाई की पंक्ति पाठकों के हृदय में घर कर जाती है, वहां चौबोला की पंक्ति बिखर कर हृदय को आच्छादित कर लेती है।"[८५]

१७. दोहरा छन्द

दोहा के विषम चरणों में १३ मात्राएं होती हैं और दोहरा के विषम चरणों में १२ मात्राएं। भिखारीदास ने इसकी परिभाषा दी है—

"दोहा के तेरहनि में द्वै-द्वै कला बढ़ाइ।
कीजै दोही, चेहरा एकै एक घटाइ॥"[८६]

भानु के अनुसार 'दोहरा' का अर्थ दोहा ही है और तुलसी के रामचरितमानस में पाये जाने वाले द्वादशमात्रिक चरणों के लिए लिपिकर्त्ता दोषी हैं। लेकिन तुलसीदास ने गीतावली तथा विनय-पत्रिका में दोहरा छन्द का प्रयोग किया है, तथा—

देखत चित्रकूट बन, मन अति होत हुलास,
सीताराम लखन प्रिय तापस बृंद निवास॥१
सरित सोहावनि पावनि, पाप हरनि पय नाम।
सिद्ध साधु सुर सेवित, देति सकल मन काम॥२

—गीतावली अयोध्याकांड प० ४७

यहां पर लगातार २२ पदों की रचना दोहरा छन्द में हुई है तथा उत्तरकांड के २१वें पद में २५ दोहरा छन्द आए हैं। विनय-पत्रिका की पद-संख्या २०३ में लगातार २० दोहरे छन्दों का प्रयोग तुलसी ने किया है। इसलिए "आचार्यों का ऐसा कहना पद्यों को छन्दोदृष्टि से नहीं देखने का ही परिणाम है। वस्तुतः दोहरा दोहे का ही रूपांतर है, जिसका प्रयोग अपभ्रंश तथा हिन्दी में यत्र-तत्र बराबर होता रहा।"[८७]

रामचरितमानस में दोहरा छंद का अमित बार प्रयोग किया गया है। द्वितीय सोपान में इसका अभाव है, अन्य सोपानों में जगह-जगह यह प्रयुक्त है, यथा—

१. सुर समूह विनती करि, पहुंचे निजनिज धाम।
जगनिवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक अभिराम॥१।१९१
२. नंदीमुख सराध करि, जात करम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि, नृप विप्रन्ह कहँ दीन्ह॥१।१९३
३. सुख संदोह मोह पर, ज्ञान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बस, कर सिसु चरित पुनीत॥१।१।१९९

इस सोपान में और भी हैं, जैसे दो० सं० २०९, २१०, दो० सं० २११ आदि।

तृतीय सोपान में—

१. आते कृपालु रघुनायक, सदा दीन पर नेह।
तासन आई कीन्ह छल, मूरख अवगुन गेह॥३।१
२. देखि राम मुख पंकज, मुनिवर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति, धन्य जन्म सरभंग॥३।७

इसमें दो० सं० १२, १४, १७, २१, २३, २६, २७, २८, २९, ३२, ३५, ३९ (क), आदि दोहरा छंद है।

चतुर्थ सोपान में—

१. जग कारन तारन भव, भंजन धरनी भार।
की तुम अखिल भुवनपति, लीन्ह मनुज अवतार।४।१

२. सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ न हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत ॥४।३

इसी प्रकार दो० सं० ५, ६, ८, ६, १२, १४, १६, २१, २२, २४, २७, २८, २६ आदि दोहरा छंद हैं।

पंचम सोपान में—

१. हनुमान तेहि परसा, कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
रामकाज कीन्हे बिनु, मोहि कहाँ बिश्राम ॥५।१

२. रामकाज सब करिहहु, तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो, हरषि चले हनुमान।५।२

इसी तरह दो० सं० ५, ७, ८, १०, ११, १६, १८, १६, २०, २५, २६, २८, २६, ३०, ३१, ३४, ३६, (क) (ख), ४०, ४६ (ख), ५१, ५६ (ख), ६० आदि दोहरा हैं।

षष्ठ सोपान में—

१. अति उतंग गिरिपादव, लीलहिं लेहि उठाइ।
आनि देहि नल नीलहि, रचहिं ते सेतु बनाई ॥६।१

२. अस कहि नयन नीर भरि, गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुनाथहि, अचल होइ अहिवात ॥६।७

इसके अतिरिक्त दो० सं० २६, ३२ (ख), ३५ (क, ख), ३६, ४१, ४३, ४५, ४७, ५०, ५१, ५२, ५५, ७०, ७२, ७३, ७४ (क), ७७, ८० (ख), ८१, ८२, ८३, ८६, ६५, ६७, ६८, १०५, १०६, १०८, १०६ (ख) १११, ११६ (ग), ११६ (क), १२० (क, ख); दोहरा हैं।

सप्तम सोपान में—

१. बहुतक चढ़ी अटारिन्ह, निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुरि सुर हरषित, करहिं सुमंगल गान ॥७।३ (ख)

२. आवत देखि लागे सब, कृपा सिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि विमान ॥७।४ (क)

इसके अतिरिक्त दो० सं० ५, ६, ८ (ख), ११ (क, ख, ग), १४ (क) ४३, ४६, ५०, ५१, ५८, ५६, ६०, ६२ (क, ख), ७५(ख), ७७ (ख), ८२ (क, ख), ६० (क), ६२, (क), १२३ (ख), १२४, (क) १२७ ये सब दोहा नहीं दोहरा हैं।

मानस में दोहा और दोहरा का सांकर्य प्रयोग भी मिलता है। पहले चरण में १३ और तीसरे चरण में १२ मात्राएं, या इसके विपरीत पहले चरण में १२ और तीसरे चरण में १३ मात्राएं मिलती हैं।

प्रथम सोपान में—

व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि, करत चरित्र अनूप ॥१।२०५

तृतीय सोपान में—

निसिचरहीन करउं महि, भुज उठाइ प्रन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमहिं, जाइ, जाइ सुख दीन्ह ॥३।६

इस सोपान में दो० सं० ११, १६ (क), २०, ३३, ३४, ४१ आदि।

चतुर्थ सोपान में—

तब ननुमंत उभय दिसि, की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥४।४

एवं दो० सं०—१३, १५, १६, १७, १८, २०, २३, २५।

पंचम सोपान में—

पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह विचार।
अति लघु रूप धरो निसि, नगर करौं पइसार ॥५।३

एवं दो० सं०—४, ६, १४, १५, १७, २१, २२, २३, २४, ३५, ३६, ३८, ४१, ४४, ४५, ४८, ४६ (क), ५२, ५४, ५५, ५६ (क), ५६।

षष्ठ सोपान में—

संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलपभरि, घोर नरक मनुं बास ॥६।२

एवं ५, ६, ८, १२ (क), १५ (ख) १६ (क), १६, २०, २३ (क), ३८ (क), ४२, ४४, ४८, (ख), ५४, ६० (ख), ६३, ६५, ६६, ६७, ६६, ७१, ७५, ७६, ७६, ८० (ग), ८४, ८५, ८७, ८८, ६०, ६३, ६६, ६६, १०४ (क), १०३, १०७, १०६ (क), ११२, ११४ (क), ११५, ११६ (ख), ११८ (ख), ११६ (ख) १२१ (ख) आदि।

सप्तम सोपान में—

कौसल्यादि मातु सब, मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रभु श्री अनुजजुत, कहन चहत अब कोइ ॥७ (ग, घ)

एवं १ (क, ख), २ (क), ३ (ग), ७,१६(ग),२६. ४२, ४४, ४७, ४६, ५६, ५७, ६३ (ख),६७ (ख), ६६ (क), ८३ (क, ख), ६४ (ख), ६६ (क), १२५ (ख) १२८ आदि।

जहां जैसे प्रसंग हैं, जैसे पात्र हैं, जैसी परिस्थितियां हैं, जैसे भाव हैं, तदनुकूल इसकी भाषा है।

१८. सोरठा छन्द

इसके विषम चरणों में ११ और सम चरणों में १३ मात्राएं होती हैं। यह दोहे का ठीक उल्टा है।

रामचरितमानस में कुल ८६ सोरठों का उपयोग किया गया है। प्रथम सोपान में ३५, द्वितीय सोपान में १६, तृतीय सोपान में ८, चतुर्थ सोपान में ३, पंचम सोपान में एक, षष्ठ सोपान में ६ और सप्तम सोपान में १७। सोरठा के प्रयोग के लिए कोई

स्थान नहीं है। दो चौपाइयों के बीच में, दो दोहों या दोहरों के बीच में, एक दोहा के पहले और दूसरे दोहा के अन्त में अथवा एक छंद के पहले और दूसरे छंद के पश्चात् इसका प्रयोग देखा गया है। लेकिन जब भी सोरठा का प्रयोग हुआ है तब इसका कोई विशेष उद्देश्य होता है।

प्रथम सोपान में गणेश, विष्णु, शिव, गुरु, वाल्मीकि, वेद, ब्रह्मा, दशरथ, हनुमान की वंदना में, शिव के राम-दर्शन की लालसा, शिव द्वारा सती के उपदेश नीति के वर्णन, कामदेव का प्रभाव-वर्णन, शिव के गणों का बाराती वेष में विचित्र रूप का वर्णन, पार्वती को उपदेश देने में, शिव द्वारा पार्वती को राम-कथा सुनाने में, राम की माया का प्राबल्य-वर्णन में, मनु के क्षोभ-वर्णन, ईश द्वारा मनु का वर देने में, नीति-कथन, राक्षसों के अत्याचार-वर्णन में, ब्रह्मा द्वारा देवताओं के आश्वासन देने में, पुरुष-सिंह राम-लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ चलने में, सीता पर गौरी की अनकूलता, भक्त राजाओं का राम पर विश्वास, धनुष-भंग, राम के गले में जयमाला से देवताओं के हर्ष, याचकों को मुहमांगा इनाम मिलने में, जनकपुर की नारियों की आंतरिक इच्छा के वर्णन में, सुनैना की राम से विनय, एवं रामचरित्र की महिमा तथा फल-निरूपण आदि में कवि ने सोरठा का प्रयोग किया है।

द्वितीय सोपान में कैकेयी को मनाते हुए दशरथ के वर्णन में कैकेयी के अनुचित हठ के वर्णन में माता से आज्ञा लेकर राम के पास जाने की लक्ष्मण की आतुरता के वर्णन में, केवट के प्रेम वक्तव्य में, राम के ब्रह्मत्व-स्वरूप के वर्णन में, राम की विनय में, भरत के निश्छल सरल प्रेम-कथन में, निषादराज की प्रार्थना में, चित्रकूट में भरत आगमन-समाचार से राम की प्रसन्नता के वर्णन में, अवधवासियों के चित्रकूट भ्रमण के वर्णन में, मुनियों के उपदेश में, इन्द्र की कुचाल-वर्णन में और भरत चरित्र के फल-निरूपण में सोरठा का प्रयोग हुआ है।

तृतीय सोपान में शिव-द्वारा राम-कथा की निगूढता के वर्णन में, जयंत पर राम की दयालुता-भाव में, अत्रि द्वारा राम की स्तुति में, सीता को अनुसूया द्वारा दिए गए उपदेश-वर्णन में, राम-भक्ति की महिमा-वर्णन में, खरदूषण के सैन्य-वर्णन में तथा शूर्पणखा के आर्त-क्रन्दन में सोरठा का व्यवहार किया गया है।

चतुर्थ सोपान में काशी-वास की महिमा तथा शिव की भक्ति में एवं राम के रूप और गुण-वर्णन में सोरठा का प्रयोग है।

पंचम सोपान में सीता के सम्मुख हनुमान के मुद्रिका गिराने के वर्णन में केवल एक बार सोरठा आया है।

षष्ठ सोपान में समुद्र पार होने के लिए राम के विचार-विमर्श में मूर्ख पर उप-देश के असर न होने के वर्णन में, अंगद के सविनय आज्ञा पालन करने में, अंगद द्वारा राम के प्रताप-वर्णन में, भरत हनुमान के सप्रेम मिलन में तथा लक्ष्मण की मूर्छित अवस्था में राम के विलाप-वर्णन में सोरठा आया है।

सप्तम सोपान में भरत को समाचार देकर हनुमान के लौटने में, काक से गरुड़ के कृतज्ञता-ज्ञापन में, राम के द्वारा सेवक की सर्वोच्चता-वर्णन में, अयोध्या-वासियों के

आनंद-वर्णन में नीति-कथन में, राम-भक्ति के उपदेश में, गूढ़ रहस्य जानने की जिज्ञासा में, गुरु की दयालुता तथा माया की प्रबलता के वर्णन में सोरठा का सफल उपयोग तुलसीदास ने किया है।

सोरठे की भाषा में एकरूपता नहीं है। इसका कारण यह है कि सोरठे एक प्रसंग में एक स्थल पर नहीं हैं, सर्वत्र बिखरे हैं। अतः प्रसंग और रस के अनुकूल भाषा बदलती गई है। रस की दृष्टि से देखने पर यह प्रतीत होता है कि प्रायः सभी रसों में सोरठा का निर्माण हुआ है। वंदना की भाषा में तत्सम शब्दावली और विशेषणों की भरमार है, कहीं-कहीं तो विशेषण ही सारे अर्थ सौंदर्य को प्रकट करते हैं। नीति और उपदेश की भाषा में सजीवता, विश्वसनीयता और सरलता है। कथन को प्रभावशाली बनाने के लिए मुहावरों, कहावतों, तथा रूपकों का सहारा लिया गया है। माया-वर्णन में अद्‌भुत रस का अद्‌भुत संचार हुआ है; वहां भारतीय मिथक चेतना सहसा जाग्रत हो जाती है। भक्तों की वाणी में आर्द्रता है, प्रेम लपेटा हुआ है। निष्कर्षतः

१. शांत और गंभीर परिस्थितियों या अभिव्यक्ति में सोरठे का प्रयोग हुआ है, जैसे—वंदना में—

 "जो सुमिरत सिधि होइ, गन नायक करिबर बदन।
 कारउ अनुग्रह सोइ, रासि सुभगुन सदन।"

२. राम की महाकथा कहने के प्रयास में जैसे शिव का पार्वती से राम-कथा सुनाना, गरुड़ से काक का राम कथा सुनाना।

३. रामायण की कथा में अनुभूति की उच्चता और गम्भीरता के कारण वाणी जब शांत और संयत हो जाती है, तब सोरठे का प्रयोग हुआ है।

४. शांत परिस्थिति में किसी को सांत्वना देने के क्रम में इसका प्रयोग हुआ है।

५. किसी कथन को प्रभावशाली बनाने के लिए सोरठा का प्रयोग हुआ है।

६. निशाचरों की माया तथा उनके अत्याचार के वर्णन में,

७. राम की माया के वर्णन में,

८. राम के अलौकिक रूप गुण, कार्य आदि-वर्णन में,

९. दो व्यक्तियों के उग्र, शांत संवाद के वर्णन में,

१०. तीर्थ-स्थल के वास की महिमा के वर्णन में,

११. भक्तों की भक्ति के वर्णन में, तथा

१२. व्यक्ति के मन के क्षोभ, ग्लानि, चिंता, उत्साह आदि मनोभावों के चित्रण में सोरठा का प्रयोग तुलसीदास ने किया है।

१९. दोहा छन्द

जिसके विषम चरणों में १३ और सम चरणों में ११ मात्राएँ होती हैं, उसे दोहा कहते हैं। "मध्ययुग में हिन्दी कवियों के दो ही छंद दिखाई देते हैं—सवैया और दोहा। ये दोनों हिन्दी के अपने छंद हैं और प्रारंभिक काल से चले आ रहे हैं।"[८८] दोहे में भाव व्यंजक शब्दों में सिमटे रहते हैं, समासिक रूप में रहते हैं, उनमें गठे हुए भाव रहते

हैं, सधे हुए अर्थ रहते हैं और वाक्य अति संयत रहते हैं। इसीलिए रहीम ने दोहों का बड़ा गुण गाया है।

रामचरितमानस में तुलसी के मुख्य छंद दो हैं—दोहा और चौपाई। छोटे छन्द कथा-प्रवाह के लिए उत्तम साधन हैं। और, तुलसी भक्त तथा कथाकार हैं, इसलिए उन्होंने दोहे को इतनी प्रधानता दी। रामचरितमानस के अतिरिक्त भी उनकी अनेक कृतियां हैं, जिनमें मात्र दोहों का ही प्रयोग मिलता है—जैसे दोहावली, रामाज्ञा-प्रश्न। वैराग्य संदीपिनी में भी दोहे का अधिकांश प्रयोग मिलता है। दोहा सर्वस्व सिद्ध छंद है। यदि कवि वस्तुतः कवि है, तो अपनी क्षमता से दोहे को सर्वरसग्राही बना सकता है। तुलसी की इस कृति में उनकी महानता तो प्रत्यक्ष ही है। दोहों से तुलसी ने नाना प्रकार के काम लिए हैं, अनेक रसों की सफल योजना की है, तथा पात्रों के चरित्र और प्रसंगों की मर्यादा निभायी है।

गीताप्रेस से प्रकाशित रामचरितमानस की गणना से दोहों की कुल संख्या ११७१ है। प्रधानतया दोहों के कार्य ये हैं—

१. चौपाइयों के बीच-बीच में प्रयुक्त दोहा एक प्रकार के विश्राम-स्थल का कार्य करता है।

२. किसी कथा का प्रारम्भ भी दोहे से किया जाता है।

३. प्रायः निष्कर्ष दोहों से दिया जाता है।

४. दार्शनिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, भावनात्मक, कलात्मक आदि सारी परिस्थितियों की अभिव्यंजना कराने में दोहों का प्रयोग किया गया है।

५. भक्ति तथा मानव के हर्ष, प्रेम, शोक, भय आदि मनोभावों के जाग्रत करने में दोहों का प्रयोग कवि ने किया है।

प्रमुखतः चौपाई और दोहा ही मानस के आद्यंत छंद हैं, इसलिए जहां जो प्रसंग जैसा है, वहां वैसी भाषा है। स्थलोचित, रसोचित भाषा का लालित्य भी दोहों में खूब भरा है। यहां प्रारम्भ और उपसंहार के मात्र दो दोहों का उल्लेख हम कर रहे हैं—

जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं सेल बन, भूतल भूरि निधान॥[९]
कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम॥[१०]

कभी-कभी कवि ने एक से अधिक दोहों का एकबारगी प्रयोग किया है। कभी दोनों का युग्म-प्रयोग भी मिलता है, तो कभी एक दोहा और एक सोरठा का प्रयोग रहता है। जब इस प्रकार का प्रयोग होता है तब बाद में आने वाला छंद विचार और भावों के प्रबल प्रवाह को ग्रहण करता है जो पहले की चौपाई से, दोहा से होते हुए आता है। ऐसे प्रयोग-बाहुल्य प्रथम सोपान और सप्तम सोपान में अत्यधिक हैं। दोहा-युग्मों का प्रयोग भी कभी-कभी उन भावनाओं को पूर्ण करने के लिए हुआ है, जिन्हें

साधारणतया चौपाइयों और एक दोहा से पूर्ण नहीं किया जा सकता। कभी-कभी कवि ने कथा-प्रवाह में परिवर्तन लाने के लिए भी दोहा-युग्म का प्रयोग किया है। "प्रबंध-प्रवाह में दोहा और सोरठा का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। ये छन्द प्रबंध का धारा-प्रवाह संयत रखने के लिए कहीं विश्रामदायक का कार्य करते हैं, तो कहीं प्रबंध-कथा-प्रवाहित रखने के हेतु नूतन वस्तु उपस्थित करने का अवसर प्रदान करते हैं, कहीं विस्तृत कथा का सार एकत्र कर उसकी झलक देते हैं तो कहीं अद्भुत सांसारिक व्यवहार-पटुता का नियम अथवा आध्यात्मिक, दार्शनिक, एवं तात्विक सिद्धांत फैलाते हैं, यही नहीं, सूक्ष्म से सूक्ष्म आभ्यंतरिक एवं बाह्य दृश्यों का चित्र भी इन्हीं छोटे छन्दों में यत्र-तत्र नर्तन करता हुआ दृष्टिगत होता है।"[९१]

२०. चौपाई छंद

चौपाई के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएं होती हैं, लघु-गुरु अथवा चौकल का कोई क्रम नहीं होता। जगण और तगण (। ऽ ।, ऽ ऽ ।) को छोड़कर अन्त में कोई भी गण रह सकता है।

रामचरितमानस एक महाकाव्य है। इसमें मानव-जीवन की शाश्वत, उदात्त वृत्तियों का, धार्मिक, साहित्यिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों का काव्यभाषा में चित्रण रहता है। महाकाव्य में आधिकारिक कथा तो सर्वत्र व्याप्त रहती है, प्रासंगिक कथाएं भी कभी कुछ दीर्घता प्राप्त कर लेती हैं, उस स्थिति में कवि को एक ही प्रकार के छन्द में रचना करनी पड़ती है। "प्रबन्धकाव्यों का रचयिता, जिसे पृष्ठों तक एक ही मनः स्थिति में रहकर चरित्र-चित्रण अथवा रस विशेष की निष्पत्ति के लिए प्रयास करना पड़ता है, बार-बार छन्द नहीं बदल सकता।"[९२] आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "कुछ-कुछ कवियों को एक ही प्रकार का छन्द सध जाता है, उसे ही वे अच्छा लिख सकते हैं। उसे दूसरे प्रकार का छन्द लिखने का प्रयत्न भी नहीं करना चाहिए। कविता यदि सरस और मनोहारिणी है, तो चाहे एक ही अथवा बुरे से बुरे छन्द में क्यों न हो, उसे आनन्द अवश्य ही मिलता है। तुलसीदास ने चौपाई और बिहारीलाल ने दोहा लिखकर इतनी ही कीर्त्ति संपादन की है।" परन्तु सच तो यह है कि तुलसीदास इस सीमित लघुपरिधि से बाहर थे। "वे चौपाई ही अच्छी तरह से लिख सकते थे"—यह एक महाकवि तुलसी के लिए असत्य तथा अशोभनीय तथ्य है। वे चौपाई तो अच्छी तरह लिख ही सकते थे, अन्य छन्दों को भी उन्होंने आगे बढ़ाया, जिसके उदाहरण विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, कृष्ण गीतावली, जानकी मंगल, पार्वतीमंगल आदि हैं। कुछ ऐसे छन्द होते हैं, जो सभी रसों के वर्णन में समान रूप से समर्थ होते हैं। वैदिक साहित्य में 'त्रिष्टुप जगती', लौकिक संस्कृत में 'अनुष्टुप', हिन्दी में 'चौपाई', 'दोहा', 'सवैया', सर्वरससिद्ध छन्द हैं। अंग्रेजी में आयम्बिक का प्रयोग भी गंभीर से हल्का तथा सुन्दर से भयानक सभी विषयों में सफलतापूर्वक हुआ है—

"आयम्बिक मेजर हैज़ बिन यूज्ड विथ कम्प्लीट सक्सेस फॉर ऑल काइण्ड्स ऑव सब्जेक्ट फ्रौम ग्रेव टू डे, फ्रौम लाइवली टू सर्व."[९३]

मानस में चौपाई प्राय. आठ अर्द्धाली की है, कहीं तो सात भी हैं। द्वितीय सोपान में आठ का क्रम तो सुनियोजित है, पर अन्य सोपानों में ऐसा नहीं है। आठ के अतिरिक्त नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पद्रह, सोलह, अठ्ठारह, उन्नीस, बीस, इक्कीस, चौबीस, छब्बीस, सत्ताइस, उन्तीस, अर्द्धालियों के बाद दोहा उपलब्ध होते हैं। "दोहा और चौपाई महात्मा तुलसीदास ने इतने ऊंचे उठा दिए, ऐसे चमका दिए; तुलसी की प्रगाढ़ भक्ति के उद्‌गारों को बहाते-बहाते उनका स्वर ऐसा सध गया, ऐसा उज्वल पवित्र तथा परिणत हो गया था कि एक-दो को छोड़ अन्य कवियों को उन पवित्र स्वरों को अपनी श्रृंगार की तंत्री में चढ़ाने का साहस ही नहीं हुआ, उनकी लेखनी द्वारा वे अधिक परिपूर्ण रूप पा भी नहीं सकते थे। [९४]

वस्तुतः चौपाई तुलसीदास का जातीय छन्द है। यह छन्द शताब्दियों से आज-तक मानव के गले का हार बना हुआ है। इस छन्द में हर्ष-शोक, पाप-पुण्य, रात्रि-दिसा, साधु-असाधु, सुजाति-कुजाति, दानव-देव, ऊंच-नीच, अमृत-विष, माया-ब्रह्म, जीव-ईश्वर, राजा-रंक, स्वर्ग-नर्क, अनुराग-वैराग्य आदि विपुल प्रवृत्तियों के ढोने की अतुल शक्ति है। चौपाई करोड़ों जनता का प्रिय छंद है। मूर्ख, विद्वान्, गृहस्थ, पंडित तथा राज-प्रसाद से लेकर टूटी झोपड़ी तक यह चौपाई समादृत हो रही है। रामचरितमानस का निर्माण यदि विनयपत्रिका. की संस्कृत सामासिक शब्दावली में होता, तो आज मानस की यह व्याप्ति शायद नहीं रहती। मानस को इतना व्यापक और लोकप्रिय बनाने का सबसे प्रधान श्रेय चौपाई छद को ही है "रामचरितमानस ने अवधी को संसार भर के सभ्य देशों में पहुंचा दिया। संस्कृत से हिन्दी में साहित्य आता है, पर अवधी-मानस का संस्कृत में भी अनुवाद हुआ। अंग्रेजी जैसी समृद्ध भाषा में मानस का अनुवाद हुआ...।"[९५]

तुलसी ने कहा है कि उनके मानस के आदि, मध्य, अन्त—सर्वत्र रामचरित ही है—

> जेहि महं आदि मध्य अवसाना।
> प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।।

यदि शैली की दृष्टि से देखें तो उनके आदि, मध्य और अन्त—सर्वत्र चौपाई ही चौपाई है। कवि ने चौपाइयों में सभी रसों की व्यंजना की है। एक रस की चौपाइयों की पद-योजना दूसरे रस की चौपाइयों से बिल्कुल भिन्न है; जैसे; श्रृंगार रस :—

> कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
> कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।

इन पंक्तियों में लघु वर्णों की अधिकता और ताल-गणों की सम्यक्-योजना श्रृंगार जैसे कोमल रस के अनुकूल लय की सृष्टि करती है। किन्तु चौपाई की निम्नांकित पंक्तियां—

> नाथ एक आवा कपि भारी।
> तेइ असोक वाटिका उजारी।।

गुरु वर्णों की अधिकता, जगण का प्रयोग तथा ताल-गति के अभाव के कारण भय, आतंक और आश्चर्य को ध्वनित करती है।[९६] तुलसी की चौपाइयां रसानुकूल हैं—

करुणा रस—पति सिर देखत मंदोदरी।
मूर्च्छित बिकल धरनि खसि परी ।।

रौद्र रस —माखे लखन कुटिल भौं भौंहें।
रद पट फरकत नयन रिसौंहैं ।।

अद्‌भुत रस—जहँ चितवहि तहँ प्रभु आसीना।
सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना ।।

ध्वन्यात्मकता—कुहू कुहू कोकिल धुनि करिही।
सुनि रब सरस ध्यान मुनि ढरहीं ।।

बिंबात्मकता—कहँरत भट घायल तट गिरे।
जहँ तहँ मनहुँ अर्धजल परे ।।

जिस भी रस का वर्णन जिस स्थल पर हुआ है, वह बिल्कुल सटीक एवं उपयुक्त है, इससे भाषा की सशक्तता, औचित्य तथा मंजुलता निर्विवाद सिद्ध है।

कथा में प्रमुख तत्व है प्रवाह और प्रवाह को कायम रखने के लिए छोटे और सरल छंदों की आवश्यकता होती है। तुलसी के दोहे और चौपाई इस दृष्टि से परम सार्थक हैं। चौपाई, दोहा, सोरठा आदि छंदों की पारस्परिक संबद्धता की आधारशिला पर ही मानस की मुख्य कथा आगे सरकती चलती है।

२१. हरिगीतिका छंद

इसके प्रत्येक चरण में २८ मात्राएं होती हैं, १६-१२ पर यति और अंत में एक लघु, एक गुरु होता है। इसमें एक अजीब लचक और आकर्षक-गति रहती है। "हरिगीतिका में अट्ठाइस मात्राओं के आदि-अंत दो बिंदुओं के बीच कई लयात्मक तरंगें उठती हैं जो स्वर की मध्यरेखा के ऊपर-नीचे जाकर लचक उत्पन्न करती हैं।"[९७] तुलसीदास का यह अत्यंत प्रिय छन्द है। इन्होंने स्थल विशेष पर इसका प्रयोग किया है। मानस में हरिगीतिका कहीं एक, कहीं दो, कहीं तीन, कहीं चार अथवा अधिक की संख्या में प्रयुक्त हुई हैं। कवि ने जमकर वर्णन करने के लिए एक स्थल पर अनेक बार इसका प्रयोग किया है। रामचरित मानस सप्त सोपानों में विभाजित है। प्रत्येक सोपान की समाप्ति पर हरिगीतिका आई है तथा यह एक या अनेक दोहों या सोरठों से युक्त है। इस हरिगीतिका के रचना-क्रम में एक विशेषता दिखाई पड़ती है। वह यह है कि छन्द के प्रारंभिक शब्द अपनी पूर्ववर्ती चौपाई के ही शब्द होते हैं या उसी के पर्याय रूप में कुछ बदले हुए रूप में आते हैं। यथा—

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना-षन्मुख जन्म सकल जग जाना ।।
जग जान सन्मुख जन्म कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा।
तेहि हेतु मैं बृषकेतु सुतकर चरित संछेपहि कहा ।।[९८]

इससे दो महत्व के कार्य हुए हैं—एक तो ऐसा करने से सांगीतिकता की मधुरिमा आ

गई है और दूसरे, सोपान की समाप्ति के क्षण में एक विशेष प्रकार की नाटकीयता का प्रादुर्भाव हो गया है। यह है छंद-विधान में तुलसी का अपना प्रयोग।

मानस-भर में कवि ने १४१ हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया है। प्रथम सोपान में ४७, द्वितीय सोपान में १३, तृतीय सोपान में १४, चतुर्थ सोपान में ३, पंचम सोपान में ६, षष्ठ सोपान में ३९ और सप्तम सोपान में १९।[९९] मानस की चौपाइयों में परिव्याप्त विशेषता की दृष्टि से हरिगीतिका का स्थान अन्यतम है। संख्या की दृष्टि से भी चौपाई और दोहा के बाद इसी का स्थान है, उसके बाद तब अन्य छंदों का।

हरिगीतिका नाना प्रकार के भावों और रस की स्थितियों को वहन करनेवाला एक अति समर्थ छन्द है। कवि की अनेक भावनाओं की सफल अभिव्यक्ति इस छंद में हुई है। यही कारण है कि प्रत्येक सोपान में यह छंद विविध स्थलों पर अवस्थित है। प्रसंग और रस के अनुकूल आगे बढ़ने की शक्ति इसमें अधिक है। यह सभी परिस्थितियों, प्रसंगों और रसों में एकदम 'फिट' है।

मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यो सरित पावन पाथ की।
प्रभु सुजस संगति भनिति मल होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंगभूत मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥[१००]

राजपति दीक्षित ने लिखा है कि जहां वे किसी भाव, व्यापार, दृश्य या परिस्थिति का चित्र पूर्णतया साकार और प्रभावोत्पादक बनाना चाहते हैं, वहीं चौपाइयों की धारा उमंगित कर उसे प्रत्यक्ष कराने के लिए झट हरिगीतिका छंद उपस्थित कर देते हैं।[१०१] तुलसी ने अनेक उद्देश्यों से अनेक प्रसंगों में इसका उपयोग किया है—

१. राम-कथा की पावनता और महिमा के वर्णन में,
२. कामदेव की चढ़ाई के प्रसंग में चार बार प्रयुक्त है।[१०२]
३. शिव-पार्वती के विवाह-वर्णन में,[१०३]
४. किसी मनोकामना की पूर्ति के वर्णन में,[१०४]
५. धनुष-भंग के कठोर गर्जन में,[१०५]
६. लक्ष्मण, शत्रुघ्न, राम, भरत की सुन्दरता में,[१०६]
७. राम के विवाह-प्रसंग में,[१०७]
८. अनेक मनोभावों के वर्णन में, जैसे—कैकेयी का कोप, केवट की भक्ति, नगर-वासियों का क्षोभ, भरत की व्याकुलता, विधि की विमुखता, कोल-भीलों की भक्ति-भावना, अप्रिय घटना-जनित चिंता, वियोग की स्थिति से आई उदासीनता, भरत की महिमा[१०८] आदि में सफल प्रयोग हुआ है।
९. युद्ध,[१०९] भक्ति,[११०] स्तुति,[१०१] उपदेश,[११२] आदि वर्णन में भी यह आया है।
१०. वस्तु वर्णन में भी हरिगीतिका आई है, जैसे लंका के दुर्ग तथा उसमें रहने वाले राक्षसों के वर्णन में,[११३] लंका की ओर राम की सेना के चलने के वर्णन में,[११४] समुद्र की सविनय प्रस्थान में।[११५]
११. षष्ठ सोपान में युद्ध के वर्णन में २९ हरिगीतिका का प्रयोग कवि ने किया है। युद्ध

के हर पक्ष को, दोनों ओर की सेनाओं की अनेक प्रक्रियाओं के वर्णन में कवि का मन काफी रमा है, अधिक अवसर मिला है।[११६]

१२. अपशकुन, आश्वासन, हर्ष, अग्निपरीक्षा[११७] आदि में भी हरिगीतिका आई है।

भाइयों के परस्पर सप्रेम मिलन,[११८] माताओं की आकुलता[११९], सिंहासनासीन राम के रूप[१२०] तथा अयोध्या के नगर, बाजार, बापी, कूप, तड़ाग आदि के वर्णन[१२१] में हरिगीतिका का प्रयोग है। इस तरह हम देखते हैं कि सभी रसों के सभी प्रसंगों में इसका व्यवहार कवि ने सफलतापूर्वक किया है।

भाषा प्रसंग और रस के अनुकूल हैं। विवाह-प्रसंग में शृंगार रस के अनुकूल भाषा है। द्वितीय सोपान में राम वन-गमन में आये छन्दों की भाषा में वियोग की स्थिति को स्पष्ट कर देने की शक्ति है। स्तुति की भाषा में शालीनता है। भक्ति और प्रेम की भाषा में सहजता एवं सरलता है। युद्ध-वर्णन की विभीषिका में वीर, भयानक अद्भुत रसानुकूल ओजगुण संपन्न द्वित्व वर्णों का प्रयोग, टवर्ग आदि की ध्वन्यात्मक योजना बड़ी ही दर्शनीय है; जैसे—खरदूषण और रावण के युद्ध में—

"कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जटजूट बांधत सोह क्यों।
मरकत सयल पर लात दामिनि कोटि सों जुग भुजंग ज्यों।[१२२]

तथा

कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचही।
बेतालबीर कपालताल बजाइ जोगिनि नंचही।
रघुबीर बान प्रचंड खंडहि भटन्ह के, उर भुज सिरा।
जहं-तहं परहि उठि तरहि धर धरुधरु करहि भयकर गिरा।[१२३]

युद्ध की सजीवता छंद की भाषा से प्रकट है—

"ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह विविध विधि गोला चले।
घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बाढले।
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहि जहं सो तहं निसिचर हए।[१२४]

विनय तथा कृतज्ञता-ज्ञापन की भाषा, प्रसाद गुण एवं कोमल वर्ण-पुष्पों से संवारी गई है। यथा—

'सुंदर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकामहित निर्वानप्रद सम आनको।
जाकी कृपा लवलेखते मतिमंद तुलसीदास हूँ।
पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।[१२५]

यह छंद व्यापक अर्थ, सौंदर्य देनेवाला है। रसानुकूल, प्रसंगोचित भाषा का लालित्य छन्दगत वैशिष्ट्य प्रयोग से स्पष्ट है। वस्तुतः तुलसी के छंदों की विशेषता एक कठोर संयम है, जो हृदय के भावों को तीव्र और गम्भीर करके उन्हें विच्छृंखल रूप से अभिव्यक्त होने से रोकती है रामचरितमानस की प्रवृत्तियों को देखने से पता चलता है कि राम-भक्ति की अगाधता के साथ-साथ छंदों के क्षेत्र में पद योजना पर

भी कम ध्यान नहीं था। छंद के अनुरोध से कहीं-कहीं ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ के ह्रस्व कर देने की प्रवृत्ति मानस में भरी हुई हैं ; जैसे—

'केकिकंठाभनील' की जगह 'केकीकंठाभनीलं' कर दिया है तथा 'ब्रह्म शम्भु फणीन्द्र सेव्यम्' की जगह 'ब्रह्माशंभुफणीन्द्र सेव्यम्' हो गया है। छन्द पूर्ति के लिए चरणांत में तो हेर-फेर है ही, प्रारम्भिक शब्द में भी मात्राओं में वृद्धि हुई है 'विषय' के स्थान पर 'विषया' का प्रयोग—'विषया हरि लीन्हि न रहि बिरती।'[१२६] मात्रा-पूर्ति के लिए ही 'सुरेश' की जगह 'सुर ईश' लिखते हैं —'सोभा देखि हरषि मन, अस्तुति कर सुर ईस।[१२७] 'विनती' के स्थान पर 'वीनती' का प्रयोग—'बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो करि बीनती।'[१२८]

मानस में किसी-किसी अर्द्धाली की अल्पांशतः या सर्वांशतः आवृत्ति हो गई है, यह भी छन्द-विधान की दृष्टि से कवि का एक नूतन प्रयोग है। एक ही जैसी स्थिति दिखाने के लिए कवि ने ऐसी प्रवृत्ति अपनाई है; यथा—

१. नेहि पितु देइ सो पावइ टीका।२।१७५।३
   जेहि पितु देइ राज सो लहई,२।२०७।३
२. भूख न बासर नींद न जामिनि, २।२१।६
   भूख न बासर नींद न राती, २।२१२।१
३. सो सब जनु परि लेहि करि रहेऊ, १।१८३।१
   सो तेहि काज प्रथम जनु कीन्हा, २।७।१
४. निज हित अनहित पसु पहिचाना, २।१६।२
   हित अनहित पशु पच्छिउ जाना, २।२६४।४

मानस में दो ऐसी अर्द्धालियां हैं, जो दो स्थल पर प्रयुक्त हैं, परन्तु पद-योजना हूबहू वही है, तनिक भी परिवर्तन नहीं। राम जब शिव को पार्वती से विवाह करने की आज्ञा देते हैं, तो शिव कहते हैं, —

१. सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा।१।७७।२

भारत जब भरद्वाज के आश्रम पर पहुंचते हैं तो मुनि कंद, मूल, फल-फूल से आतिथ्य-सत्कार करते हैं और भरत से स्वीकार करने के लिए कहते हैं, तो भरत कहते हैं—

सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा,
परम धरम यह नाथ हमारा।२।२१३।३

भरत और शिव — दोनों की स्थिति यहां बिल्कुल एक समान है, यह दिखाने के लिए कवि ने एक ही चौपाई ही यहां भी रख दिया। इसी प्रकार राम, लक्ष्मण और सीता के रूप को देखकर ग्राम के स्त्री-पुरुष प्रेम सहित कहते हैं—

२. ते पितु मातु कहहु सखि कैसे, जिन्ह पठये बन बालक ऐसे।२।८६।२

इसी बीच में तापस प्रसंग आ जाता है। तापस के विरागी तेजपुंज वेष ने सबको अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। क्योंकि तापस 'पिअत नयन पुट रूप पियूषा।

एक वैरागी, जिनके रूप-पीयूष का पान कर रहा है, वे जंगल में कैसे भटकेंगे ? पुनः राम की सुकुमारता पर उनका ध्यान चला जाता है, और वे कहते हैं—

तें पितु मातु कहहु सखि कैसे—जिन्ह पठये बन बालक ऐसे ।२।१११।७

कहीं कहीं दोहों और चौपाइयों की मात्राओं में वृद्धि पाते हैं और छन्दोदृष्टि से पद-योजना को देखने वाले की दृष्टि यह तुलसी की असावधानी हो सकती है, पर ऐसा कहने से भक्त कवि तुलसी के, भावनात्मक तुलसी के हृदय से निःसृत अर्थ सौंदर्य से हमें वंचित रह जाना पड़ेगा। मात्रा वृद्धि में भी तुलसी का तत्प्रासंगिक बहुत बड़ा भाव छिपा रहता है। यहां कुछ उदाहरण दिए जाते हैं'—

१. राम, सीता और लक्ष्मण सहित वन-प्रस्थान कर रहे हैं। अवधवासियों की आशा, निराशा में परिणत हो गई। राम विप्र और गुरु के चरणों की वंदना कर चले, जिससे अयोध्यावासी अचेत हो गए। इस दृश्य के वर्णन में कवि ने चौथे चरण में एक मात्रा बढ़ा दी—

'सचि बन साज समाज सब, बनिता बंधु समेत।
बंदि बिप्र, गुरु चरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत ।।२।७६

यहां चतुर्थ चरण में ११ मात्राओं की जगह १२ मात्राएं हैं और यह मात्रा-वृद्धि इस प्रसंग के सौंदर्य में जान ला देती है, या यों कहिए कि मात्रा-वृद्धि से तुलसी का अपना अर्थ प्रकट होता है। राम के वन चलने में जब सब अवधवासी अचेत हो गए तो तुलसी का हृदय क्या पत्थर का था ? वे तो अत्यन्त भावुक थे। उनकी चेतना कैसे रहती ? तुलसी भी भावना के उस कारुणिक संसार में पहुंच जाते हैं और एक मात्रा की वृद्धि कर अपनी भी अचेत अवस्था का परिचय देते हैं। सचमुच में जिनके विरह में संपूर्ण नगर बेहोश है, तो राम के अनन्य भक्त तुलसी को सुधि कैसे रहे। यह है तुलसी के भावना-लोक का अनुपम व्यक्तित्व। लेकिन काशिराज संस्करण (सं० पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार 'चलें' में दो ही मात्राएं हैं ले का 'ए' ह्रास्व है।

२ रावण पर विजय के पश्चात् राम की आज्ञा से विभीषण ने पुष्पक विमान द्वारा आकाश से अनेक प्रकार के आभूषण, रत्न, वस्त्र आदि गिरा दिए और कपियों को जो अच्छा लगता है, लेते हैं। मणि को मुख में लेकर पुनः उगल देते हैं। राम यह देखकर हंसते हैं—इसी का वर्णन आगे है—

मुनि जेहि ध्यान न पावहि, नेति नेति कह बेद।
कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन, करत अनेक बिनोद ।।६।११७

यहां 'वेद' और 'विनोद' में तुकांत-साम्य नहीं है। विनोद और हास्य प्रसंग को दिखाने के लिए कवि ने जान-बूझकर तुकांत विषमता लाई है। दूसरी बात यह है कि मुनि जिसे ध्यान में भी नहीं पाते हैं, वे राम कपियों से विनोद करते हैं—यह कितना बड़ा अंतर ? यह सारा सौंदर्य 'वेद' और 'विनोद' का वैषम्य ही द्योतित कर रहा है। इसी तरह से पंचम सोपान में—

काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि, भजहु भजहिं जेहि संत ।।५।३८

विभीषण, रावण से कहते हैं, हे नाथ ! काम, क्रोध, मद, लोभ—ये सब नर्क के मार्ग हैं, इन सबको छोड़कर रघुबीर राम को भजो, जिन्हें संत भजते हैं। यहां रावण की विपरीत प्रकृति दिखाने के लिए कवि ने 'पंथ' और 'संत' का चरणांत रखा। दोनों एक-दूसरे के विपरीत। भला, संत के मार्ग पर दुष्ट, अत्याचारी चले। चरणांत-वैषम्य से कवि ने संकेत कर दिया कि नर्क के रास्ते पर चलने वाले पथिक संत के सन्मार्ग पर नहीं चलेंगे। यह सारी झंकृति चरणांत-वैषम्य से हो रही है।

लोभी लोलुप कल कीरति चहई।
अकलंकता कि कामी लहइ ॥१।२६७।३ (गीता प्रेस)

इसकी पहली अर्द्धाली में १६ की जगह १८ मात्राएं हैं। तुलसी के उद्देश्य से इसका सम्बन्ध जोड़ सकते है। जो पुण्यवाले हैं, सज्जन हैं, वे डरते-डरते 'कीरति' की आशा करते हैं और लोभी, लोलुप सिर्फ कीर्ति नहीं, सुन्दर कीर्ति चाहते हैं—यह दिखाने के लिए यदि १८ मात्राएं हैं, तो अनुचित नहीं कहा जा सकता है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा संपादित रामचरितमानस में 'लोभी, लोलुप' शब्द 'लोभ लोलुप' है, तथा वहां 'लो' का 'ओ' दीर्घ नहीं, वरन् ह्रस्व 'ओ' है। इसके अनुसार मात्रा-वृद्धि का दोष नहीं है।

उमा करत रघुपति नर लीला।
खेलत गरुड़ जिमि अहिजन मीला ॥६।६६।१ (गीता प्रेस)
खेल गरुड़ जिमि अहिगन मीला। ,, काशिराज संस्करण)

शिवजी कहते हैं, हे उमा ! जैसे सर्प-समूह के बीच में गरुड़ खेल करते हैं, राम की नर-लीला वैसी ही है। यहां राम की लीला और खेलना एक समान कहा गया है। लीला में या खेलने में कुछ देर तो लग ही सकती है, अतः 'खेलत गरुड़ जिमि अहिगन मीला' में १७ मात्राएं हैं। काशिराज संस्करण के अनुसार केवल 'खेल' के और तदनुसार १६ मात्राएं ही होती हैं।

अति सुकुमार जुगल मेरे बारे—निसिचर सुभट महाबल भारे।७।७।८
काशिराज संस्करण में मेरे' में दो मात्राएं हैं, क्योंकि वहां दोनों वर्णों के साथ 'ए' ह्रस्व है।

चौदह वर्षों के बाद राम अयोध्या आए हैं, सब तो प्रसन्न हैं, परन्तु कौशल्या आदि माताएं परम प्रसन्न हैं। महाबली राक्षस वीरों को राम के मारने की कहानी से माताएं जहां एक ओर हर्षित होती है, वहीं दूसरी ओर राम की कोमलता से सिहर जाती हैं। माताओं की प्रसन्नता हृदय में नहीं समा सकने के कारण शब्दों में जुट गई, जिससे १६ की जगह १८ मात्राएं हो गई। ये सारे उदाहरण तुलसी की भावना के अतिरेक से निःसृत उनके कला नैपुण्य के सूचक हैं। निष्कर्षतः तुलसी की निम्नांकित प्रवृत्तियां दिखाई पड़ती हैं—

१. प्रत्येक सोपान के प्रारम्भ के मंगलाचरण और बीच-बीच की कुछ स्तुतियों में वर्ण-वृत्तों का प्रयोग हुआ है। इसमें कवि की भक्ति, तथा संस्कृत वाङ्मय के प्रति उनकी श्रद्धा दिखाई पड़ती है।

२. मात्रा-वृत्तों में कहीं-कहीं चौपाई आदि को संस्कृत के ढांचे में ढालने का मंजु प्रयास किया गया है। जहां देवता, ऋषि, मुनि या भक्तों के द्वारा इष्टदेव के स्तवन का प्रसंग आता है, वहां त्रिभंगी, हरिगीतिका, चौपैया तथा संस्कृत छन्दों का प्रयोग कवि भाव-विभोर होकर करता है।

३. छन्दों की विषयानुकूलता पर तुलसी का अधिक ध्यान गया है। ऐश्वर्य और ओजस्विता के वर्णन के लिए कवि शार्दूलविक्रीड़ित छन्द को अधिक उपयुक्त समझते हैं। युद्ध-वर्णन के लिए तोमर, और हरिगीतिका, वस्तु-वर्णन के अनेक पक्षों के लिए हरिगीतिका, स्तुति या इतिवृत्त के लिए तोटक, शिव-स्तुति में तथा रामस्तुति में भुजंगप्रयात् और प्रमाणिका छन्दों का प्रयोग सार्थक है।

४. भाषा और छन्द-दोनों में तुलसी ने स्वच्छन्दता दिखाई है। तुक मिलाने के लिए अनेक शब्दों को विकृत किया है तथा अनेक ग्रामीण प्रयोग भी किए हैं। भावाभिव्यंजना के क्रम में नियम स्वतः गौण हो गए हैं।

५. तुलसी ने गणों के शुभाशुभ का इतना विचार रखा है कि प्रत्येक सोपान के प्रारम्भ में मगण (ऽऽऽ)ही रखा है। इससे तुलसी के विशद छन्द-ज्ञान और छन्द-विश्वास का परिचय मिलता है।

६. भावाभिव्यक्ति के लिए स्तुतियों की भाषा में लयात्मकता अधिक आ गई है, जिससे छन्द संगीत की भांति मधुर हो गया है।

७. छन्द-प्रयोग में कहीं-कहीं स्वच्छन्दता भी है, इससे लोक-प्रयोग की प्रवत्ति के संकेत मिलते हैं।

८. छन्दों की भाषा रसानुकूल तथा प्रसंगानुकूल है।

९. हर प्रकार के छन्द की भाषा में कुछ न कुछ भिन्नता पाई जाती है, और भाषा की दृष्टि से यह बिलकुल स्वाभाविक है।

१०. छन्दगत नियमों के पालन में भी स्वच्छन्दता दीख पड़ती है, लेकिन यह स्वच्छन्दता सोद्देश्य है, सार्थक है।

इस भांति "गोस्वामी जी की प्रबन्ध-धारा, मानो उनके संस्कृत वर्णिकों के शुभ्र-हिम-शिला-खंड से प्रसूत होकर चौपाइयों की समतल भूमि में सहज स्वाभाविक गति से चलती है, मार्ग में दोहों-सोरठों के मोड़ पर विश्राम करती हुई, समय-समय पर प्रसंग एवं भावावेश रूपवायु के झकोरों से विलोड़ित होकर अपनी मनमोहक लहरों में सजीव चित्र दिखाने के लिए हरिगीतिका, चौपैया, त्रिभंगी, प्रमाणिका, तोटक, तोमर आदि के क्षेत्र में अपनी इठलाहट दिखाती, कल-कल नाद करती हुई उत्तरोत्तर राम-सागर में लीन हो जाती है।"[१२९]

संदर्भ

१. छन्द; पादौ तु वेदस्य, पाणिनीय शिक्षा।
२. कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है। हमारे जीवन का पूर्णरूप, हमारे अन्तर प्रदेश का सूक्ष्म आकाश ही संगीतमय है। अपने उत्कृष्ट क्षणों में हमारा जीवन छन्द में बहने लगता है।—पन्त : पल्लव, प्रवेश, पृ० २१।
३. सूर साहित्य का छन्द : शास्त्रीय अध्ययन : डॉ० गौरीशंकर मिश्र, १९६९, पृ० १३।
४ ऑन वैदिक मिटर, घाटे, पृ० १८२।
५. मिट्टा की ओर : दिनकर, १९४६, पृ० १३।
६. रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि।
७. आइ० ए० रिचर्ड्स : प्रेक्टिकल क्रिटिसिज्म, पृ० १२२९।
८. सी० कॉडवेल : इल्यूजन ऐण्ड रियलिटी, पृ० २३।
९. वर्स इज़ बट ऐन ऑरनामेंट एण्ड नो कॉज टू पोयट्री—ऐन अपोलोजी आर पोयट्री।
१०. आइ फाइन्ड कनसीडरेब्ल मिनींग इन दि ओल्ड भल्गर डिस्टिक्शन ऑव पोयट्री बींग मेट्रिकल हेविंग म्यूजिक इन इट,—कोटेड इन स्टडी ऑव लिटरेचर, हडसन, पृ० ८९
११. अरस्तू का काव्यशास्त्र, डॉ० नगेन्द्र, सं० २०२३, पृ० २४।
१२. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत, पृ० ११४।
१३. प्रोज मे बी इमोटिव—पोयटिक, बट नेवर पोयट्री।
१४. मिट्टी की ओर : दिनकर, १९४६, पृ० ११३।
१५. वायोग्रेफीया लिटरेरिया : कॉलेरिज, चेप्टर १८। कोटेड इन प्रिन्सिपुल्स ऑव लिटरेरी क्रिटिसिज्म पृ० १४३।
१६. अरस्तू का काव्यशास्त्र, डॉ० नगेन्द्र, सं० २०२३, पृ० २५।
१७. 'रोमाणि छन्दांसि' : काव्यमीमांसा, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, १९५४, पृ० १३-१४
१८. पन्त : पल्लव की भूमिका, पृ० ४५-४६।
१९. जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त, डॉ० सुधांशु, १९६३, पृ० १००।
२०. उपरिवत्, पृ० १०८।
२१. "दि रिदम एण्ड मेजर ऑव पोयट्री, एलीवेटेड टू ए रेगुलरिटी, क्रियेटिंग एण्ड फोर्स आर ए पोयट ऑव इट्स परफेक्शन,"—कोटेड इन स्टडी ऑव लिटरेचर, हडसन पृ० ९०।
२२. प्रिन्सिपुल्स ऑव लिटररी क्रिटिसिज्म, आइ० ए० रिचर्ड्स, पृ० १३४।
२३. उपरिवत् पृ० १३९।
२४. उपरिवत्, पृ० १४०।
२५. उपरिवत्, पृ० १४९।
२६. उपरिवत्, पृ० १४३।
२७. दिस एकाउण्ट ऑव कोर्स, बाइ नो मीन्स कवर्स ऑल दि वेज बाइ ह्विच मीटर टेक्स एफेक्ट इन पोयट्री—प्रिन्सिपुल्स ऑव लिटररी क्रिटिसिज्म, पृ० १४५।
२८. पन्त : पल्लव, पृ० ३०-३१।
२९. निराला : परिमल, पृ० २१।
३०. दिनकर : मिट्टी की ओर, १९४६, पृ० ११४।
३१. गिरिजाकुमार माथुर का निबन्ध—'नाद-सिद्धान्त : ध्वनियों के मौलिक अर्थ' 'अस्तित्ववाद और नयी कविता' : प्रकाश दीक्षित, पृ० १२५ पर उद्धृत।
३२. श्यामसुन्दरदास : साहित्यालोचन, प्रयाग, १९५९, पृ० ९८।

३३. डॉ० गुलाबराय : सिद्धान्त और अध्ययन, दिल्ली, सं० २०१७, पृ० २४३।
३४. दि हिस्टोरिकल डेवलपमेण्ट ऑव मिडीवल हिन्दी प्रोसोडी—डॉ० माहेश्वरी प्रसाद सिंह 'महेश' पृ० १४८।
३५. पं० रामदहिन मिश्र : काव्य-दर्पण, पटना, १९५५, भूमिका, पृ० ३२।
३६. रामचरितमानस, १।६।९-१०
३७. मानस, १।२७।५।
३८. मानस, १।३००।३-४।
३९. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : गोसाईं तुलसीदास, वाराणसी, सं० २०२२ प्रथम संस्करण, पृ० ५७।
४०. डॉ० नगेन्द : अरस्तू का काव्यशास्त्र, पृ० ६१।
४१. डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' : जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त, १९६३, पृ० १३३।
४२. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी : रसज्ञ-रंजन, पृ० १४।
४३. आचार्य क्षेमेन्द्र : सुवृत्ततिलक।
४४. दिनकर. मिट्टी की ओर, १९४६, प० ८०।
४५. हडसन : दि स्टडी ऑव लिटरेचर, पृ० १५६-१५७।
४६. चन्द्रबली पांडेय—तुलसीदास; ना० प्र० सभा, काशी, सं० २०१४, पृ० १७६।
४७. डॉ० शिवनन्दन प्रसाद, छन्दशास्त्र, अनुपम प्रकाशन, १९७२, पृ० ३१।
४८. महादेवी वर्मा, संधिनी, इलाहाबाद, विद्यार्थी संस्करण, १९७०, पृ० २२।
४९. आचार्य क्षेमेन्द्र : सुवृत्ततिलक, ३।२२।
५०. मानस, १। श्लोक ६।
५१ नाट्यशास्त्र, १६-१७।
५२. पिंगल-सूत्र—७-८।
५३. डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु', जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त, १९६३, पृ० १११।
५४. मानस, १। श्लोक-७।
५५. मानस, ५। श्लोक-२।
५६. मानस, २। श्लोक-२।
५७. मानस, २। श्लोक-३।
५८. मानस, ५। श्लोक-३।
५९. मानस, ६। श्लोक-१।
६०. मानस, ७। श्लोक-१।
६१. मानस, ७। श्लोक-२।
६२. मानस, ७। श्लोक-३।
६३. मानस, ३।४।
६४. मानस, ७।१२२ग।
६५. मानस, ७।१०८।
६६. मानस, ३।२०।
६७. मानस, ६।१०१।
६८. मानस, ६।११३।
६९. राजपति दीक्षित : तुलसीदास और उनका युग, सं० २०१८, पृ० ३७७।
७०. डॉ० गौरीशंकर मिश्र, सूर साहित्य का छन्द : शास्त्रीय अध्ययन, १९६९, पृ० ६९।
७१. मानस, ६।१११
७२. मानस, ७।१४
७३. मानस, ७।१०१

७४. मानस, ७।१०२ ।
७५. मामस, १।१८३ ।
७६. मानस, १।१८४ ।
७७. मानस, १।१८६ ।
७८. मानस, १।१९२ ।
७९. मानस, १।१९२ ।
८०. भागलपुर विश्वविद्यालय पत्रिका 'केशवदास की 'छंदोयोजना' १९७२, पृ० १०९ ।
८१. मानस, १।२११ ।
८२. भानु, छन्दः प्रभाकर, पृ० ४८ ।
८३. रामचन्द्रिका, २९।२४, ३५, ३६, ३७ ।
८४ डॉ० शिवनन्दन प्रसाद, मात्रिक छन्दों का विकास, पृ० ३३५ ।
८५. डॉ० गौरीशंकर मिश्र, सूर साहित्य का छन्दः शास्त्रीय अध्ययन, १९६९; पृ० ८८ ।
८६. छन्दार्णव, भिखारीदास, ७।७,९।९५—छन्दः प्रभाकर, पृ० ८९ ।
८७. डॉ० गौरीशंकर मिश्र, सूर सा० का छन्द : शास्त्रीय अध्ययन, १९६९, पृ० ३२४ ।
८८. हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग-२, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, सं० २०१७, पृ० ३८३ ।
८९ मानस, १।१ ।
९०. मानस, ७।१३०ख ।
९१. राजपति दीक्षित, तुलसीदास और उनका युग, सं० २०१८, पृ० ३७२-७३ ।
९२. दिनकर, मिट्टी की ओर, पटना, १९४६, पृ० ८० ।
९३. हडसन, दि स्टडी ऑव लिटरेचर, पृ० १५७ ।
९४. सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव, पृ० ३३-३६ ।
९५ किशोरीदास वाजपेयी : हिन्दी शब्दानुशासन, सं० २०२३, पृ० ५४४ ।
९६. डॉ० शिवनन्दन प्रसाद, मात्रिक छन्दों का विकास, पृ० ३५६ ।
९७. डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' : जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त, १९६३, पृ० ११४ ।
९८. मानस, १।१०३ ।
९९. प्रथम सोपान में—१०, ५१, ८४, ८५, ८६, ८७, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, २३६, २६१, ३११, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३(२), ३२४(४), ३२५(४), ३२६(४) ३२७(४), ३३६, ३६१ ।
द्वितीय सोपान में—२५, ५०, ७५, १००, १२६, १५१, १७६, २०१, २२६, २५१, २७६, ३०१, ३२६ ।
तृतीय सोपान में—६, १८, १९, २०(४), २६, ३२(४), ३६, ४६ ।
चतुर्थ सोपान में—१०(२), ३० ।
पंचम सोपान में—३(३), ३५(२), ६० ।
षष्ठ सोपान में—४१, ४९, ७१, ७८, ७९, ८१(२), ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१(२), १०२, १०३(२), १०४, १०६, १०७, १०९ (२), ११३, १२१, १२१(२) ।
सप्तम सोपान में—२, ५(२), ६, १२(२), १३(६), २७, २८, २९, ९२, १३०(३) ।
१००. मानस, १।१० ।
१०१. राजपति दीक्षित, तुलसीदास और उनका युग, सं० २०१८, पृ० ३७५ ।
१०२. मानस, १।८४, ८५, ८६, ८७ ।
१०३. मानस, १।९३, ९४, ९५ से लगातार १०३ तक ।
१०४. मानस, १।२३६ ।

१०५. मानस, १।२६१
१०६. मानस, २।३११-३१६
१०७. मानस, १।३१७ से ३२७ तक, ३३६
१०८ मानस, २।क्रमशः २५, ५०, १००, १७६, २०१, २५१, २७६, ३०१, ३२६
१०६. मानस, ३।१८, १६
११०. मानस, ३।२६-३६
१११ मानस, ३।३२
११२. मानस, ४।३०
११३. मानस ५।३
११४. मानस, ५।३५
११५. मानस, ५।६०
११६. ६।४१; ४६; ७१; ७८; ७६; ८१ से लगातार १०१ तक।
११७. मानस, ६।क्रमशः १०२; १०६; १०४; १०६
११८. मानस, ७।२७५
११६ मानस, ७।६
१२०. मानस, ७।१२
१२१. मानस, ७।२७; २८; २६
१२२. मानस, ३।१८
१२३. मानस, ३।२०
१२४. मानस, ६।४६
१२५ मानस, ७।१३०
१२६. मानस, ७।१०१
१२७ मानस, ६।११२
१२८. मानस, ६।१२१।
१२६. राजपति दीक्षित : तुलसीदास और उनका युग : सं० २०१८; पृ० ३७८।

मानस की भाषा का तुलसी की अन्य अवधी-रचनाओं की भाषा से तुलनात्मक अध्ययन

तुलसीदास के नाम पर अनेक कृतियां मिलती हैं, पर विद्वानों और आलोचकों ने उनकी बारह कृतियों को प्रामाणिक माना है। वे ये हैं——

१. रामचरित मानस,	७. रामाज्ञा-प्रश्न,
२. रामलला नहछू,	८. दोहावली,
३. वैराग्य संदीपनी,	९. कवितावली,
४. बरवैरामायण,	१०. गीतावली,
५. पार्वती मंगल,	११. कृष्ण गीतावली,
६. जानकी मंगल,	१२. विनय पत्रिका।[१]

इनमें अवधी-रचनाएँ हैं——रामचरित मानस, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा-प्रश्न, दोहावली और बरवै रामायण। इनकी भाषा की आलोचना के लिए इनकी रचना-तिथि पर विचार करना आवश्यक है। क्योंकि इसके अभाव में भाषा के विकास का क्रम जाना नहीं जा सकता।

१. **वैराग्य संदीपनी**——यह एक मुक्तक काव्य है। तुलसी ने लिखा है——

तुलसी वेद पुरान मत पूरन शास्त्र विचार।
यह विराग संदीपनी अखिल ग्यान को सार॥७

इसमें कुल ६२ छंद हैं। डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने विषय-वस्तु तथा भाषा-शैली के कुछ तथ्यों का विवेचन कर इसे प्रामाणिक मानने से इनकार किया है।[२] और डॉ० कामिल बुल्के ने आंख मूंद कर इसे स्वीकार कर लिया।[३] परन्तु डॉ० उदयभानु सिंह ने डॉ० गुप्त के निराधार तर्कों का खंडन कर उसे तुलसी की कृति माना है, जो सचमुच उपयुक्त लगता है।[४] तुलसी की कृति मानने में परम्परा का मुख्य आधार है तथा हिन्दी साहित्य के प्रमुख आलोचकों ने इसे स्वीकार किया है। आचार्य चंद्रबली पाण्डे कहते हैं, "कोई कुछ भी कहता रहे, हमें तो लगता है कि यही तुलसी की पहली रचना है और यह वैराग्य की पहली संदीपनी है।"[५] अतः विद्वानों, आलोचकों के अनुसार तुलसी की ही कृति है, अब इसमें संदेह नहीं होना चाहिए।

श्यामसुन्दर दास के अनुसार इसकी रचना का समय सं० १६३६ से १६३६ के बीच का है।[६] रामनरेश त्रिपाठी ने भी इसे कवि की पहली कृति मानकर इसकी संभावित तिथि सं० १६२० लिखी है।[७] डॉ० उदय भानु सिंह के अनुसार यह लगभग सं० १६२६-२७ की कृति है।[८]

२. **रामाज्ञा प्रश्न** —डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने निम्न दोहे के आधार पर इसकी रचना-तिथि सं० १६२१ मानी है[९]—

सगुन सत्य ससि नयन गुन अवधि अधिक नय बान।
होइ सुफल सुभ जासु जस प्रीति प्रतीति प्रमान॥ ७।७।३

जो चंद्रबली पाण्डे के शब्दों में यह डॉ० गुप्त का शुद्ध भ्रम है। "तुलसीदास ने किसी भी अन्य ग्रंथ में इस प्रकार की तिथि देने का विचार नहीं किया है, प्रसंग भी तिथि का नहीं, शकुन देखने की विधि का है।"[१०] चंद्रबली पांडे तथा श्यामसुन्दर दास इसे सं० १६५५ की कृति मानते हैं।[११] लेकिन पं० सुधाकर द्विवेदी के अनुसार यह इस कृति का प्रतिलिपिकाल है।[१२] रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार इसका समय सं० १६२० है।[१३] डॉ० उदयभानु सिंह ने इसका रचना-काल सं० १६२७-२८ मानते हुए लिखा है कि "उसकी रचना-शैली, अप्रौढ़ होते हुए भी 'वैराग्य संदीपनी' की तुलना में कुछ विकसित है।"[१४]

३. **रामलला नहछू**—डॉ० माताप्रसाद गुप्त तथा सद्गुरु शरण अवस्थी ने इसे कवि की प्रारम्भिक कृति मानकर इसकी निर्मिति-तिथि सं० १६१६ मानी है।[१५] पार्वती मंगल, जानकी-मंगल और रामलला नहछू के प्रसंगों में साम्य होने के कारण रामनरेश त्रिपाठी इसकी तिथि सं० १६४३ मानते हैं।[१६] श्यामसुंदर दास ने भी दोनों 'मंगलों' का समय आसपास माना है।[१७] डॉ० रामकुमार वर्मा इसका समय 'मंगलों' के बहुत बाद मानते हैं।[१८] इसीलिए रामदत्त भारद्वाज इसकी रचना सं० १६६५ मानते हैं।[१९] डॉ० उदयभानु सिंह के अनुसार यह सं० १६२८-२६ के लगभग की रचना है और इसके समर्थन में उनके द्वारा दिये गए तर्क और उदाहरण अधिक संगतिपूर्ण हैं।[२०] अतः इसे सं० १६२८-२६ की रचना मानना अधिक संगतिपूर्ण है।

४. **जानकी मंगल**—डॉ० माताप्रसाद गुप्त इसकी रचना सं० १६२६ की मानते हैं।[२१] परन्तु रामनरेश त्रिपाठी इसे सं० १६४३ की कृति मानते हैं।[२२] नामकरण तथा भाषा में अत्यधिक साम्य होने के कारण ही त्रिपाठी जी ने वैसा माना है जो गुप्तजी की अपेक्षा अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। दोनों मंगलों की पद्धति और छंदो-व्यवस्था एक-सी है।[२३] डॉ० उदयभानु सिंह के विचारानुसार इसका रचना-काल सं० १६२६-३० के आस-पास है।[२४]

५. **रामचरितमानस**—कवि ने इसकी तिथि स्वयं दी है। उनके अनुसार इसकी रचना सं० १६३१ में हुई—

संबत सोरह सै एकतीसा।
करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥

नोमी भौमवार मधुमासा।
अवधपुरी यह चरित प्रकासा।। १/३४/४-५

६. **पार्वती मंगल**—इसकी रचना-तिथि कवि की दी हुई है। सं० १६४३ में इसका निर्माण हुआ—

जय संवत फागुन सुदि पाँचे गुरु बिनु।
अस्विनि बिरचेउँ मंगल सुनि सुखछिनु छिनु ।।

पार्वती मंगल-५

७. **दोहावली**—इसमें कुल ५७३ दोहे हैं। यह मुक्तक संग्रह है, अतः अनेक ग्रंथों के दोहे इसमें मिलते हैं। जैसे, मानस के ८५ दोहे, रामाज्ञा प्रश्न के ३५, वैराग्य संदीपनी के ७ और तुलसी-सतसई के १३२ दोहे मिलते हैं। इसमें भक्ति, ज्ञान, समाज, धर्म, राजनीति आदि विविध विषयों का वर्णन मिलता है। यह कवि के समय-समय पर लिखे गए दोहों का संग्रह है। डॉ० उदयभानु सिंह के अनुसार इसका रचना-काल सं० १६२६-८० है।[२५] रामनरेश त्रिपाठी इसका समय सं० १६२० से १६७१ तक मानते हैं।[२६] श्याम सुंदरदास इसका निर्माण सं० १६२८-८० मानते हैं।

८. **बरवै रामायण**—डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इसका समय सं० १६६१ से १६८० तक माना है।[२७] रामनरेश त्रिपाठी इसे सं० १६६० के लगभग की कृति मानते हैं।[२८] श्यामसुंदर दास इसको सं० १६६९ की कृति समझते हैं।[२९] डॉ० रामकुमार वर्मा भी ऐसा ही मानते हैं।[३०] रामदत्त भारद्वाज के कथानानुसार इसका रचना-काल सं० १६६९ के लगभग उचित है।[३१] डॉ० उदयभानु सिंह के अनुसार यह किसी एक समय की रचना नहीं है, बल्कि भिन्न-भिन्न समयों पर लिखित पद्यों का संकलन है।[३२] उनका कहना है कि " 'रामलला नहछू' और 'जानकी मंगल' के क्रम में 'बरवै रामायण की वर्ण्य वस्तु की संगति ठीक बैठ जाती है। भाषा की दृष्टि से इन रचनाओं में साम्य है।"[३३] अतः तुलसी की अवधी-रचनाओं की तिथियां इस प्रकार रखी जाती हैं[३४]—

आरंभकालीन—	१. वैराग्य संदीपनी,	लगभग सं०	१६२६-२७
	२. रामाज्ञा प्रश्न	,,	१६२७-२८
	३. रामलला नहछू	,,	१६२८-२९
	४. जानकी मंगल	,,	१६२९-३०
मध्यकालीन—	५. रामचरित मानस,	,,	१६३१
	६. पार्वती मंगल	,,	१६४३
मध्योत्तर कालीन—	७. दोहावली, लगभग	,,	१६२६-८०
	८. बरवै रामायण	,,	१६३०-८०

वैराग्य संदीपनी—अधिकांश आलोचकों की सम्मत्ति से यह तुलसी की प्रथम रचना है। कवि के प्रारम्भिक जीवन में भाषा अत्यन्त प्रौढ़ नहीं हो सकती। उन्होंने संत-लक्षण के माध्यम से कहा भी है—

सरल बरन भाषा सरल सरल अर्थमय मानि।
तुलसी सरलै संतजन ताहि परी पहिचानि ।।८

इसमें संत-स्वभाव, संत-महिमा तथा शांति का वर्णन किया गया है । इसकी भाषा बड़ी सरल है, सीधी-सादी है । संत-स्वभाव के वर्णन में कवि लिखते हैं—

अति सीतल अति ही सुखदाई । समदम राम भजन अधिकाई ।।
जड़ चेतन कौ करैं सचेता । जग माहीं बिचरत एहि होता ।।९

शांति के वर्णन में भी कवि की भाषा ऐसी ही है—

रैनि को भूषन इंदु है, दिवस को भूषन भानु ।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ग्यान ।।४३
ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग ।
त्याग को भूषन शांतिपद, तुलसी अमल अदाग ।।४४

इस पुस्तक के अंत की भाषा—

यह बिराग संदीपनी, सुजन सुचित सुनि लेहु ।
अनुचित बचन बिचारिकै, जस सुधारि तस देहु ।।६२

यद्यपि यह प्रारम्भिक कृति है, परन्तु संस्कृत की तत्सम शब्दावली भी पायी जाती है। फिर भी इसकी शैली तथा विचार-धारा में प्रौढ़ता और परिपक्वता नहीं है ।[३५]

रामाज्ञा प्रश्न— विद्या विचार की दृष्टि से यह कवि की मुक्तक रचना है । भाषा-शैली साधारण है । शकुन विचारने के लिए इसका निर्माण हुआ और इसी के व्याज से राम के चरित्र का वर्णन भी हुआ । इसकी भाषा सर्वत्र एक जैसी नहीं है । प्रकृति से लेकर जीव, जगत् बल, मानव, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि सबसे संबोधित दोहों का यह विचित्र संग्रह है । इसलिए विषय की विविधता के अनुकूल भाषा भी अनेक रूपों की हो गई है । तत्सम शब्दावली की प्रधानता तो इसमें भी मिलती है—

बानि विनायक अंब रवि, गुरुहर रमा रमेस ।
सुमिरि करहु सब काज सुभ, मंगल देस बिदेस ।।१।१।१
दशरथ राज न इति भय, नहिं दुखदुरित दुकाल ।
प्रमुदित प्रजा प्रसन्न सब, सब सुख सदा सुकाल ।।१।२।१

अलंकारमयी भाषा भी है—देखिए, अनुप्रास के कारण भाषा में एक सरसता आ गई है—

मन मलीन **मानी** महिप, कोक कोकनद वृंद ।
सुहृदय समाज चकोर चित, प्रमुदित परमानन्द ।।१।५।१

रूपकमयी भाषा का एक उदाहरण देखें—

राम नाम कलि कामतरु, राम भगति सुरधेनु ।
सगुन सुमंगल मूल जग, गुरुपद पंकज रेनु ।।५।१।१

सारांशतः, इसकी रचना-शैली शिथिल है, अप्रौढ़ है, फिर भी 'वैराग्य संदीपनी' की तुलना में अधिक विकसित है ।

रामलला नहछू—यह लघु खंडकाव्य है, जिसकी रचना हंसगति छंद में हुई हैं । इसकी विषय-वस्तु इस प्रकार है कि "रामचन्द्र और लक्ष्मण जी मिथिला में थे और वहीं एकाएक विवाह निश्चित हो जाने पर अयोध्या से बारात वहां आ गई थी, अतः यह

नहछू विवाह के समय का नहीं हो सकता। यह कर्णबेद्य, यज्ञोपवीत के अवसर का हो सकता है। कर्णवेद्य, यज्ञोपवीत या बारात के पहले चौक पर बैठने पर नाइन वालम या वर के पैरों में महावर लगाती है और नहरनी को पैरों के नखों से इस प्रकार छुलाती है मानों नख काट रही है। इसी प्रथा को नहछू कहते हैं।"[३६] इसकी भाषा अवधी है, सुसंस्कृत नही। जायसी का तरह ठेठ अवधी का माधुर्य इसमें मिलता है। संस्कृत शब्दावली के साथ-साथ उर्दू शब्दावली भी पायी जाती है। उर्दू का प्रयोग देखें—

दरजिनि गोरे गात लिए कर जोरा हो।
भइ निवछावरि बहुविधि जोजस लायक हो॥

कहीं-कहीं तो कवि ने उर्दू शब्दों में हिन्दी का उपसर्ग लगाकर शब्दों का निर्माण किया है। जैसे, "मौज" में 'सु' जोड़कर 'सुमोज' बनाना—

तत्पर करहिं सुमौज बहुत दुख खोवहिं हो।

सद्‌गुरु शरण अवस्थी ने लिखा है कि इसकी "भाषा फुदकती चलती है। इसकी भाषा में नर्तकी के पाद-विक्षेप का सा वग है। प्रत्येक पंक्ति में यौवनोचित विनोद और प्रकाश छलकता है।"[३७] डॉ० उदयभानु सिह मानते हैं कि इसमें अलंकारों का कम प्रयोग किया गया है और इसकी भाषा धारावाहिक तथा प्रसन्न है।[३८] इस संपूर्ण-पुस्तक में मात्र सोहर छंद का प्रयोग किया गया है, जो संख्या में बीस है। मांगलिक अवसर सोहर छंद का चुनाव जहां एक ओर उनका नारी-मनोविज्ञान की पहुंच दिखाता है, वहीं दूसरी ओर भाषा तथा छंद का सामजस्य भी प्रतिबोधित करता है। सोहर का प्रयोग विषयानुकूल तथा अवसरानुकूल है। इसमें मुख्यतः दो रसों का अच्छा परिपाक हुआ है—शृंगार और हास्य रस का। 'मानस' में कवि का शृंगार-वर्णन अत्यंत मर्यादित है, पर उसी दृष्टि से 'नहछू' का परीक्षण करना उचित नहीं है। प्रत्येक विषय-वस्तु का अपना महत्व है और कवि की सफलता इसमें है कि वह अपने प्रतिपाद्य को कितने कलात्मक ढंग से प्रस्तुत कर सका है। इस दृष्टि से 'नहछू' एक सफल कृति है।[३९] यह भाषा-शैली की दृष्टि से 'रामाज्ञा प्रश्न' की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसमें लोक संस्कृति की धरातल पर शृंगार-वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक बन पड़ा है—

कटि कै छीन बरिनिया छाता पानिहि हो।
चंद्र बदनि मृगलोचनि सब रस खानिहिं हो॥
नैन विसाल नउनिया भौं चमकावइ हो।
देर गारि रनिवास हि प्रमुदित गावइ हो॥८

हास्य रस का भी अच्छा वर्णन हुआ है—

काहे राम जिव साँवर लछिमन गोर हो।
कीदहुँ रानि कौसिलहि परिगा भोर हो।

अनुरणनात्मक शब्द-प्रयोग भी मिलते हैं। 'मानस' तो महाकाव्य है, पर इस छोटे से खंडकाव्य में ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग काव्य-कला की विशेषता है। यथा—

कर कंकन, कटि किंकिनि, नूपुर बाजइ हो।११

इसमें जन-साधारण की भाषा अधिक मिलती है, लेकिन कहीं-कहीं संस्कृत शब्दावली के भी दर्शन हो जाते हैं। इसमें अनेक अलंकार भी सहजता से आए प्रतीत होते हैं,

रूपक— गजमुक्ता हीरा मनि चौक पुराइय हो।
कनक खंभ चहुँ और मध्य सिंहासन हो।
मानिक दीप बराय बैठिते हि आसन हो।४
चन्द्र वदनि मृगलोचनि सब रस खानिहि हो।८

उपमा— कनक चुनिन सों लसित नहरनी लिए कर हो।१०

उत्प्रेक्षा— नख काटत मुसुकाहिं बरनि नहिं जातहिं हो,
पदुम राग मनि मानहुँ कोमल गातहिं हो ॥१५
दूलह के महतारि देखि मन हरषइ हो।
कोटिन्ट दीन्हेउ दान मेघजनु बरखइ हो ॥१६

यह पुस्तक ही पौराणिक रीत्यात्मक बिम्बों पर आधारित है। सामाजिक बिम्बों की इसमें माला ही मिलती है। चन्द्रवदनि 'मृगलोचनि', आदि विशेषणों से ऊपर के प्रसंग में विशेषता आ गई है। वक्रोक्ति-शैली भी इसमें अधिक व्यंग्य हो उठी है। ध्वन्यर्थ व्यंजना भी भाषा को सशक्तता देती है। पात्रानुसारी भाषा का उदाहरण भी इसमें मिलता है। नाइन तो ठीक रहती है, सबके घर जाती है, अतः उसकी भाषा में व्यंग्योक्ति की शक्ति अधिक है। जो बात अमर्यादित होने के कारण सब औरत नहीं कह सकती हैं, वह धड़ल्ले से कह देती है—

काहे रामजिव साँवर लछिमन गोर हो।
कीदहुँ रानि कौ सिलहि परिगा भोर हो ॥१२

इसमें कवि की लोक-सुधार-भावना अधिक स्पष्ट है। इसलिए आद्यन्त इसकी भाषा लोक धर्म पर टिकी हुई है। इस कारण, भाषा में प्रवाह एक समान है। इसकी प्रत्येक पंक्ति को पढ़ते ही ऐसा लगता है कि भाषा किसी ताल पर नृत्य कर रही है। छंद को पढ़कर यह आसानी से अनुभव किया जा सकता है। अतः इसमें सांगीतिकता भी आ गई है।

'मानस' की तुलना में भाषा की चित्रमयता इस पुस्तक में उस कोटि के और उतनी संख्या में तो नहीं है, पर कहीं-कहीं इसके प्रयोग अवश्य मिलते हैं—

१. आनन्द हिय न समाइ देखि रामहिं बर हो।१०
२. केसरि परम लगाय सुगंधन बोरा हो।६

इसकी शैली में शिथिलता नहीं है। यह कवि के विस्तृत व्यावहारिक ज्ञान का एक नमूना है।[४०] इस कृति में तुलसी का कवि-व्यक्तितत्व अधिक मुखरित है। इसमें लोक जीवन के विविध बिंब चित्रित हुए हैं।

जानकी मंगल—इसमें राम-जानकी के विवाह का वर्णन है। 'मानस' की कथा से इसकी कथा में कुछ भिन्नता है :—

(क) पुष्पवाटिका में राम-सीता का मिलन-वर्णन नहीं है। धनुष-यज्ञ से ही कथा का आरम्भ किया गया है।

(ख) इसमें लक्ष्मण के कोप करने के बाद विश्वामित्र की आज्ञा पर राम धनुष नहीं तोड़ते हैं, वरन् जनक के संदेह करने पर तथा विश्वामित्र के राम की महिमा कहने पर राम धनुष तोड़ते हैं।

(ग) इसमें विदाई के पीछे परशुराम आए हैं, धनुष-भंग के बाद नहीं।

भाषा-शैली की दृष्टि से वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्न, रामलला नहछू की अपेक्षा यह कुछ विकसित है तथा पार्वती मंगल की अपेक्षा कुछ कम परिष्कृत है। इसकी भाषा में सरलता और सुबोधता है—

हाथ जोरि करि विनय सबहिं सिर नावौं।
सिय रघुवीर विवाहु जथामति गावौं ।।२
सुभ दिन रच्यौ स्वयंबर मंगलदायक।
सुनत श्रवन हिय वसहिं सीय रघुनायक ।।३

कथा इसकी संतुलित है और वर्णन संक्षिप्त है। 'जानकी मंगल' का आधार ही संयोग शृंगार है। सीता आश्रय हैं और राम अवलंबन। यह शृंगार-वर्ण अद्वितीय मर्यादावादी कवि के द्वारा होने के कारण अत्यंत ही मर्यादित है।[४१] लोक रीति का वर्णन जहाँ है, भाषा इतिवृत्तात्मक है। लेकिन धनुष-यज्ञ के रंगमंच पर बैठे राम-लक्ष्मण के रूप-वर्णन में कवि की भाषा अलंकृत हो जाती है—

राजत राज समाज जुगल रघुकुलमनि।
मनहुँ सरद बिधु उभय नखत धरनी धनि ।।५५
काक पच्छ सिर, सुभग सरोरुह लोचन।
स्याम-गौर सतकोटि काम मद मोचन ।।५६
तिलक ललित सर भृकुटी काम कमानै।
स्रवन विभूषन रुचिर देखि मन माने ।।५७
नासा चिबुक कपोल अधर रद सुंदर।
वदन सर-विधु निंदक सहज मनोहर ।।५८

इस ग्रंथ में भी कवि का सर्वाधिक प्रिय अलंकार उत्प्रेक्षा ही है। इसके अतिरिक्त उपमा, रूपक, वृत्यनुप्रास, स्वभावोक्ति, रूपकातिशयोक्ति, संसृष्टि, यमक, पूर्णोपमा आदि हैं। अनुप्रास का एक उदाहरण—

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति।
सारद सेष सुकवि स्रुति संत सरल मति ।।१

लोक-रीतियों का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

चौंके पूरे चारु कलस ध्वज साजहिं।
विविध प्रकार गह गहे बाजन बाजहिं ।।२०५
बंदन वार बितान पताका घर घर।
रोपैं सफल सपल्लव मंगल तरुवर ।।२०६

पार्वती मंगल—इसकी भाषा संस्कृत-निष्ठ अवधी है। 'मानस' की पूर्ववर्ती रचनाओं में वर्ण्य-वस्तु तथा अभिव्यक्ति-कौशल में जो विकास आया है, वह क्रमिक

प्रतीत होता है। 'मानस' कवि की सर्वाधिक प्रौढ़, उदात्त, भव्य कृति है। इसके समापन के पश्चात् 'पार्वती मंगल' की रचना हुई। इसलिए यह स्वाभाविक है कि पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा इसमें भाषा की सशक्तता अधिक है। साधारण शब्दों की अपेक्षा संस्कृत शब्दावली की सघनता विद्यमान है। पहले की रचनाओं की अपेक्षा इसकी वर्णन शैली उत्कृष्ट है तथा भाषा में प्रसाद गुण का समावेश अधिक है। संस्कृतनिष्ठ, प्रसाद गुण-संपन्न अवधी का उदाहरण —

नित नव सकल कल्यान मंगल मोदमय मुनि मानहीं।
ब्रह्मादि सुर नर नाग अति अनुराग भाग बरवानहीं॥
पितु मातु प्रिय परिवार हरषहिं निरखि पालहिं लालहीं।
सित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंद्रभूषन भालहीं॥९

कहीं-कहीं तो संस्कृत-क्रिया-पद का भी प्रयोग कवि ने किया है—

वदति 'जननि जगदीस जुवति बिनि सिरजहिं' ॥२५

'मानस' की छाया 'पार्वती मंगल' में सर्वत्र है।[४२] यथा—

१. पुनि परिहरे सुखानेउ परना।
उमहिं नाम तव भयउ अपरना॥ मानस, १/७४/७
नाम अपरना भयउ परम जब परिहरे। पार्वती मंगल, ४३
२. अब सुख सोवत सोच नहिं भीख माँगि भव खाहिं। मानस, १/७९
भीख माँगि भव खाहिं, चिता नित सोवहिं। पार्वती मंगल, ५६

इसमें हंसगति और हरिगीतिका छंद का प्रयोग है। कुल छंद २१६ हैं। छंद का क्रम है आठ हंसगति के बाद एक हरिगीतिका का प्रयोग। छंद की यह योजना विषय-वस्तु के अनुसार है, खंडकाव्य के लिए तो यह बिल्कुल उपयुक्त है। डॉ० तिवारी के अनुसार छंद की यह योजना नहर के बीच-बीच में बनी हुई पानी को रोकने वाले बांध के समान है।[४३]

कृतियों के क्रमिक विकास की दृष्टि से भी इसकी भाषा में अनेक अलंकारों का प्रयोग आश्चर्यजनक बात नहीं है। उत्प्रेक्षा अलंकार अधिक हैं, यथा—

उमानेह बल बिकल देह सुधि बुधि गइ।
कलप बेलि बन बढ़त विषम हिम जनु हइ॥३२
तजेउ भोग जिमि रोग लोग अहिगन जनु।
मुनि मनसहु ते अगम तपहि लायउ मनु॥३८

एक ही पद में अलंकारों का जमघट भी है—

सरद संभु राकेस नखत गन सुरगन।
जनु चकोर चहुँ ओर बिराजहिं पुरजन॥१२७

उपमा— अवसि होइ सिधि साहस फलै सुसाधन।
कोटि कलपतरु सरिस संभु अवराधन॥२२

इसी तरह परिकर, लोकोवित, उदाहरण प्रभृति अनेक अलंकार पाये जाते हैं। इसमें एक प्रकार की क्षिप्र नाटकीयता आ गई है और उसके प्रवाह का निर्वाह भी आद्यंत

हुआ है। एक आलोचक प्रबंध और विषय-वस्तु की दृष्टि से इसे उत्तम बताते हैं।[४४] "इसका एक भी छंद शिथिल नहीं है, इसकी एक भी पंक्ति भरती की नहीं, इसका एक भी शब्द स्थानांतरित नहीं किया जा सकता। एक छोटे से काव्य में कवि की यह सचमुच में बहुत बड़ी सफलता है।"[४५] इसकी शैली में प्रसाद गुण अधिक पाये जाते हैं। शिव के बारात-वर्णन में अनेक ग्रामीण कौतुक तथा हास-परिहास का चित्रण किया गया है। "एक ग्राम्य बारात पर ही झिलमिलाता रोमैंटिक मिथकीय अवगुंठन उढ़ा दिया गया है।"[४६]

इसकी भाषा तो संस्कृतनिष्ठ अवधी है, कहीं-कहीं देशज और तद्भव के साथ संस्कृत शब्दों का संयोग भी बेहिचक किया गया है, यथा—

१. हिमाचल-गेह।८७

२. परिपायँ ससिमुख कहिजनायो आप-अधीनत।८३

लोकरीतियों के पालन का वर्णन है। गिरिराज हिमंचल ने अपनी पुत्री के विवाह में इन सबको नेवता पठाया—

गिरि, बन, सरित, सिंधु, सर सुनइ जो पायउ।
सब कहें गिरिवर नायक नेवति पठायउ।।६४

ये सबके सब सुन्दर वेष धर कर हिमंचल के घर गए। यह एक बहुत बड़ा पौराणिक मिथिकीय बिम्ब है, जिसका जीर्णोद्धार तुलसीदास ने किया। 'मानस' का बिम्बविधान तो अत्यन्त विस्तृत है, यहां जो भी बिम्ब प्रयुक्त हैं, उनमें अधिकतर का सम्बन्ध लोकाचार और लोक-संस्कृति से है तथा इससे पता चलता है कि तुलसी पौराणिक मिथ, प्रतीक, बिम्ब से काफी प्रभावित थे। अतः भाषा, भाव, आदि की दृष्टि से यह एक सुन्दर कृति है।

दोहावली—यह कवि का संग्रह-ग्रन्थ है समय-समय पर दोहे बनते गए और इसमें जुटते गए। इसमें भगवन्नाम-महात्म्य, धर्मोपदेश, नीति, भक्ति, आदि का वर्णन है। इसकी भाषा में एकरूपता तो है नहीं। अनेक विषयों के अनुकूल अनेक प्रकार की भाषाओं का विधान मिलता है। पर यह विधान विविधता की दृष्टि से है, और अल्पांश में साहित्यिकता की दृष्टि से। क्योंकि "दोहावली की रचना का आयाम 'वैराग्य संदीपनी' के रचनाकाल से लेकर कवि की वृद्धावस्था तक फैला हुआ है। उसके पद्य कवि के सम्पूर्ण साहित्यिक जीवन से सम्बन्धित हैं, वे काल-विशेष की कृति नहीं हैं।"[४७]

बरवै रामायण—यह भी भिन्न-भिन्न कालों की रचना है, जिसे बाद में संकलन का रूप दे दिया गया। यह कृति ऐसी है जिसमें तुलसी का कवि-व्यक्तित्व अधिक प्रस्फुटित हुआ है। यह 'मानस' की पूर्ववर्ती सभी रचनाओं से कवित्व की दृष्टि से उच्चकोटि की है। इसमें भाषा-प्रवाह की स्वाभाविकता पर ध्यान रखा गया है। कहीं-कहीं तो ठेठ शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, जैसे—कनखियनु, डहकु, कनगुरिया, कठौरता, निगानाम आदि। भाषा इसकी अत्यन्त अलंकारमयी है। "अलंकारों का जड़ाव ऐसा है कि लंकाकांड तक प्रत्येक 'बरवै' किसी न-किसी अलंकार का बहुत स्पष्ट उदाहरण प्रतीत होता है। मानो

अलंकार के उदाहरण के लिए ही इसका निर्माण हुआ हो।"[४८] भाषा का प्रवाह कहीं खंडित नहीं होता—

केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥१
राम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर ॥२

विविध रसों का वर्णन भी उत्कृष्ट है।

शृंगार— का घूंघट मुख मूँदहु अबला नारि।
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ॥१६
शांतरस— कामधेनु हरि नाम कामतरु राम।
तुलसी सुलभ चारि फल सुमिरत नाम ॥६२
तुलसी कहत सुनत सब समुझत कोय।
बड़े भाग अनुराग राम सन हो ॥६३

संस्कृत शब्दावली के कारण भाषा में एक विशेष तरह की कसावट आ गई है और कोमल पदों से सरसता—

स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम।
इनतें भइ सित कीरति अति अभिराम ॥३४
कलि नहिं ज्ञान विरागन जोग समाधि।
राम नाम जपु तुलसी नित निरुपाधि ॥४८

भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से यह कृति पहले की कृतियों से उत्तमोत्तम कही जाएगी। "पूरे महाकाव्य को दलितद्राक्षा की तरह निचोड़कर रस-परिपाक करने में जो सौंदर्य बिम्बों का शिल्पन, तथा कथा का चुने हुए प्रसन्न पदों में प्रतीक भावन हो सकता है, उसका यह उदाहरण है। इसके कुछ शब्द तो प्रतीकों बिम्बों-प्रयोजनों की नई संक्षिप्ततम सौन्दर्य भाषा का सूत्रपात करते हैं।"[४९] "वस्तुतः भाषा के कला-पक्ष की दृष्टि से तुलसी की सब रचनाओं से उत्कृष्ट है, अद्वितीय है।"[५०] इसमें तुलसी का कवि पूर्ण सजग है।

विधा की दृष्टि से तुलसी की अवधी-रचनाओं को इस रूप में रख सकते हैं—

१. प्रबन्धकाव्य—
 (क) महाकाव्य—रामचरित मानस
 (ख) खंडकाव्य —जानकी मंगल, पार्वती मंगल, रामलला नहछू।
२. मुक्तक—रामाज्ञा प्रश्न, दोहावली, बरवै रामायण तथा वैराग्य संदीपनी।

अवधी रचनाओं में दो रूप हैं—प्रबन्धकाव्य और मुक्तक। रामचरित मानस, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, रामलला नहछू प्रबन्धकाव्य के अन्तर्गत हैं तो रामाज्ञा प्रश्न, दोहावली, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी मुक्तक। प्रबन्ध और मुक्तक के कारण दोनों की भाषा में अन्तर है। प्रथम अन्तर तो यह है कि प्रबन्धकाव्य में विषय की विविधता के कारण भाषा भी विविध भंगिमाओं को अपनाती है, लेकिन मुक्तक काव्य में

ऐसी बात नहीं है। विषय-वैविध्य के कारण महाकाव्य की भाषा भी विविध प्रकार की हो जाती है। 'भाषा और शिल्प' अध्याय में इसका विस्तृत विवेचन किया गया है। यहां संक्षिप्त उदाहरण दिए जाते हैं।

प्रबन्धकाव्य में वस्तु-संगठन व्यवस्थित होता है। इसमें महान व्यापारों, महान चरित्रों के साथ-साथ गरिमापूर्ण शैली रहती है।[५१] इसमें काव्यत्व किसी कथानक पर आधारित रहता है, परन्तु मुक्तक में तो कथा रहती ही नहीं, इसलिए भी भाषा में अन्तर आ जाता है।

प्रबन्धकाव्य में विषय, अवसर, पात्र आदि के अनुसार भाषा अपना रूप परिवर्तित करती चलती है। देखिए, विवाह के वर्णन की भाषा में एक प्रकार की चहल-पहल है—

नयन नीर हटि मंगल जानी। परिछनि करहि मुदित मन रानी ॥
बेद बिहित अरु कुल आचाद। कीन्ह भली बिचि सब ब्यवहारु ॥
पंचसबद धुनि मंगल गाना। पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना ॥
करि आरती अरघ तिन्ह दीन्हा। राम गमन मंडप तब कीन्हा ॥

मानस, १।३१९

दुःखात्मक अवसर की भाषा भी उस दर्दनाक वातावरण को अभिव्यक्त करती हुई प्रतीत होती है। राम के वन-गमन पर दशरथ कहते हैं—

हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते।
हा जानकी लखन हा रघुवर। हा पितु हित चित चातक जलधर ॥

प्रेम की भाषा में सरसता तथा प्रसाद गुण दिखाई पड़ता है; यथा—

तत्त्व प्रेम कर यम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा ॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस एतनहिं माहीं ॥

परन्तु युद्ध की भाषा बिल्कुल कठोर ध्वनियों से परिपूर्ण हैं—

क्रुद्धे कृतांत समान कपितन स्रवत सोनित राजहीं ॥
मर्दहिं निसाचर कटकभट बलबन्त धन जिमि गाजहीं ॥
मारहिं चपेटन्हि डाटि दातन्ह काटि लातन्ह मीजहीं ॥
चिक्करहिंमर्कट भालु छल बल करहिं जेहि रण्ल छीजहीं ॥

मानस, ६/८१/१

कमठ खपर मढ़ि खाल निसान बजावहिं।
नर कपाल जल भरि यरि पियहिं पियालहिं ॥

पार्वती मंगल, १११

भावों की गहनता की स्थिति में भाषा अलंकृत हो जाती है—

रामनाम करके सरी कनक कसिपु कलिकाल।
जापकजन प्रह्लाद जिमि, पालहि दलि सुरलाल ॥

मानस, १/२७

मुक्तक काव्य में भी भाषा के अलंकृत रूप मिलते हैं परन्तु उनका कोई सांदर्भिक महत्व नहीं होता। विनोद की भाषा में मनोरंजकता, सफाई और अलंकृति, तीनों मिलते हैं, विनोद के प्रवाह में भाषा के बंधन तो वहां प्रायः गायब ही हो जाते हैं। देखिए, कपियों से विनोद करते समय की भाषा, जिसकी तुकान्तता भी हंसने में बझ गई है—

हँसे राजश्री अनुज समेता। परम कौतुकी कृपा निकेता।
मुनि जेहि ध्यान न पावहिं, नेति कह बेद।
कृपा सिंधु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक बिनोद।।

मानस, ६/१७७

मुक्तक काव्य में ये विशेषताएँ नहीं मिलतीं।

प्रबन्धकाव्य में किसी भी विषय का, चाहे वह मुख्य कथा हो या प्रासंगिक, पताका हो या प्रकरी, सांगोपांग वर्णन कवि करता है। 'मानस' में जिस भी प्रकार का वर्णन है, पूर्ण है। इसी तरह 'जानकी मंगल', 'पार्वती मंगल', 'रामलला नहछू' में भी। दोनों मंगलों में जानकी और पार्वती के विवाह का पूर्ण वर्णन हुआ है। 'मानस' में अनेक छोटे-छोटे प्रसंग हैं, लेकिन पूर्ण विवरण के साथ हैं, जैसे—गुरु-वंदना, संत-वंदना, राम-नाम-महिमा इत्यादि।

प्रबन्ध काव्य में पात्र अनेक स्तर के होते हैं। अतः पात्रों के कारण भी प्रबन्ध काव्य की भाषा में कई स्तर होते हैं, परन्तु मुक्तक काव्य में यह भी नहीं होता।

प्रबन्ध काव्य में पात्रों के अनुसार भाषा का विधान मिलता है। राम, सीता आदि पात्रों की भाषा भव्य है, उदात्त है, तो रावण आदि पात्रों की भाषा में उद्धतता। देवताओं की भाषा अलग है तो वानरों की भाषा पृथक्। राम और लक्ष्मण के स्वभाव में अंतर है, इसलिए दोनों की भाषा में भी अंतर है। नगर-निवासियों की भाषा में गांव एवं वनों में रहने वाले पात्रों की भाषा से अंतर है। केवट आदि की भाषा में लोकगत स्थानीय विशेषताएँ है तो उच्च वर्ग के पात्रों की भाषा में व्यापकता आदि।

मुक्तक काव्य में कथा-सूत्र के अभाव में विविध प्रकार के पात्र भी नहीं रहते। इनमें पात्र का नियमन तो प्रधानतया कवि ही करते हैं। इसलिए पात्रानुसारी भाषा का सौन्दर्य मुक्तक काव्य में नहीं मिलता।

प्रबन्ध काव्य तथा मुक्तक के प्रतिपाद्य विषय में भी अंतर अवश्य रहता है। तुलसी के प्रत्येक ग्रंथ का विषय अलग है तथा उनका उद्देश्य भी पृथक् है। उसके किसी भी ग्रंथ में पिष्टपेषण नही है।[९२] अतः प्रतिपाद्य के अंतर के कारण भाषा में अंतर का आ जाना स्वाभाविक है।

प्रबन्ध काव्य, सरसता एवं काव्यत्व के कारण ही महत्व रखता है, लेकिन मुक्तक काव्य में यह सरसता कम पायी जाती है। प्रबन्ध काव्य में सरस, नीरस, दोनों प्रकार की रचनाएं रहती हैं। इसमें नीरस पद्य भी प्रसंग के अनुरोध से सरस बन जाते हैं "पर रामचरित मानस के ऐसे ही रस गुण विहीन कितने ही दोहे उनके मुक्तक-संग्रह 'दोहा-वली' में भी संग्रहीत हैं। दोहावली में उन रचनाओं को नीरस कहा जाएगा, क्योंकि वे

वहां स्वतः कोई रस-व्यंजना नहीं करतीं और न उन्हें रस-व्यंजना में सहायता पहुंचाने का अवसर ही प्राप्त होता है।"[५३] 'मानस' की—

आगे चले बहुरि रघुराया।
रिष्यमूक पर्वत निअराया ।।

में कोई काव्यत्व नहीं है, फिर चूंकि यह कथा को आगे बढ़ाने में सहयोग देती है, इसलिए नीरस होते हुए भी सरस हो गई है। इसी भांति 'दोहावली' में बहुत से दोहे मानस से उद्धृत हैं, जो रसमयता की दृष्टि से शून्य हैं, पर 'मानस' में संदर्भ-युक्तता के कारण सरस।

व्याकरण की दृष्टि से भाषा का विवेचन करने पर यह स्पष्ट होता है कि राम-चरित मानस का कवि व्याकरण के बन्धन को स्वीकार करने वाला है। किन्तु कहीं-कहीं जान-बूझ कर भाषा में सौंदर्य लाने के लिए बन्धनों का उल्लंघन किया है और नये रूप भी लाये हैं।

शब्द-प्रयोग में 'मानस' की भाषा में व्यापकता अधिकतर है। इसमें तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज तथा विभिन्न प्रकार के स्थानीय प्रयोगों को ग्रहण किया गया है। अन्य अवधी रचनाओं में ये शब्द मिलते हैं, किन्तु स्वल्प संख्या में।

भाषा में साहित्यिकता और माधुर्य लाने के लिए संस्कृत की कोमल कान्त पदा-वली अत्यंत उपयुक्त समझी जाती है। 'मानस' में ऐसे प्रयोग बहुत हैं। सरल पदावली तो कुछ न कुछ सब ग्रंथों में है, पर 'मानस' की तरह उत्कृष्ट नहीं।

तद्भव शब्दों के प्रयोग में भी भाषायी रूप मिलते हैं। सूर की तरह तुलसी ने शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने की प्रवृत्ति नहीं अपनाई है। कहीं रूप-विकृत किया भी है तो उनका स्वरूप बहुत अधिक नहीं बिगड़ा है।[५४] यह प्रवृत्ति उनके सभी ग्रंथों में पायी जाती है।

विदेशज शब्दों को अपनाने में भी उन्होंने अवधी की प्रवृति के अनुसार उनमें ध्वनि-परिवर्तन किया है। कभी-कभी तो वे अरबी, फारसी शब्दों में हिन्दी के प्रत्यय, उपसर्ग लगाकर उन्हें स्वदेशी सांचें में ढाल कर प्रयोग करते हैं। जैसे—

बेवाक—बिबाकी : सहित सेन सुत कीन्ह बिबाकी।
अदाग—अदगि : तुलसी अमल अदगि।
जहास—जहाज : संकर चाप जहाज।

इसी तरह वैराग्य संदीपनी, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, रामाज्ञा प्रश्न, रामलला नहछू, दोहावली, बरवै रामायण आदि में ऐसे शब्द-प्रयोग हैं, पर 'मानस' की समकक्षता में अल्प।

व्यक्तित्व और भाषा के सम्बन्ध-विचार से 'मानस' के रचनाकार की भाषा के अनेक पक्ष मिलते हैं। 'मानस' की भाषा में वे एक साथ ही समाज-सुधारक, भक्त, कवि, दार्शनिक, पंडित हैं। इसका विस्तृत विवेचन 'भाषा और व्यक्तितत्व' अध्याय में किया गया है।

खंड-काव्यों में भाषायी मापदंड पर कवि के ये सब व्यक्तित्व नजर नहीं आते। खंड-काव्य में किसी एक प्रमुख अंग पर प्राधान्य रहता है। 'जानकी मंगल' में जानकी का विवाह तथा 'पार्वती मंगल' में पार्वती के विवाह का ही वर्णन है। इन दोनों कृतियों में तुलसी का आदि-रूप प्रधान हो उठा है। 'जानकी मंगल' का थोड़ा सा वर्णन देखें—

बार बिराज मंडप महँ बिमोहइ।
ऋतु बसंत बन मध्य मदन जानु सोहइ ॥१५५
जुवति जुत्य महँसीय सुभाय बिराजइ।
उपमा कहत लजाइ भारती भाजइ ॥१५८

'पार्वती मंगल' में भी विवाह का वर्णन काव्यात्मक भाषा में उपस्थित किया गया है, यथा—

सखी सुवासिनी संग गौरि सुठि सोहति।
प्रगट रूपमय मूरति जनु जग मोहति ॥१३८
भूषन बसन समय सम सोभा सो भली।
सुखमा बेलि नवजजनु रूप फलाने फली ॥१३६

इसमें विवाह सम्बन्धी सामाजिक रीतियों के निर्वाह में भी कवि ने अवसर से मुख नहीं मोड़ा है।

'रामलला नहछू' की भाषा में तुलसी का विनोदी तथा लोक संगीतज्ञ रूप मिलता है। इस कृति ने जन-मानस की रुचि में बहुत सुधार किया। तुलसी के पहले भी 'नहछू' सम्बन्धी गीत प्रचलित थे, पर उन गीतों में कुप्रवृत्तियां अधिक थीं। 'रामलला नहछू' में उन कुप्रवृत्तियों का शमन हो गया। इसकी भाषा में अत्यधिक सहजता तथा प्रवाह के कारण सांगीतिकता भी आ गई है। सचमुच में यह सुअवसरों पर गाने की कृति है। रचानाकार का कवि-रूप भी थोड़ा विद्यमान है—

१. कटि कै छीन बरिनिया छाता पानिहि हो।
चंद्रबदनि मृगलोचनि सब रस खानिहि हो।८
२. नख काटत मुसुकाहि बरनि नहिं जातहिं हो।
पदुमराग मनि मानहुँ कोमल गातहिं हो ॥१५

कवि की यह प्रारम्भिक रचना है, इसलिए कवित्व की दृष्टि से उतना विकास नहीं हो सका है।

मुक्तक रचनाओं में रामाज्ञा प्रश्न, दोहावली, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी है। रामाज्ञा प्रश्न तो शकुन विचारने के लिए निर्मित हुआ है। इसलिए भाषा का कहीं भी सुव्यवस्थित रूप नहीं नजर आता। राम-चरित के वर्णन के माध्यम से शकुन-विचार का वर्णन हुआ है। अतः मिथकीय चेतना पर आधारित कवि तथा समाज-सुधारक रूप सर्वत्र छाया है। दोहावली भी इसी प्रकार की रचना है। इसमें नीति, उपदेश, भक्ति, नाम महात्म्य पर रचित दोहे हैं। समाज-सुधारक रूप प्रमुख है। राम-विमुखता का परिणाम बताते हुए वे कहते हैं—

तुलसी परिहरि हरि हरहिं, पाँवर पूजहिं भूत।
अंत फजीहत होहिं गे, गनिका के से पूत ।।६५

संतोष-धन से मनुष्य सुखी रहता है—

तुलसी अद्भुत देवता आसा देवी नाम।
से ये सोक समर्पई, विमुख भये अभिराम ।।२५८

कपट-वृत्ति से समाज आगे नहीं बढ़ सकता—

हृदय कपट, बरवेषधरि, बचन कहहिं गढ़ छोलि।
अबके लोग मयूर ज्यौं, क्यों मिलिए मन खोलि ।। दो०-३३२
चरन चोंच लोचन रँग्यो, चलो मराली चाल।
छौर नीर बिबरन समय, बक उधरत तेहि काल ।।

तुलसी का ज्योतिष रूप इसमें 'मानस' से भी अधिक पुष्ट रूप में उभरा है। बारह नक्षत्रों में व्यापार करना चाहिए—

श्रुति गुन कर गुण पुजुग मृग, हयरेवती सखाउ।
देहि लेहि धनधरनि धरु, गयहु न जाइहि काउ ।।४५६

अर्थात् श्रवण नक्षत्र से लेकर तीन नक्षत्र (श्रवण, घनिष्ठा, शतमिक), हस्त नक्षत्र से लेकर तीन नक्षत्र (हस्त, चित्रा, स्वाती), 'पु' से आरम्भित दो नक्षत्र (पुष्प, पुनर्वसु), मृगशिरा, अश्विनी, रेवती तथा अनुराधा—इन बारह नक्षत्रों में धन और पृथ्वी का लेन-देन करने पर, धन जाता हुआ प्रतीत होने पर भी कभी नहीं जाएगा। इसी भांति कुछ नक्षत्र ऐसे हैं जिनमें गया धन कभी वापस नहीं होता—

अगुन पूगुन बिरज कृम, आ म अ मू गुन साथ।
हरो धरो गाड़ो दियो, धन फिरि चढइ न हाथ ।।४५७

अर्थात् उसे आरम्भित तीन नक्षत्र (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तरा भाद्रपद); 'पू' से आरम्भित तीन (पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वाभाद्र पद), वि-विशाखा, २-राहिनी, ज-ज्येष्ठा, कृ-कृतिका, म-मघा, आ-आद्रा, भ-भरणी, अ-अश्लेषा, मू-मूला,—इन पन्द्रह नक्षत्रों में चोरी गया, कहीं धरोहर रूप में रखा हुआ, भूमि में गाड़ा हुआ तथा उधार एवं ब्याज पर दिया हुआ धन फिर हाथ में नहीं आता।

कौन तिथियां किस दिन हानिकारक होती हैं, इसका भी वर्णन कवि ने किया है—

रबि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिक बार।
तिथि सब काज नसावनी, होइ कुजोग बिचार ।।४५८

अर्थात्, रव को द्वादशी, सोम को एकादशी, मंगल को दशमी, बुध को तृतीय, वृहस्पति को षष्टी, शुक को द्वितीया और शनिवार को सप्तमी पड़े तो कुयोग समझिए और ये सभी कार्यों को नष्ट करने वाली हैं।

दोहावली की भाषा में पंडित के साथ-साथ संत, उपदेशक और कवि-रूप भी है, पर 'मानस' की तुलना में स्वल्प।

'बरवै रामायण' में तुलसी का कवि-रूप 'मानस' से भी प्रौढ़ कहा जाता है। इसके सारे के सारे पद अलंकारों की मधुरिमा से सुशोभित है। प्रत्येक पद जैसे माधुर्य की चाशनी से निकाला हुआ हो। ऐसी उत्कृष्ट शैली 'मानस' को छोड़कर किसी भी कति की नहीं है। भाषा के कलात्मक प्रयोग कुछ ये हैं—

केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥१
भाल तिलक सर सोहत भौंह कमान।
मुख अनुहरिया 'केवल चन्द समान ॥६
कमल कंटकित सजनी कोमल पाइ।
निसि मलीन यह प्रफुलित नित दरसाइ ॥२६
सिय बिय्रोग दुख केहि बिधि कहौं बखानि।
फूल बान ते मनसिज बेधत आनि ॥४०

इस कृति के उत्तर काण्ड की भाषा में उसका भक्त रूप विराजमान है, जिसमें राम-नाम तथा शान्ति का उपदेश दिया गया है।

'वैराग्य संदीपनी' की भाषा से रचना कार का भक्त और ज्ञानी व्यक्तित्व प्रकट होता है। इसमें सन्त-स्वभाव, सन्त-महिमा तथा शान्ति का वर्णन किया गया है।

सन्त-स्वभाव—

सरल बरन भाषा सरल, सरल अर्थमय मानि।
तुलसी सरलै सन्त जन, ताहि परी पहिचानि ॥८
की मुख पट दीन्हें रहै, जथा अर्थ भाषंत।
तुलसी या संसार में, सो विचार युत सन्त ॥११

सन्त-महिमा—

अति अनन्य जो हरि को दासा। रहै नाम निधि दिन प्रति स्वासा ॥
तुलसी तेहि समान नहिं कोई। हम नीके देखा सब लोई ॥४०

शान्ति-वर्णन—

अति सीतल अति ही अमल, सकल कामनाहीन।
तुलसी ताहि अतीत गनि वृत्ति शान्ति लय लीन ॥४८
जो कोई कोप भरे मुख बैना।
सन्मुख हतै गिरा सर पैना ॥
तुलसी तऊ लेस रिस नाहीं।
सो सीतल कहिए जग माहीं ॥४६

यह कवि की आरम्भिक कृति है, इसलिए इसकी भाषा प्रौढ़ और परिपक्व नहीं है।

काव्य की रचना-प्रक्रिया की मूलाधार शक्तियों में से एक कल्पना भी है। प्रबन्धकाव्य में कवि की कल्पना परम उदात्त रहती है। 'मानस' की भाषा के सम्बन्ध में यह कहना सार्थक प्रतीत होता है कि इसकी भाषा पाठकों के लिए बोझ नहीं बनती। बल्कि सरस से सरस रहती है। यही कारण है कि पंडित से पंडित और मूर्ख भी इस

कृति का रसास्वादन बड़े चाव से करते हैं। 'मानस' की वस्तु के वैविध्य के अनुरूप विविध प्रकार की भाषा का विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि 'मानस' की कल्पना के दो प्रकार के पाठक हैं—भक्त पाठक और साहित्यिक पाठक। मानस की भाषा में काव्यत्व तथा भक्ति तत्व का सुन्दर सामंजस्य हुआ है। कोरा साहित्यिक पाठक 'मानस' का उच्चतम आनन्द नहीं ले सकता है, उसे भावुक-साहित्यिक होना चाहिये। पाठकों को इसकी भाषा को लेकर असुविधा का प्रश्न खड़ा नहीं होता।

अवधी-रचनाओं में रामलला नहछू, जानकी मंगल, पार्वती मंगल—ये खंड काव्य हैं। इन कृतियों के पाठकों को इनकी भाषा को लेकर न तो कठिन कल्पना के साथ चलना पड़ता है और न अतिशय भावुक होने की ही आवश्यकता है। इनकी भाषा ठेठ अवधी है, संस्कृत शब्दावली तो है, पर स्वल्प। जन-साधारण जिज्ञासु भी इनकी भाषा से भरपूर संतुष्टि प्राप्त कर सकता है। न इनमें कल्पना की प्रकर्षता है और न 'मानस' जैसा उत्कृष्ट काव्यत्व। 'नहछू' की सीधी-सादी भाषा सहजता की राह पर चलती है—

कोटिन्ह बजान बाजहि दसरथ के गृह हो।
देवलोक सब देखहि, आनन्द अति हिय हो।
नगर सोहावन लागत बरनि न जातै हो।
कौसल्या के हरष न हृदय समातै हो।।

रामलला नहछू-२

जानकी मंगल की भाषा का अधिकांश भाग इसी प्रकार का है—

हाथ जोरि करि विनय सबहिं सिह नावौं।
सिय रघुबीर बिवाहु जथामति गावौं।।२
सुभ दिन रच्यौ स्वयंबर मंगल दायक।
सुनत श्रवन हिय बसहि सीय रघुनायक।।३

'पार्वती मंगल' की भाषा इन दोनों की अपेक्षा अधिक अलंकृत है, इनका काब्यत्व प्रौढ़ है, फिर भी पाठकों को भाषा-सम्बन्धी कोई भी दुरूहता नहीं होती—

कवित रीति नहिं जानऊँ कवि न कहावउँ।
शंकर चरित सुसरित मनहिं अन्हवावउँ।।३
उमा नेह बस विकल देह सुधि बुधि गइ।
कलप बेलि बन बढ़त विषम हिम जनु हइ।।३२
प्रेम पाट पटडोरि गौरि हर गुन मनि।
मंगलहार रचेउ कवि मति मृगलोचनि।।१६३

मुक्तक काव्यों में 'रामाज्ञा प्रश्न', 'वैराग्य संदीपनी' कवि की प्रारम्भिक रचना है, इसलिए इनमें भाषा सरल ही है, दुरुहता इनमें नही है। 'दोहावली' में जहां कहीं ज्योतिषज्ञ, गणितज्ञ का रूप प्रकट हुआ है, उन स्थलों की भाषा वस्तुत: सर्वसाधारण-ग्राह्य नहीं है। 'बरवै रामायण' की भाषा तो आद्यंत आलंकारिक है। अत: साहित्यिक जहां इसकी भाषा से तृप्त होंगे, वहां साधारण पाठक अपनी शक्ति भर तो स्वाद लेंगे,

पर इस कृति की वास्तविक साहित्यिकता से वे अछूते रह जाएंगे। आलंकारिक भाषा के कुछ उदाहरण ये हैं—

सिय मुख सरद कमल जिनि किनि कहि जाइ।
निसि मलीन वह, निसिदिन यह बिग साइ ॥३
चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सोहाइ।
जानि परे सिय हियरे जब कुंभिलाइ ॥५

सारांशत 'मानस' के पाठकों के लिए काव्य शास्त्र का ज्ञाता होना ही अलम् नहीं है, उसके लिए भावुक होना भी अनिवार्य है, पर अन्य अवधी कृतियों के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है।

जहां तक काव्य भाषा और लोक भाषा का सम्बन्ध है, 'मानस' में जन-सामान्य की अवधी बहुत खोजने पर कहीं-कहीं मिलती है, क्योंकि इसमें काव्य भाषा को सर्वत्र बहुत ऊंचा उठाया गया है। लेकिन अन्य अवधी-रचनाओं में ऐसी बात नहीं है। रामलला नहछू, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, वैराग्य-संदीपनी आदि की भाषा तो ठेठ अवधी है, पर संस्कृत-निष्ठता भी बीच-बीच में मिल जाती है। इसी प्रकार दोहावली की भाषा भी है। मानसेतर अवधी-रचनाओं में पार्वती मंगल और बरवै रामायण की भाषा उच्च कोटि की कही जा सकती है, पर आद्यंत नहीं। 'मानस' में सर्वत्र काव्य भाषा ही व्याप्त है तथा अन्य अवधी रचनाओं में सर्वत्र-सामान्य अवधी है, काव्य भाषा यहां खोजने पर मिलती है तथा लोकधर्मिता का आग्रह अधिक है।

'मानस' में महाकाव्योचित भाषा का उत्कर्ष मिलता है। अन्य अवधी रचनाएँ दो कोटि की है—खंडकाव्य और मुक्तक। महाकाव्य की अपेक्षा खंड काव्य का क्षेत्र और विषय स्वल्प रहता हे, इसलिए महाकाव्य की भाषा से खंड काव्यों की भाषा में सहज पार्थक्य है। मुक्तक तो संग्रह रचनाएं हैं, काव्यत्व की कमी नहीं, पर भाषा परिपक्व भी नहीं।

छन्द का भी भाषा से एक सम्बन्ध रहता है। भाषा का भी अपना एक राग और लय होता है, जो छन्दों में प्रकट होता है। 'मानस' की भाषा में कुल इक्कीस प्रकार के छन्दों का प्रयोग कवि ने किया है। 'वैराग्य संदीपनी' में चौपाई, दोहा, सोरठा; 'रामलला नहछू' में हंसगति; 'जानकी मंगल', 'पार्वती मंगल' में हरिगीतिका और हंसगति; "बरवै रामयण' में केवल बरवै, रामाज्ञा प्रश्न में केवल दोहा, एवं 'दोहावली' में दोहा तथा सोरठा का प्रयोग हुआ है। अनेक छन्दों का विधान विविध भावों के प्रेषण में किया जाता है, इस दृष्टि से भी हम देखते हैं कि 'मानस' की भाषा में जो विशेषताएं हैं, वे अन्य अवधी-रचनाओं में नहीं हैं। मानसेतर रचनाओं में भी कोमलकान्त पदावली का प्रयोग मिलता है,

१. बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो।

रामलला नहछू-५

२. राम बाम दिसि जानकी, लषन दाहिनी ओर,
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तारे ।।

वैराग्य संदीपनी-१

३. सम सुबरन सुखामाकर सुखद न घोर।

बरवै-२

४. पाप नसावन पावन मुनि मन भावना

पार्वती मंगल-२

५. गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति,

जानकी मंगल-१

६. विनय पराग सुप्रेमरस, सुमन सुभग संवाद।
कुसुमित काज रसालतरु, सगुन सकोकिलनाय ।।

रामाज्ञा प्रश्न, १/५/४

७. सीता लषन समेत प्रभु सोहत तुलसीदास।
हरषन सुर बरषत सुमन सगुन सुमंगल बास ।।

दोहावली, २

कोमलकान्त पदावली के ये उदाहरण उन ग्रंथों में उतने नहीं हैं, पर 'मानस' में सर्वत्र ऐसी सरसता है। इसी भांति विशेषणों का सार्थक प्रयोग प्रतीक, बिम्ब, चित्रधर्मिता, अनुरणनात्मकता, रूपकत्व, औपम्य, विरोध, लय, प्रसंग-गर्भिता, गुण, रीति, अलंकार धारावाहिकता, सटीक वाक्य योजना, नूतन शब्द-विधान, लोकधर्मिता, आदि 'मानस' में गुंफित हैं, परन्तु अन्य अवधी रचनाओं में छिट-पुट रूप में मिलेंगे। इन सारे तत्वों का सर्वाधिक सुरम्य प्रयोग 'मानस' में ही मिलते हैं। 'यों तो उनके सभी ग्रंथ थोड़ा बहुत साहित्यिक उत्कर्ष प्रदर्शित करते हैं—भक्ति-भावना के साथ-साथ, पर सबसे अधिक प्रकर्ष रामचरितमानस में ही दिखता है। इसके समान दूसरा प्रबन्ध काव्य हिन्दी में नहीं बना।''[५५]

संदर्भ

१. रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी, वि० सं०-२००६, पृ० १४४।
२. डॉ० माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास, प्रयाग, १९६५, पृ० १३८।
३. डॉ० कामिल बुल्के, उद्धृत, हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, वाराणसी सं० २०२०, पृ० ९७५।
४. डॉ० उदयभानु सिंह, तुलसी-काव्य-मीमांसा, दिल्ली, १९६६, पृ० ७६-८१।
५. आचार्य चंद्रबली पांडे तुलसीदास, बाराणसी, सं० २०१४, पृ० ५७।
६. श्यामसुन्दर दास, गोस्वामी तुलसीदास, इलाहाबाद, १९५२, पृ० ७९।
७. पं० रामनरेश त्रिपाठी, तुलसीदास और उनका काव्य, दिल्ली १९५१, पृ० ११३।
८. डॉ० उदयभानु सिंह, तुलसी काव्य मीमांसा, दिल्ली १९६६, पृ० ८२।
९. डॉ० माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास, प्रयाग १९६५, पृ० २८१।

१०. तुलसीदास, पृ० ५८।
११. उपरिवत् पृ० ६१।
१२. बाबू शिवनंदन सहाय, गोस्वामी तुलसीदास, पटना, सं० २०१७, पृ० २८४ पर उद्धृत।
१३. रामनरेश त्रिपाठी, तुलसी और उनका काव्य, दिल्ली १९५१, पृ० २२०।
१४. डॉ० उदयभानु सिंह, तुलसी काव्य मीमांसा, दिल्ली, १९६६, पृ० ८७।
१५. डॉ० माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास, प्रयाग, १९६५, पृ० २८१।
१६. पं० रामनरेश त्रिपाठी, तुलसी और उनका काव्य, दिल्ली १९५१, पृ० २१७।
१७. उद्धृत, गोस्वामी तुलसीदास, रामदत्त भारद्वाज, दिल्ली १९६२, पृ० ३३३।
१८. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, इलाहाबाद, १९ ५८, पृ० ३९४।
१९. डॉ रामदत्त भारद्वाज, गोस्वामी तुलसीदास, दिल्ली १९६२, पृ० ३३३।
२०. डॉ० उदयभानु सिंह, तुलसी काव्य मीमांसा, दिल्ली १९६६, पृ० ९३।
२१. डॉ० माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास, प्रयाग १९६५, पृ० २८१।
२२. रामनरेश त्रिपाठी, तुलसी और उनका काव्य, दिल्ली १९५१, पृ० २१९।
२३. विश्वनाथप्रसाद मिश्र, गोसाईं तुलसीदास, वाराणसी सं० २०२२, पृ० २३७ तथा
डॉ० सियाराम त्रिवारी, हिन्दी के मध्यकालीन खंड काव्य, दिल्ली, १९६४, पृ० ८१।
२४. डॉ० उदयभानु सिंह, तुलसी काव्य मीमांसा, दिल्ली १९६६, पृ० ९४।
२५. उपरिवत् पृ० १३७।
२६. रामनरेश त्रिपाठी, तुलसीदास और उनका काव्य, दिल्ली, १९५१, पृ० २१९।
२७. डॉ० माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास, प्रयाग, १९६ ५, पृ० २८२।
२८. रामनरेश त्रिपाठी, तुलसी और उनका काव्य, दिल्ली, १९५१, पृ० २२०।
२९. श्यामसुंदर दास, गोस्वामी तुलसीदास, प्रयाग, १९३१, पृ० १००।
३०. डॉ० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, इलाहाबाद, १९५८, पृ० ३९९।
३१. डॉ० रामदत्त भारद्वाज, गोस्वामी तुलसीदास, दिल्ली, १९६२, पृ० ३३४।
३२. डॉ० उदयभानु सिंह, तुलसी काव्य मीमांसा, दिल्ली, १९६६, पृ० १३०।
३३. उपरिवत्, पृ० १३१।
३४. उपरिवत् पृ० १३७।
३५. उपरिवत् पृ० ८२।
३६. संपादक भय, तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खंड, काशी, सं० २०१५, वक्तव्य, पृ० २।
३७. सद्गुरुशरण अवस्थी, तुलसी के चार दल, प्रयाग, १९३५, पृ० ९१।
३८. डॉ० उदयभानु सिंह, तुलसी काव्य मीमांसा, दिल्ली १९६६, पृ० ९१।
३९. उपरिवत् पृ० ९२।
४०. रामनरेश त्रिपाठी, तुलसी और उनका काव्य, दिल्ली, १९५१, पृ० १९६।
४१. डॉ० सियाराम तिवारी, हिन्दी के मध्यकालीन खंड काव्य, दिल्ली, १९६४, पृ० २८०।
४२. पं० रामनरेश त्रिपाठी, तुलसी और उनका काव्य, दिल्ली, १९५१, पृ० १९३।
४३. डॉ० सियाराम तिवारी, हिन्दी के मध्यकालीन खंड काव्य, दिल्ली, १९६४, पृ० ३९२।
४४. चंद्रबली पांडे, तुलसीदास, काशी, सं० २०१४, पृ० १००।
४५. पं० रामनरेश त्रिपाठी, तुलसीदास और उनका काव्य, दिल्ली, १९५१, पृ० १९३।
४६. डॉ० रमेश कुंतल मेघ, तुलसी : आधुनिक वातायन से, प्रथम प्रकाशन, १९६७, पृ० १६ ५।
४७. डॉ० उदयभानु सिंह, तुलसी काव्य मीमांसा, दिल्ली, १९६६, पृ० १२५।

४८. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, गोसाईं तुलसीदास, काशी, सं० २०२२, पृ० २४३।
४९. डॉ० रमेश कुंतल मेघ, तुलसी : आधुनिक वातायन से, प्रथम सं०, १९६७, पृ० १६७।
५०. डॉ० देवकीनंदन श्रीवास्तव, तुलसीदास की भाषा, लखनऊ विश्वविद्यालय, सं० २०१४ वि, पृ० २६९।
५१. डब्ल्यू० एम० डिक्सन, इंग्लिश एपिक ऐंड हीरोइक पोएट्री, लंदन, १९२१ पृ० २४ ।
५२. चंद्रबली पांडे, तुलसीदास, काशी, सं० २०१४, पृ० २७४
५३. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग-२, काशी, सं० २०१६, पृ० ५४४।
५४. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कवितावली टीका, प्रयाग, सं० २०१३, । 'अंतदर्शन', पृ० १३।
५५. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, गोसाईं तुलसीदास, काशी, सं० वि० २०२२, पृ० १६।

रामचरितमानस की काव्यभाषा का स्वरूप

चित्रमयता (बिम्ब)

चित्रमयता भाषा का एक प्रधान गुण है, जिससे भाषा में रमणीयता आ जाती है। "चित्रात्मकता का अर्थ है शब्द या शब्दों द्वारा चित्र-निर्माण। काव्य में चित्र कभी विशेषण द्वारा निर्मित होते हैं, कभी उपमा-रूपक आदि अलंकारों द्वारा, कभी शब्द-विशेष द्वारा, कभी अनेक वाक्यों द्वारा, कभी सम्पूर्ण कृति द्वारा। चित्रात्मकता को काव्य का गुण माना जाता है। कुछ विचारकों के अनुसार तो काव्य की सबसे बड़ी शक्ति उसके चित्रों में ही होती है और कवि की श्रेष्ठता का परिचय भी उसके काव्य में उपलब्ध चित्रों से ही मिलता है, चित्रात्मकता को चित्रमयता, मूर्त्तिविधान या बिम्ब-विधान भी कहा जाता है।"[१] हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसे भाषा का महत्वपूर्ण अंग माना है।[२] चित्रमयता कविता के लिए परम आवश्यक है, क्योंकि भाषा संसार का नादमय चित्र है।[३] भाषा की चित्रात्मकता भारतीय काव्य शास्त्र में अर्थालंकारों से सीधा सम्बन्ध रखती है।[४] चित्रात्मकता के अभाव में भावप्रकाशन कभी-कभी दुरुह हो जाता है।[५] लैंबोर्न ने लिखा है कि—"इन डीड वी माइट इभेन से दैट दे इमेजेज ऑव पोएट्री आर मोर रिअल देन रिअलिटी।"[६] भाषा के बिम्बात्मक स्वरूप में यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि कवियों के व्यक्तित्व के अनुसार ही बिम्ब-निर्माण की प्रक्रिया और प्रकार, दोनों में भिन्नता आ जाती है। जायसी और तुलसी के बिम्बों में आने वाले अन्तरों का मूल कारण एक यह भी है। इसलिए 'शुक्ल' भी काव्य में बिम्ब-स्थापना को प्रधान वस्तु मानते हैं।[७]

बिम्ब भी भाषा की गरिमा, ऊर्जा और शक्ति के सम्पादन में योगदान देते हैं।[८] अनेक पाश्चात्य परिभाषाओं का विश्लेषण कर डॉ० नगेन्द्र ने बिम्ब की यह परिभाषा दी है —"काव्य-बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस-छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।"[९] वस्तुतः बिम्ब संवेग या मनोराग से अनुप्राणित एक शब्द-चित्र है।[१०]

रामचरित मानस एक अनुपम प्रबन्धकाव्य है और "प्रबन्ध-कवि अपने ढंग से छोटे-बड़े बिम्बों का प्रयोग करता है।"[११] तुलसी के बिम्बों में कल्पना की प्रचुरता है। मिथकीय बिम्ब में जादू, टोना, तंत्र-मंत्र, लोक विश्वासादि के कारण ज्ञान-पक्ष गौण रहता है। तुलसी ने बिम्बों के निर्माण में उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा इत्यादि अलंकारों का प्रयोग किया है। रामचरित मानस बिम्बों का एक मनोरम व्यापक क्षेत्र है। इसके अंगों

का सम्पूर्ण ओर समुचित विवेचन स्वयं एक ग्रन्थ बन जाएगा। यहां तुलसी की बिम्बात्मक भाषा के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहें हैं–

१. ऐन्द्रिय बिम्ब

(क) चाक्षुष—देखि रूप लोचन ललचाने।

(ख) स्पृश्य —परसत मृदुतल चरन अरुनारे।
सकुचत महि जिमि हृदय हमारे॥

(ग) श्रव्य —घन घमंड गरजत नभ घोरा।
प्रियाहीन डरवत मन मोरा॥ ४/१४

(घ) घ्रातव्य—अगर धूप बहु जनु अँधियारी।
उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी॥ १/१९५/४/४

(ङ.) रस्य —पद कमल परागा रस अनुरागा।
मम मन मधुह करै पाना। १/२११

'मानस' में ऐन्द्रिय बिम्ब तो प्रायः प्रत्येक छन्द में पाया जाता है।

२. शुद्ध प्राकृतिक बिम्ब

(क) नाथ देखि अहिं बिटप बिसाला।
पाकरि जम्बु रसाल तमाला॥
जिन्ह तरु वरन्ह मध्य बटुसोहा।
मंजु बिसाल देखि मन मोहा॥
नील सघन पल्लव फल लाला।
अविरल सुखद छाँह सब काला॥ २/२३७ तथा ४/२४

३. चित्रात्मक बिम्ब

(क) सुतीक्ष्ण मुनि से राम के मिलने पर वे दोनों ऐसे शोभित हुए—
मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला।
कनक तरुहिं जनु भेंट तमाला॥ ३/१०/२३

(ख) अशोक-वाटिका में सीता राम के ध्यान में मग्न हैं—
नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहि बाट॥ ५/३०

अनुभावों के चित्रण में ऐसे बिम्ब अधिक आए हैं।

४. भावात्मक बिम्ब

(क) सुनि मृदुबचन भू, हियँ सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि सोकू॥
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा॥
माथे हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोच लाग जनु सोचन॥
२/२९

(ख) सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहुं अनल आहुति घृत परई॥
२/३३/४

५. लोक-व्यवहार के बिम्ब

(क) दलकि उठेउ सुनि हृदयं कठोरू । जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ॥
२/२७/४

(ख) गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी । जनि दिनकर कुल होसि कुठारी ॥
२/३४/६

(ग) कण्ठ सूख मुख आब न बानी । जनु पाठीन दीन बिनु पानी ॥२/३५/२

(घ) चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि-पचि मरिअ ।

६. कवि-समय परक बिम्ब

(क) मनि मानिक मुकुता छबि जैसी । अहि गिरि गज सिर सोहत तैसी ॥
१/११/१

(ख) भ्राता पिता पुत्र उरगारी ।
पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥
होई बिकल सक मनहि न रोकी ।
जिमि रबि मनि द्रउ कबिहि बिलोकी ॥३/१७

(ग) जलद जनम भरि सुरति बिसारेउ । जाचत जल पबि पाहन डारेउ ॥
चातक रटनि पटें घटि जाई । बढ़ें प्रेम सब भाँति भलाई ॥
२/२०५/३-४

७. मिथकीय बिम्ब

(क) रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू । मानुहुँ अमित केतु अरु राहू ॥६/९२

(ख) जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहि । भूत पिसाच बधू नभ नंचहि ॥
भट कपाल करताल बजावहिं । चामुंडा नानाबिधि पावहिं ॥ ६/८८

(ग) जौं छबि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छपु सोई ॥
सोभा रजु मंदक सिंगारू । मथै पानि पंकज निज मारू ॥
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल ।
तदपि सकोच समेत कवि कहहिं सीय सम तूल ॥ १/२४७

८. धार्मिक-नैतिक-बिम्ब

(क) सुन्दरी सुन्दर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं ।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभुन्ह सहित बिराजहीं ।
मुदित अवधपति सकल सुत बंधुन्ह समेत निहारि ।
जनु पाए महिपाल मनि, क्रियन्ह सहित फलचारि ॥ १/३२५

(ख) ऊमरि तरु बिसाल तव माया । फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥
३/१३/६

(ग) राम नाम नरकेसरी कनक कसिपु कलिकाल ।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालहि दलि सुरसाल ॥ १/२७

नैतिक बिम्ब

दामिनि दमक रह न घन माहीं । खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ।
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ । जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ ॥
... ...
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना । जिमि इंद्रियगन उपजें ग्याना ॥
४/१४-१५

९. ब्रह्माण्ड-परक बिम्ब

(क) कुम्भकरन रन रंग बिरुद्धा । सनमुख चला काल जनु कुद्धा ॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई । जनु टीड़ी गिरि गुहाँ समाई ॥
६/६७/१-२

(ख) लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड ।
भजसि न मन तेहि राम को काल जासु को दंड ॥ ६/०/१

१०. शकुनापशकुनपरक बिम्ब

(क) अति आनन्द उमगि अनुरागा । चरन सरोज पखारन लागा ॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं । एहि सम पुन्य पुंज कोउ नाहीं ॥
२/१०१

(ख) बोलहिं खग जग आरति हेतू । प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू ॥
दस दिसि दाह होन अति लागा । भयउ परब बिनु रबि उपरागा ॥
मंदोदरि उर कंपति भागे । प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी ॥ ६/१०२

(ग) चारा चाषु बाम दिसि लेई । मनहुँ सकल मंगल कहि देई ॥
छेमकरी कह छेम बिसेखी । स्यामा बाम सुतरु पर देखी ॥ १/३०३

११. सूक्ति-दृष्टान्त-परक बिम्ब

(क) नव रसाल वन बिहरन सीला । सोहकि कोकिल बिपिन करीला ॥
२/६३/७

(ख) पायस पलिअहिं अति अनुरागा । होहिं निरामिष कबहुँकि कागा ॥
१/५/२

(ग) हँसहिं बक दादुर चातक हीं । हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही ॥
१/९/२

रामचरित मानस विविध प्रकार के बिम्बों से बिम्बित है। इस महाकाव्य में तुलसी का महाबिम्ब है 'राम'। "भारतीय प्रकृति के पर्यवेक्षण और अध्ययन द्वारा प्राचीन चित्रों, उपमानों को पुनर्जीवित करना, उनके प्रयोग और तुलना द्वारा नये पक्षों को ढूंढ लेना, और पूर्ववर्ती काव्यात्मक परम्परा में अविज्ञात नये चित्र-विधान का निर्माण तुलसीदास की विशिष्टता है।"[१२]

प्रतीक

प्रतीक से भाषा में सौन्दर्य आता है। "प्रतीक शब्द का प्रयोग इस दृश्य (अथवा अगोचर) वस्तु के लिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है। किसी अन्य स्तर की समान रूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है।"[१३] शब्दों का प्रचलित अर्थ जब अक्षम हो जाता है तब कवि प्रतीक द्वारा नये अर्थ की सृष्टि करता है।[१४] जिस तथ्य को साधारण भाषा व्यक्त नहीं कर सकती, प्रतीक उसे सहज ही अभिव्यक्त कर देता है। प्रत्येक शब्द अपने आप में एक प्रतीक है। जीवन के अन्य क्षेत्रों में व्यवहृत प्रतीकों से साहित्यिक प्रतीक अधिक व्यापक तथा भाव-सम्पन्न

होते हैं। प्रतीक रूप के द्वारा किसी आकारहीन अमूर्त्त की अभिव्यक्ति है।[१५] किसी सम्बन्ध (रिलेशन-शिप), सामंजस्य (एसोसिएशन) आदि से किसी दूसरी वस्तु का संकेत तो अवश्य मिलता है, परन्तु इसका उद्देश्य भाव-व्यंजना है, सादृश्य नहीं।[१६] ऊंची काव्य-कला सांकेतिक और प्रतीकात्मक होती ही है।[१७] आर्नल्ड हाउसर ने लिखा है—"सिंबोलिक लैंग्वेज इज द लेंग्वेज इन ह्विच द वर्ल्ड आउटसाइड इज ए सिंबॅल ऑव द वर्ल्ड इनसाइड, ए सिंबॅल फोर आवर सोल ऐण्ड माइण्ड।"[१८] प्रतीक विविध अलंकारों के माध्यम से भी अभिव्यक्त होता है। शब्द-संकेतों से अव्यक्त का व्यक्त होना प्रतीक है। प्रतीक उपमा या रूपक के संक्षिप्त संस्करण हैं। इसे रूपकातिशयोक्ति भी कहा जा सकता है क्योंकि उपमेय के स्थान पर उसमें उपमान प्रयुक्त होता है।[१९] प्रतीक का कार्य है भाव की अभिव्यंजना में सहायक होना। इसलिए कि व्यंजना गुण के कारण ही प्रतीकात्मक भाषा की सफलता समझी जाती है।[२०]

तुलसी की भाषा में प्रतीक-योजना भी मध्यकालीन मिथकीय चेतना के आधार पर अवलम्बित है। इनके प्रतीक सब क्षेत्र के तथा सब प्रकार हैं। इनके प्रतीकों में धार्मिक चेतना के स्रोत पाए जाते हैं। "धार्मिक भाषा में कवि या रहस्यवादी प्रतीकों से अनुशासित न होकर खुद प्रतीकों पर अनुशासन करता है।"[२१] इनके प्रतीकों में बिम्ब भी सहायक हैं।

यहाँ पर कुछ उदारण दिए जाते हैं—

अरुन पराग जलज भरि नीके।
ससिहि भूषअहि लोभ अमी के॥ १/३२५/६

यहां राम-सीता के विवाह का प्रसंग है। राम-सीता के सिर में सेंदुर दे रहे हैं—इसी दृश्य का वर्णन कवि ने प्रतीक-शैली में किया है। कवि कहते हैं कि कमल को लाल पराग से अच्छी तरह भरकर अमृत के लोभ से सांप चन्द्रमा को भूषित कर रहा है। यहां राम का हाथ कमल का प्रतीक है, सेंदूर पराग का प्रतीक है, राम की श्याम भुजा सांप का प्रतीक है और सीता का मुख चन्द्रमा का प्रतीक है।

सुनिअ सुधा देखि अहि गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल॥ २/२८१

यहां अमृत सुख का प्रतीक है और गरल दुःख का। कौआ, छली-प्रपंची व्यक्तियों का प्रतीक है, उल्लू ज्ञान-दृष्टि-रहित व्यक्ति का, बगुला, हिंसक प्रवृत्ति का और मराल (हंस) सात्विक प्रवृत्ति का प्रतीक है।

'मानस' में हंस क्षीर-नीर-विवेकी संत का प्रतीक बनकर आया है, जिसे कवि ने रूपक अलंकार के माध्यम से कहा है :—

सगुन खीर अवगुन जल जाता। मिलइ रचइ परपंच बिधाता।
भरत हंस रबि बंस तड़ागा। जननि कीन्ह गुन दोष-विभागा॥

छली, मलिन, किसी पर विश्वास नहीं करने वाले व्यक्ति का प्रतीक कौआ है। इसलिए इन्द्र के स्वभाव का वर्णन करते हुए कवि उपमा अलंकार के सहारे कहते हैं :—

काक समान पाकरिपु रीती। छली मलिन कतहुँ न परतीती॥

मीठी बोल का प्रतीक कोमल है :—

सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी ।। २/११७

हिंसावृत्ति का प्रतीक बगुला है और मराल शान्तिप्रिय अहिंसक व्यक्ति का प्रतीक है। सत्संग की महिमा का वर्णन करते हुए तुलसी ने लिखा है—

मज्जन फल पेखिअ तत्काला। काक होहिं पिक बकउ मराला ।। १/३/७

चोर, जुआरी, परदार लम्पट तथा परधन हारी, माता-पिता बड़े पूज्यों को नहीं मानने वाले, सज्जनों से अपनी सेवा करवाने वाले लोगों का प्रतीक है राक्षस। तुलसी का 'राक्षस' प्रगतिशील महाकवि के व्यक्तित्व का द्योतक है—

बाढ़े खल बहुचोर जुआरा। जे लंपट पर धन पर दारा।।
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।।
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सब प्रानी।।
१/१८४/१-३

गाय, बिल्कुल सीधापन का प्रतीक है। इसलिए जब पृथ्वी रावण के भयंकर पाप से ऊब गई तो गाय का रूप धारण कर देवताओं से प्रार्थना करने गई—

सकल धर्म देखइ बिपरीता। कहि न सकइ राव न भयभीता।
धेनु रूप धरि हृदय बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी।।
१/१८४/६-७

भौंरा कहीं वाणी का प्रतीक बनकर आया है तो कहीं आत्मा का—

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी।

तथा

पद कमल परागा रस अनुरागा मन मन मधुप करै पाना।।

दीपशिखा, कहीं दिव्यप्रकाश का प्रतीक है, तो कहीं प्रमदा नारी का और पतंग वासना की आग में जलने वाले मनुष्य का प्रतीक बन गया,—जिसे कवि ने उत्प्रेक्षा और उपमा अलंकार में कहा है—

छबि गृह दीप सिखा जनु बरई।
दीपसिखा सम जुवति तन मन जनि होसु पतंग ।।

कामधेनु भक्ति का प्रतीक है—

जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं ।।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहिं पय लागी ।। ७/११५/१-२

कल्पतरु, मनचाहे सुख देने वाले का प्रतीक है—

जथा दरिद्र बिबुध तरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई ।। १/१४६/४

गंगा नदी, पवित्रता, कष्ट निवारिणी तथा सब प्रकार के सुख देने वाले का प्रतीक है—

गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला।।

सर्वाधिक मूल्यवती भक्ति का प्रतीक है मणि—

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें।।
चतुर सिरोमनि ते जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं।।७/१२०

तुलसी की भाषा में प्रतीक का अप्रतिम सौन्दर्य है। प्रतीकमयी भाषा का एक सुन्दर उदाहरण देखें, जहां विविध प्रतीक एक ही स्थल पर संगुफित हैं। सीता के वियोग में राम की प्रतीकात्मक भाषा इस प्रकार की है—

हे खगमृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृग नैनी।।
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकल कोकिला प्रबीना।।
कुंदकली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी।।
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।।
श्री फल कनक कटलि हरवाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं।। ३/३०

इस भाषा में निम्न प्रतीक प्रयुक्त हैं—

खंजन, हिरण, मीन, कमल	—नेत्र,	अहि	—चोटी (लट)
शुक	—नाक,	वरुण पाश	—कंठ-रेखाएं, मुस्कान,
कपोत	—गर्दन,	कामदेव धनुष	—भौंह,
मधुप निकर	—काले बाल,	हंस और गज	—चाल,
कोयल	—मीठी बोल,	केहरी	—कमर,
कुंदकली और अनार	—दन्ति,	श्री फल	—स्तन-युग्म,
दामिनी	—दांतों की चमक,	कनक	—वर्ण, कांति,
शरद कमल शशि	—मुख,	कदली	—जंघा।

प्रतीकात्मक भाषा के चलते सीता के शृंगार-वर्णन में एक तो व्यंजकता बढ़ गई, जो वियोग शृंगार की अपनी विशेषता है और दूसरी ओर कवि का मर्यादावादी रूप भी सुरक्षित रह गया, क्योंकि 'मानस' में तुलसी की प्रवृति देखी जाती है कि सीता या पार्वती के शृंगार-वर्णन का जहां भी अवसर मिला है, वहां थोड़े शब्दों में उसका संकेत भर कर देते हैं तथा पुत्रत्व की भावना से यह कह देते हैं कि—

'जगत मातु सर्वग्य भवानी। तेहि सिंगार न कहऊँ बखानी'

'चातक' तुलसी की अनन्य भक्ति का प्रतीक है—

चातक रटनि घण्टे घटि जाई। बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई।।

'शत कोटि' संख्या वाचक विशेषण से युक्त मिथ परक प्रतीकमयी भाषा से कवि ने राम का जो वर्णन किया है, शिल्प सौंदर्य की दृष्टि से मनोहर है—

राम काम सतकोटि सुभगतन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन।।
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा।।

प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला।।
तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूरा नसावन।।
७/९१-९२

प्रतीक की दृष्टि से देखें तो तुलसी का संपूर्ण 'मानस' ही प्रतीकात्मक कथा पर अवलंबित है। राम सत् प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं तो रावण असत् वृत्तियों का। 'मानस' की भाषा में क्षीर-नीर-मिश्रण की भांति ही प्रतीकात्मक भाषा के दर्शन होते हैं।

भाषा में सरसता, सरलता, प्रवाह, चमत्कार इत्यादि के वर्धन में मुहावरे और लोकोक्ति का महत्व भी अपना है। दोनों से विलक्षण अर्थ की प्रतीति होती है। अन्तर यह है कि जहां मुहावरे प्रसंग में वाक्य के अन्तर्गत ही प्रयुक्त होते हैं, वहां लोकोक्ति का प्रयोग विषय को स्पष्ट करने के लिए बिल्कुल स्वतंत्र रूप से होता है। कहावत किसी कहानी या चिर सत्य के आधार पर निर्मित होते हैं। इनके प्रयोग से भाषा में विलक्षणता आती है, इसलिए सभ्य और संस्कृत समाज में इनका प्रचलन अधिक है।

मुहावरे से भाषा की व्यंजकता और बढ़ जाती है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने मुहावरे को 'वाग्योग' कहा है। उनके अनुसार "भाषा में विशेष प्रकार का वाग्योग उसके शक्ति-सामर्थ्य का व्यंजक है। मार्मिकता के लिए प्रत्येक समर्थ भाषा वाग्योगों का अधिक व्यवहार करती है।"[२२] महावीर प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि "मुहाविरा ही भाषा का प्राण है, उसे जिसने नहीं जाना, उसने कुछ नहीं जाना। उसकी भाषा कदापि आदरणीय नहीं हो सकती।"[२३] इससे भाषा की वाग्धारा में एकलयता आ जाती है, जिससे आकर्षण की शक्ति अधिक बढ़ जाती है। कभी-कभी अलंकारों के साहचर्य में भी ये अपना प्रभाव दिखाते हैं।

इसी भांति कहावत भी भाषा में लाक्षणिकता लाते हैं, पर मुहावरे की तुलना में कुछ कम। कहावत किसी विशिष्ट समुदाय में प्रचलित कोई ऐसा वाक्य है, जिसे लोक-अनुभव पर आश्रित, जीवन की सारभूत समीक्षा कहा जा सकता है।[२४] कहावत में यह शक्ति रहती है कि वह थोड़े में ही किसी सर्वमान्य सत्य को प्रकट कर दे।[२५]

रामचरित मानस में मुहावरे और लोकोक्ति के ऐसे सुन्दर प्रयोग किए गए हैं, जिनसे भाषा-प्रवाह में सजीवता, सशक्तता तथा चित्त-स्पर्शिता के गुण आ गए हैं। 'मानस' की भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति बढ़ गई है। यहां दोनों के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

मुहावरे—

१. दलक उठना—दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू।
२. जल पर भीत उठाना—चहत बारि पर भीति उठावा।
३. ठकुर सोहाती कहना—हमहुँ कहबि अब ठकुर सोहाती।२।१६
४. गाल करना—गाल करब केहि कर बल पाई। २।१४
५. मुंह काला करना—करिआ मुँह करि जाहि अभागे।

६. डाल पर बैठकर पेड़ काटना—पालव बैठि पेड़ यहि काटा ।२।४७।५
७. तृन तोड़ना—पुरनारि सुर सुंदरी बरहिं बिलोकि सब तिन तोरही ।
१।३२७
८. जड़ उखाड़ना—जरि तुम्हारी चह सबति उखारी ।२।१७।८
९. रेखा खींचना—रेख खेंचाइ कहऊँ बलु भाखी ।२।१९।७
१०. दूध की मक्खी होना—भामिनि भयहु दूध कइ माखी ।।२।१९।७
११. छाती जुड़ाना—मागहु आज जुड़ावहु छाती ।२।२२।५
१२. आंख की पुतली बनना—करौं तोहि चख पूतरि आली ।२।२३।३
१३. जले पर नमक छिड़कना—मानहुँ लोन जरे पर देई ।२।३०।८
१४. आग में घी पड़ना—मनहुँ अनल आहुति घृत परई ।२।३३।४
१५. चित्त चुराना—माथे महामुनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं ।१।३२७

लोकोक्ति

१. जैसा काछना, वैसा नाच—जस काछिअ तस चाहिअ नाच ।२।१२७।८
२. जुआरी को अपना ही दाव सूझता है—सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ ।
३. जहां गड्ढा होगा वहीं पानी भरेगा—अन्तहुँ कीच तहाँ जहँ पानी ।
४. विधाता का लिखा अमिट है—
कह मुनीस हिम बंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार ।
देवदनुज नर नाग मुनि कोउ न मेट|निहार ।१।६८
५. बांझ औरत प्रसव की पीड़ा नहीं जानती—बांझ कि जान प्रसव कै पीड़ा ।
१।९७।४
६. कुसंगति से किसका नाश नहीं होता—को न कुसंगति पाइ नसाई ।
७. कोई राजा तो हमें क्या मतलब ?—कोइ नृप होउ हमहि का हानी ।२।१६।६
८. अपना हित-अहित पशु भी समझता है—निजहित अनहित पसु पहिचाना ।
९. यहां कोंहड़े की बतिया कोई नहीं है कि तर्जनी देखते ही मर जाय—
इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं । जे तरजनी देखि मरि जाहीं ।
१।२७३।३
१०. आपने अच्छे घर में बैना दिया है—
भले भवन अब बायन दीन्हा ।
पावहुगे फल आपन कीन्हा ।।१।१३७।५
११. एक ही बार में सब आशा पूरी हो गई, अब दूसरी जीभ से क्या कहना ?—
एकहिं आस सब पूजी ।
अब कछु कहब जीभ करि दूजी ।२।१६।१
१२. जो जस करइ सो तस फल चाखा ।२।२१९।४
१३. सुधा सराहिइ अमरता गरल सराहिअ मीचु ।१।५
१४. कहइ करहु किन कोटि उपाया ।
इहाँ न लागिहि राउरि माया ।।२।३३।५

१५. मोरेसि गाय नहारू लागी ।२।३६।८

भाषा पर तुलसी का असाधारण अधिकार था। 'हमें जितनी प्रौढ़ एवं लोकप्रिय उक्तियां तथा मुहावरे अकेले इस कवि की रचना में (मानस में) प्राप्त होते हैं, आधुनिक खड़ी बोली का कोई भी महाकाव्य कदाचित ही इस मांग को अब तक पूरा करने में सफल हुआ हो।"[२३]

ध्वनि और वक्रोक्ति

ध्वनि भी भाषा पर आधारित है। ध्वनि का एक नाम 'विस्फोट' भी है। ध्वनि की परिभाषा से यह प्रमाणित हो जाता है कि ध्वनि का आधार भाषा है। यथा—,

यथार्थ; शब्दो का तमर्थ मुसर्जनीकृत स्वार्थौ ।।
व्यकङ्तः काव्यविशेषः सध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ।।

अर्थात् जहां अर्थ, अपने को अथवा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके उस अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उस काव्यविशेष को ध्वनि कहते हैं। व्यंग्यार्थ की दृष्टि से काव्य की तीन श्रेणियां (ध्वनि काव्य, गुणीभूत व्यंग्य काव्य, चित्र काव्य जो क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम काव्य कहते हैं) भी भाषा पर ही आधारित हैं।

इसी तरह वक्रोक्ति भी भाषा का ही रूप है। इससे काव्य भाषा को अधिक महत्व मिला है। वक्रोक्ति की वक्रता छह प्रकार की कही गयी है—

१. वर्णविन्यास वक्रता; २. पद पूर्वार्द्ध वक्रता,
३. पद उत्तरार्द्ध वक्रता, ४. वाक्य वक्रता
५. उपकरण वक्रता, ६. प्रबन्ध वक्रता।

इनमें प्रथम तीन से तो स्पष्टतः काव्य भाषा का परिचय मिल जाता है। काव्य की भाषा और अन्यान्य जीवन क्षेत्रों की भाषा में प्रधान पार्थक्य यही है कि जहां अन्यान्य जीवन क्षेत्रों की भाषा सीधी और अभिधामूलक रहती है, वहां काव्य की भाषा वक्रोक्ति मूलक रहती है। छह प्रकार की वक्रताओं से यह स्पष्ट है कि काव्य और काव्यभाषा के समग्र रूपों के भाषायी परिवेश में उचित मूल्यांकन किया गया है। अतः काव्य की भाषा में ध्वनि और वक्रोक्ति भी आवश्यक तत्व है। इन दोनों से काव्य भाषा को पर्याप्तता प्राप्त होती है।

वाणी का विलक्षण व्यापार ही वक्रोक्ति है। भामह के अनुसार यह समस्त अलंकारों का मूल है। यह भाषा का शृंगार है। अर्थश्लेष और काकु वक्रोक्ति के अंग हैं।[२४]

वक्रोक्ति का प्रयोग 'मानस' में भाषा के चढ़ाव-उतार में अधिक हुआ है। अंगद और रावण का संवाद वक्रोक्तिमय है। उसका अनुवाद और मूल, दोनों प्रस्तुत किये जाते हैं—

रावण कहता है, अरे अंगद। तू ही बालि का लड़का है? अरे कुल नाशक। तू तो अपने कुल रूपी बांस के लिए अग्नि रूप ही पैदा हुआ। गर्भ में ही क्यों न मर गया? तू व्यर्थ ही पैदा हुआ, जो अपने ही मुख से तपस्वियों का दूत कहलाया। अब, बालि का कुशल तो बता, वह आजकल कहां है?

हंसते हुए अंगद ने कहा, कुछ दिन बीतने पर स्वयं ही बालि के पास जाकर अपने मित्र को गले लगाकर उसी से कुशल पूछ लेना। राम से विरोध करने पर जैसा कुशल होता है, वे तुम्हें सुना देंगे। अरे मूर्ख ! सुनो, भेद-नीति का प्रभाव तो उसी पर पड़ सकता है, जिसके हृदय में राम का बास नहीं है। मैं कुल घालक हूं और तुम कुल पालक ? अरे, ऐसी बातें तो अंधे और बहरे भी नहीं कहते और तुम्हें तो बीस कान और बीस नेत्र हैं।

अंगद की यह कठोर वाणी सुन, आंखें तरेर कर रावण बोला, अरे दुष्ट ! मैं तेरे सब कठोर वचन इसलिए सह रहा हूं कि मैं नीति और धर्म को जानता हूं।

अंगद ने कहा, हां, तुम्हारी धर्मशीलता मैंने भी सुनी है कि तुमने परायी स्त्री की चोरी की है। और दूत की रक्षा की बात तो अपनी आंखों से देख ली। ऐसे धर्म के व्रत को धारण करने वाले तुम डूब कर मर क्यों नहीं जाते। नाक-कान से रहित अपनी बहन को देखकर तुमने धर्म विचार कर ही तो क्षमा कर दिया था। तुम्हारी धर्मशीलता जग जाहिर है। मैं भी बड़ा भाग्यवान हूं कि तुम्हारे दर्शन हुए। इसका मूल रूप यह है—

अंगद तहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुल घालक ॥
गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम्ह जायहु। निज मुख तापस दूत कहायहु ॥
... ...

धर्मसीलता तब जग जागी। पावा दरसु महूँ बड़ भागी ॥६।२१-२२

अनेक स्थलों में प्रायः ऐसी वक्रोक्तियों का प्रयोग हुआ है। लक्ष्मण-परशुराम-संवाद भी वक्रोक्तियों के कारण ही सजीवता ग्रहण कर सका है। भाषायी सौंदर्य-प्रसाधन की विविध विधियों का प्रयोग कवि इसलिए करते हैं कि भाषा की इतिवृत्तात्मकता की ऊब तथा नीरसता का भान पाठकों को नहीं हो। इतिवृत्तात्मक भाषा के कारण ही कथन-भंगिमाओं, तर्क-शैलियों आदि का प्रचुर प्रयोग मिलता है।[३८] कुछ शैलियों का उदाहरण यहां देते हैं—

१. काक्वाक्षिप्तव्यंग्य

(क) कोउ विश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु।
चले कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥
... ...

कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनुहरि भजन न भव भय आसा ॥
७/८९-९० तथा ६/२६

२. तुलनात्मक शैली

कालकोटि सम सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूपकेतु सत कोटि सम दुराधर्ष भगवंत ॥ ७/७१

३. सैद्धान्तिक शैली—इसका उद्देश्य किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करना होता है—

कमठ पीठ जामहि बरुबारा। बंहयासुत बरु काहुहि मारा ॥
फूलहिं नभ बरु बहु बिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला ॥

तृषाजाइ बरु मृग जलपाना । बरु जामहि सस सीस बिषाना ।।
अंधकार बरु रबिहिं न सावै । राम बिमुख न जीव सुख पावै ।।
हिमते अनल प्रगट बक होई । बिमुख राम सुख पाव न कोई ।।
बारि मथे बरु होइ घृत, सिकता ते बरु तेल ।
बिनुहरि भजन न भव तरिअ, यह सिद्धांन अपेल ।। ७/१२२

तुलसी की वक्रोक्तियां क्षण-क्षण नवीन रूप धारण करती हैं । राजा दशरथ से कैकेयी कहती है—

(क) सत्य सराहि कहेउ बर देना । जानेहु लेइहि माँगि चबेना ।। २/३०/३
(ख) दुई कि होंहि एक समय भुजाला । हँस सब ठंठाइ फुलाउब गाला ।।
दानि कहाउब अरु कृपनाई । होई कि खेम कुसल रौताई ।। २/३५/३

रूपकमयी की भाषा

अलंकार की दृष्टि से इसे सादृश्यमूलक अलंकार कहा गया है । रूपक के प्रयोग से भाषा-सौन्दर्य में अभिवृद्धि होती है । 'मानस' में रूपक के प्रयोग तो पग-पग पर मिलते हैं ।[२९] छोटे-बड़े सभी प्रकार के रूपक भाषा की अभिव्यंजता को बढ़ाते हैं । बड़े-बड़े रूपकों की योजना में विषय गांभीर्य को सरल अभिव्यक्ति देने का लक्ष्य छिपा रहता है ।[३०] उपमा में अर्थाभिव्यक्ति की समानंतरता रहती है, परन्तु रूपक में प्रस्तुत के द्वारा अप्रस्तुत की भी अभिव्यक्ति होती है । रूपक में दो तत्वों की समरूपता है जिसमें एक तत्व भाषा से अभिव्यक्त है और सादृश्य के द्वारा दूसरे की कल्पना कर ली जाती है । इसमें एक बाह्य चित्र होता है और दूसरा आंतरिक । इससे भाषा में अलंकरण का समावेश स्वत: हो जाता है । कभी-कभी इसमें कथात्मकता भी आ जाती है जो पूर्ण या अपूर्ण भी होती है । इसमें संकेत द्वारा भी बृहत् की अभिव्यक्ति होती है, क्योंकि जहां कथा होती है वहां थोड़े संकेत से बृहत् कथा का संस्मरण हो जाता है । पौराणिकता भी आ जाती है, क्योंकि रूपक बहुधा प्राचीन साहित्य, दर्शन आदि की ओर संकेत करते हैं । इससे समासयुक्त युग्म शब्द चलते हैं जिससे अर्थ की व्याप्ति अधिक होती है ।

'मानस' का शायद ही कोई प्रसंग हो, जिसमें रूपक ने अपनी रूपकता नहीं दिखाई हो । कुछ प्रधान सांगरूपक ये हैं—

१. रामचरित-मानस, १/३६
२. तीर्थराजप्रयाग-साधु, १/२
३. आश्रम-सागर, २/२७५
४. भरत हृदय-आकाश, २/३२५
५. विश्वरूप रघुवंशमणि, ६/१४-१५
६. भक्ति-चिन्तामणि, ७/१२०
७. रघुबरबाल-पतंग, १/२५४
८. काम-कटक, ३/३८
९. धर्म-रथ, ६/८०
१०. ज्ञान-दीपक, ७/११७
११. मानस-रोग, ७/१२१
१२. मोह-बिपिन, ३/४३

रूपकमयी भाषा में सजीवता रहती है, और वह सजीवता है बिम्बों की, जिससे प्रेषणीयता बढ़ जाती है । हृदयगत भावों का कितना सुरम्य काव्यात्मक वर्णन रूपक के माध्यम से कवि ने किया है—इसका उदाहरण यहां दिया जा रहा है । पुरवासी के साथ राजा जनक चित्रकूट में आ रहे हैं । राम और राजा जनक का मिलन कितना रमणीय बन गया है ।

"राम का आश्रम शान्त रस रूपी पवित्र जल से परिपूर्ण समुद्र है । जनक का समाज मानो करुण रस की नदी है जिसे रघुनाथ जी आश्रम रूपी शान्त रस के समुद्र में

मिलाने के लिए जा रहे हैं। करुणा की यह नदी इतनी बढ़ी हुई है कि ज्ञान-वैराग्य रूपी किनारों को डुबाती हुई जाती है। शोकाकुल वचन नद और नाले हैं, जो इस नदी में मिलते हैं। चिन्ता की लम्बी सांसें ही वायु के झकोरों से उठने वाली तरंगें हैं, जो धैर्य रूपी किनारों के उत्तम वृक्षों को तोड़ रही हैं। भयानक विषाद ही उस नदी की तेज धारा है। भय और भ्रम ही उसके असंख्य भंवर और चक्र हैं। विद्वान मल्लाह हैं, विद्या ही बड़ी नाव है। परन्तु वे उसे खे नहीं सकते हैं, किसी को उसका अंदाज नहीं मिलता। वन में विचरण करने वाले बेचारे काले-किरात ही यात्री हैं, जो उस नदी को देखकर हृदय हार कर थक गए हैं। यह करुणा नदी जब आश्रम रूपी समुद्र में मिली, तो मानो समुद्र अकुला उठा। दोनों राज-समाज शोक से व्याकुल हो गये। किसी को न ज्ञान रहा, न धीरज और न लाज ही रही। राजा दशरथ के रूप, गुण, और बल की सराहना करते हुए सब रो रहे हैं और शोक-समुद्र में डुबकी लगा रहे हैं।"—२/२७५

भाषा का ऐसा चमत्कार हर स्थल पर हम देखते हैं। "तुलसी के सांग-रूपकों में श्रद्धा गौ का रूपक एक सम्पूर्ण कृषक भारत से सम्बन्ध रखता है, भक्ति-गंगा रूपक नदी के किनारे के धार्मिक जीवन से सम्बन्ध रखता है, धर्म-रथ-रूपक (महाभारत से प्रभावित होकर) आध्यात्मिक मूल्य-चक्र की रचना करता है, रामचरित-मानस रूपक धार्मिक स्थान के महात्म्य से जुड़ा है, मणि-दीप-रूपक मन्दिरों के उपचारों से सम्बद्ध है, तथा रक्त-नदी रूपक कुम्भीपाक नद की याद दिलाता है।"[३१]

रूपक की रूप-सुधा से 'मानस' की भाषा क्षण-क्षण परिवर्तित होकर सरकती चलती है। कभी सांगरूपक, कभी निरंग रूपक और कभी परम्परित रूपक के रजत पथ पर भाषा आगे बढ़ती है। तुलसी की बिम्ब-विधायिनी शक्ति के कारण 'मानस' विभिन्न प्रकार के बिम्बों की खान है और इन बिम्बों का प्रधान आधार है रूपक। 'मानस' के रूपकों में सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक, राजनीतिक, व्यावहारिक तत्वों की अतिशय गहराई एवं अनूठी पकड़ मिलती है, जो दूसरे मध्यकालीन कवियों में इस प्रकार नहीं मिलतीं। इसलिए जहां तक भाषा का सम्बन्ध है, रूपकों की भरमार से 'मानस' की भाषा स्वयं विशिष्ट प्रकार की हो गई है।

संगीतधर्मिता एवं अनुरणनात्मकता

'वायाग्राफिया लिटरेरिया' में तो इतना तक कहा गया है कि वह आदमी कभी सच्चा कवि नहीं हो सकता, जिसकी आत्मा में संगीत नहीं है।[३२] "भाषा संसार का नाद-मय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व की हृत्तन्त्री की झंकार है, जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है।"[३३]

तुलसी भारतीय साहित्य में एक सफल एवं अद्वितीय महाकवि थे उन्होंने अपनी कृतियों में वर्णों का प्रयोग उच्चारण के अवयवों की सुकरता की दृष्टि से किया है। 'मानस' की भाषा में संगीतधर्मिता बहुत है। जहां पर जिस छन्द में उन्होंने अपनी गाथा कही है, वहां प्रसंगानुकूल कोमल या कठोर वर्णों का प्रयोग किया है। देखिए, बाणों के लगने से दुश्मनों के सिर कटने में कैसे अनुकूल ओजमय वर्णों का प्रयोग हुआ है। इस अवसर की भाषा बिल्कुल नादात्मक हो गई है—

रघुबीर बान प्रचंद खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहि उठि लरहिं धरु धरु धरु करहिं भय कर गिरा ॥

कोमल, मधुर ध्वनियों के वर्णन में—

झलका झलकत पायन कैसे । पंकज कोस ओस कन जैसे ॥२।२०३।१

शब्द-संगीत की यह अनुपम योजना सराहनीय इसलिए है कि कहीं भी यह लक्षित नहीं होता कि वे प्रयास-जन्य हैं। भावना और कल्पना की निर्मिति में स्वयं ही संगीत के सारे स्वर झंकृत हो उठते हैं। शब्द-संगीत के कुछ रूप ये हैं—

१. सिथिल अंग पग मग डग डोलहिं । बिहबह बचन प्रेम बस बोलहिं ॥२।२२५।४
२. बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा । सुरुचि सुवास सरस अनुरागा ।१।१।१
३. झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं । मनहुँ नि सान बिबिध बिधि बाजहिं ॥२।२३६
४. अगुन अखंड अनंत अनादी । जेहि चिंतहिं परमारथ बादी ॥

कहीं-कहीं अनुस्वार और द्वित्व वर्णों के प्रयोग से भी संगीतात्मकता का सृजन हुआ है—

१. प्रमथ महा झोटिंग कराला ।
जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहि ।
भूत पिसाच बधू नभ नंचहि ।६।८८
२. बहु कृपान तरवारि चमंकहिं । जनु दहँ दिसि दामिनी दमंकहिं ॥६।८७।३

कहीं-कहीं शब्द-संगठन से भी संगीतधर्मिता आई है—

चंपक बकुल कदंब तमाला ।

'मानस' की भाषा में अनुरणनात्मक ध्वनियों का भी प्रसंग और परिस्थिति के अनुकूल सम्यक् प्रयोग हुआ है। इसी को आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'झंकृति' भी कहा है।

१. कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं । सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ॥३।४०।६
२. जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं । खाहिं हुआहिं अघाहि दपट्टहिं ॥६।८८
३. डहकि डहकि परचेउ सब काहू । अति असंक मन सदा उछाहू ॥
४. घन घमंड गरजत नभ घोरा । प्रियाहीन डरपत मन मोरा ॥

अनुरणनात्मक ध्वनियों से भाषा में भाव-द्योतन का संकेत भर जाता है। राम के वियोग से रथ के घोड़े भी अति शोकित हो गए, यह विरह की व्यापकता है, जो अनुरणन की ध्वनि से अधिक सरस होकर व्यक्त हुई है—

देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं । जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं ॥२।१४२।८

'मानस' की संगीतात्मकता का एक प्रधान कारण इसकी छंद-योजना भी है। 'चौपाई' छन्द में इसकी कथा परिव्याप्त है और चौपाई के अन्तिम चरणों के तुकों में साम्य होने के कारण सहज ही सांगीतिकता आ गई है।

छन्द

'मानस' में विविध छन्द हैं। कुल मिलाकर इक्कीस प्रकार के छन्द हैं। भावों के प्रत्यावर्तन के कारण छन्द बदल जाते हैं, एतदर्थ भाषा में अन्तर का आ जाना स्वाभाविक है। अतः प्रत्येक छन्द की भाषा में कुछ न कुछ पार्थक्य तो है ही, भले ही सूक्ष्म ही

क्यों न हो। चौपाई की भाषा चौपैया से भिन्न है, त्रोटक की भाषा से मालिनी, और भुजंगप्रयात की भाषा बिल्कुल भिन्न है, इसी तरह इन्द्रवज्रा की भाषा में और जगस्वरूपिणी की भाषा में अन्तर है तथा तोमर एवं त्रिभंगी तथा हरिगीतिका और दोहे की भाषा में भेद है। महान् कवि की भाषा में यह अंतर अनिवार्य है। क्योंकि महाकाव्य में अनेक भाव-दशाओं का विशद् चित्रण रहता है और यदि सब प्रकार की भावलहरियों के लिए कवि एक ही प्रकार की भाषा का प्रयोग नहीं कर सकता। इसलिए तुलसी की भाषा के बारे में कहा भी गया है—

तुलसी गंग दुऔ भए, सुकविन के सरदार।
जिनकी कविता में मिली, भाषा विविध प्रकार॥[३४]

वस्तुतः "छन्द प्रतिपाद्य विषय की अभिव्यंजना को मनोहर बनाने के साधन हैं। छन्दों की रमणीयता मुख्यतया तीन बातों पर आश्रित हैं—भावानुकूलता, लय और अंत्यानुप्रास।"[३५]

तुलसीदास ने प्रत्येक सोपान के प्रारम्भ में छन्दों को बदल कर रखने का प्रयास किया है। एक प्रकार के छन्द में भी प्रसंग और अवसरानुकूल भाषा के संगठन में भेद उपस्थित हो जाता है, इसका एक उदाहरण यहां देखें—

लंका की अशोक वाटिका में हनुमान के छोटे शरीर पर सीता को संदेह हुआ। तब हनुमान ने अपना शरीर दिखला दिया—

कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥५।१६।८

इस चौपाई की शब्द-संघटना ही प्रसंगगर्भिता के मर्म को प्रकट कर देती है। हनुमान के विशाल और भयंकर शरीर के चित्रण में यहां की शब्द-योजना ओजात्मक अभिव्यक्ति से पूर्ण है।

कंक न किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥

इस चौपाई में लघु वर्णों की अधिकता है, ताल-वर्णों की सम्यक् योजना है और ये विधान शृंगार जैसे कोमल रस के अनुकूल लयात्मक भाषा की सृष्टि करता है। "तुलसीदास की एक विशेषता यह है कि छन्दों के अनुसार ही भाषा भी ढूंढ़ते हैं, दोहे-चौपाइयों के लिए तुलसीदास ने अवधी का प्रयोग किया है। सवैया आदि छन्द जैसे ब्रजभाषा में बन पड़ते हैं, वैसे अन्य भाषाओं में नहीं बन सकते।"[३६]

अलंकार

अलंकार का सम्बन्ध भी काव्यभाषा से है। अलंकार अभिव्यक्ति की चारुता है, भाषा की पर्याप्ता है। इसलिए जहां कहीं भी अलंकार का प्रयोग केवल अलंकार के लिए हुआ है, कविता-कामिनी के लिए अनावश्यक भार बन गया है। भामह शब्द और अर्थ की वक्रता को अलंकार मानते हैं—वक्राभिधेय शब्दोक्तिरिष्टा वाचा मलङ कृतिः।

और यही शब्दार्थ वक्रता काव्य की भाषा में भी रहती है। अलंकार से काव्य में सुन्दरता आती है और काव्य के ये सौंदर्य, भाषा के गुण हैं। अलंकार का मूल है—उक्ति वैचित्र्य और यह काव्य भाषा का भी आधार है। इसीलिए उद्भट ने अलंकार को काव्य

का नित्य धर्म कहा है। कुंतक भी कहते हैं कि शब्द और अर्थ अलंकार्य हैं।[३७] ये अलंकार वस्तुतः कथन की अनेक भंगिमाएं हैं, जो काव्य भाषा के उपकरण हैं। अलंकार से कविगण अपने हृदयगत भावों का मूर्त्तन करते हैं। रामचन्द्र शुक्ल इसे 'वर्णन-प्रणाली' कहते हैं।[३८] संक्षिप्ततः यह कि अलंकार काव्य भाषा की विशेषता है और दोनों एक-दूसरे के अभाव में अपर्याप्त हैं। यही कारण हैं कि महाकवियों की कृतियों में अलंकार के विविध भेद मिलते हैं।

'अलम्' अव्यय युक्त 'कृ' धातु में 'घञ'प्रत्यय के लगने से 'अलंकार' शब्द बना है, जिसका अर्थ होता है अलंकरण या आभूषण। आभूषण सौंदर्य-प्रसाधन की सामग्री है। मानव स्वभाव से ही सौंदर्योपासक रहा है। कोई भी वस्तु कितनी ही अच्छी क्यों न हो, मनुष्य उसे और भी सौंदर्य-संपन्न देखना चाहता है। अलंकरण इसी परम्परागत सुविशिष्ट सौंदर्य के द्योतक हैं। कविता में भाव, विचार और कल्पना न हो तो कविता ही कैसी? उत्तम भाव, उत्तम विचार तथा मनोहर कल्पना से जड़ित साधारण कविता भी चित्ताकर्षक होती है। कवि तो साधारण मनुष्यों से अधिक एवं अच्छी तरह सौंदर्य का उपासक ठहरा। इसलिए वह कविता में विशेष शब्दों और अर्थों द्वारा सरलता, स्पष्टता, आकर्षण, विचित्रता, तन्मयता, कुतूहल आदि उत्पन्न करनेकी चेष्टा करता है तथा कविता-कामिनी को सूक्ष्म भावों एवं गहन व्यंजनाओं के अलंकरण पहनाकर वह मुग्ध हो जाता है।

हिन्दी तथा संस्कृत के आलकारिकों ने अनेक परिभाषाएं दी हैं। व्यापकता से विचार करते हुए वामन ने काव्य के संपूर्ण सौंदर्य को ही अलंकार कहा है।[३९] युग बदला कथन के मापदंड बदले। आज अलंकार शास्त्र साहित्य शस्त्र के शिल्प-पक्ष का द्योतक है, यद्यपि इसमें भाव-पक्ष की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

वस्तुतः किसी उत्तम कविता को या साहित्य को भाव-पक्ष और कला-पक्ष की रेखा से विभाजित नहीं किया जा सकता है। यह विभाजन-रेखा केवल भावपक्ष और कला-पक्ष को समझने में सहायिका मात्र है। अतः अलंकार के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता है कि यह मात्र शिल्प-पक्ष पर ही आधारित है। जिस काव्य का भाव उत्तम है, अलंकरण स्वभावतः उत्कृष्ट होगा। कविता सदा भाव और सुष्ठु कल्पना से निष्ठ रहती है।

काव्य का प्रधान तत्व है रस, जिसका आस्वादन हम मार्मिक अभिव्यंजना के माध्यम से करते हैं। अतः अलंकार साधन है। बिना साधन के साध्य की सफल और संपूर्ण प्राप्ति असंभव है। अतः अलंकार केवल वर्णन या वाणी का उत्तम ढंग ही नहीं है, यह काव्य में निहित भाव की अभिव्यक्ति के साधन, साथ ही भाव के स्वरूप तथा कवि की सामर्थ्य का द्योतक है। क्योंकि कविता की भावावेश-स्थिति में अलंकार स्वतः उद्भूत होते हैं।[४०] रामचन्द्र शुक्ल ने भी भावों के उत्कर्ष और वस्तुओं के रूप, गुण एवं क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में सहायक होने वाली युक्ति को अलंकार की संज्ञा दी है।[४१] "शैली भाव-विनिमय के ढंग में इस प्रकार छिपी रहती है कि उसे सामान्यता अलग नहीं कर सकते। जिस प्रकार व्याकरण भाषा के प्रयोगों का विश्लेषण करता है, उसी प्रकार अलंकार-शास्त्र भाव-प्रकाशन के ढंग का।"[४२] लोंजाइन के अनुसारअलंकार साधन-

रूप प्रसंगानुकूल, अतिचार-युक्त, एवं अयत्नज होना चाहिए।[3] विस्मयकारी सौन्दर्य अलंकारों से आता है। शक्तिमान् कवि इससे सफलता प्राप्त करते हैं।[4]

जिस प्रकार प्राण-रहित शरीर के आभूषण का सौन्दर्य निरर्थक है, उसी प्रकार भाव-रहित काव्य में अलंकार निरर्थक और भार-स्वरूप है—

तथाहि चेतनं शव शरीरं कुंडलाद्युः।
पेतमापि न भाति अलंकार्यस्पभावात्।

अग्निपुराण में भी व्यासजी ने कहा है—"अर्थालंकार रहिता विधवेव सरस्वती।"[5] अर्थात जिसकी कविता अर्थालंकार से रहित है, उस कवि की भारती विधवा के समान है।

रामचरितमानस में सरस्वती राम के हाथों की कठपुतली है। जिसपर वे कृपा करते हैं उनके हृदयांगन में वे भारती को नचा देते हैं—

सारद दारु नारि सम स्वामी। राम सूत्रधर अन्तर जामी ॥
जेहि पर कृपा करहिं जन जानी। कवि उर अजिर नचावहिं बानी ॥
१।१०५।५-६

तुलसीदास राम के ऐसे ही कृपाश्रित भक्त-कवि थे। वंदना-प्रकरण में उन्होंने लिखा—

आखर अर्थ अलंकृत नाना। छंद प्रबंध अनेक विधाना ॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा ॥
कबित बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहो लिखि कागद कोरे ॥
१।९।९-११

इसमें 'कोरे कागद' पर सत्य की शपथ तो सत्य सी प्रतीत होती है। लेकिन यह कवि की विनम्रता है। दूसरी बात यह है कि सत्कवि के काव्य में अलंकारादि बाह्य साधन स्वतः चले आते हैं, कवि का झुकाव इस ओर नहीं रहता। तीसरी बात यह है कि भाव-पूर्ण कथ्य में अलंकरण स्वतः अनुयायी बना रहता है। तुलसी के 'मानस' के 'आखर' और 'अरथ' में जो नाना प्रकार के प्रक्षिप्त अलंकार हैं, वे कथ्य की वास्तविक, सहज अभिव्यंजना के विशेष द्वार हैं।

रामचरित का वर्णन करने के क्रम में अनायास, अनजाने रूप से तुलसी काव्य में जो चमत्कारमयी नाना विधाएं आ गई हैं, उनमें अलंकार-विधा भी कम महत्व की नहीं है। अलंकार के क्षेत्र में भी तुलसी संपूर्ण शारदीय शशांक के सदृश दिखाई पड़ते हैं।

रामचरितमानस की भाषा में निहित अलंकार-योजना को देखने से अचानक 'लक्षण ग्रंथ' की झलक मिलने लगती है। तुलसीदास के अलंकार स्वाभाविक हैं अर्थात् उनके अलंकार चेष्टित नहीं हैं। उनके द्वारा योजित अलंकार भावों की तीव्रता में सहायक होते हैं। उनके अलंकार रस को प्रगाढ़ बनाते हैं। अलंकारों के विविध प्रयोगों से उनकी भाषा में एक कसावट तथा प्रभविष्णुता आ गई है। 'मानस' में प्रयुक्त सभी अलंकारों का उदाहरण देना पिष्टपेषण मात्र ही होगा। तुलसी की भाषा में अलंकार योजना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जिस स्थल पर जो अलंकार कवि ने प्रयोग किया है, उससे

ऐसा अर्थ-चमत्कार उत्पन्न हुआ है, जो उसके अभाव में नहीं उत्पन्न हो सकता था। इसकी पुष्टि में कुछ अलंकारों की विवेचना हम कर रहे हैं।

जहां एक उपमेय के लिए अनेक उपमान कहे जायं, वहां मालोपमालंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—

१. **समानधर्मा**—जहां अनेक उपमानों का साधारण धर्म एक हो, इसे एक-धर्मा भी कहते हैं।

२. **भिन्नधर्मा**—जहां उपमानों के भिन्न-भिन्न साधारण धर्म कथित हों।

३. **लुप्त धर्मा**—जिसमें साधारण धर्म का कथन ही नहीं हो।

समानधर्मा

हिमबंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहिं श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई। १/३२४

हिमंचल ने जिस तरह अपनी पुत्री गिरिजा शिव को और सागर ने अपनी पुत्री लक्ष्मी, विष्णु को दिया, उसी तरह जनक जी ने राम के हाथों में सीता का समर्पण किया जो विश्व में सुन्दर नई कीर्ति हुई। यहां जनकजी का सीता-समर्पण करना उपमेय है, इसकी दो उपमाएं दी गई।

सांदर्भिक विशेषता—तुलसी ने दो उपमानों का प्रयोग किया है। वे एक भावुक कवि हैं। जहां उन्हें एक उपमान से प्रसंग के सम्पूर्ण अर्थ-निरूपण में असमर्थता दीख पड़ी, वहां उन्होंने दो या उससे भी अधिक उपमानों का प्रयोग किया। यहां प्रसंग विवाह का है। आज राजा जनक श्री राम को अपनी पुत्री सीता का समर्पण कर रहे हैं—यह मुख्य वर्ण्य है। तुलसीदास सीधे यों भी कह सकते थे कि "उन्होंने कन्यादान किया" लेकिन वैसा उन्होंने नहीं कहा। विषय-वस्तु की सम्यक अभिव्यक्ति के लिए ही दो उपमानों का प्रयोग कर चमत्कारवर्धन किया है। वर्णन तो एक उपमान से भी हो सकता था और तुलसी जैसे कवि के लिए यह असंभव नहीं था। पर उन्होंने दो उपमानों का प्रयोग कर उस प्रसंग में अर्थ-लालित्य भर दिया है। यहां विशेषता यह है कि उपासक दो तरह के होते हैं। एक की भावनानुसार जानकी जी पतोहू कहलाकर अवध आईं तथा दूसरे के अनुसार विवाहोपरांत श्री रामजी, जानकी के साथ जनकपुर में ही रह गए। भक्तों की ये दो उपासनात्मिका भावनाएं हैं। पहले की पुष्टि के लिए कवि ने गिरिजा की उपमा दी और दूसरे की पुष्टि के लिए लक्ष्मी की उपमा दी।

दूसरी बात यह है कि कवि ने गिरिजा और लक्ष्मी के लिए 'दई' क्रिया का प्रयोग किया है जो एक सांसारिक पिता के कन्यादान के निमित्त प्रयुक्त होता है। लेकिन जानकी के लिए उन्होंने 'समरपी' क्रिया का प्रयोग किया है जो साहित्यिक सौंदर्य का द्योतक है। सीता तो अयोनिजा हैं, महिसुता हैं, इसलिए 'समर्पण' क्रिया का प्रयोग किया है इसका दूसरा भाव यह है कि आज 'भृकुटि विलास जासु जगहोई' प्रभु दुल्लह रूप में हैं। संसार में आज तक किसी को भी ऐसा सौभाग्य नहीं मिला कि सर्व-शक्तिमान ईश्वर जामाता के रूप में विद्यमान हों। जनक जी ने ऐसे ही 'प्रभु' को कन्यादान किया। अतः कवि ने समर्पण किया का प्रयोग किया।

इस भांति प्रस्तुत प्रसंग में कवि ने इस अलंकार के माध्यम से एक अनुपम अर्थ-सौन्दर्य सन्निविष्ट कर दिया है, जो उसके बिना असंभव था।

भिन्नधर्मा

मरुत कोटि सत बिपुल बल रबि सत कोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सुसीतल, समन सकल भवत्रास ।। ७/९१ (क)

यहां श्री राम की सामर्थ्य की तुलना हवा, सूर्य और चन्द्रमा से की गई है। यहां तीन उपमान हैं और सबके धर्म भिन्न-भिन्न हैं। अतः भिन्नधर्मा मालोपमा अलंकार है।

यहां राम की सामर्थ्य का वर्णन है। राम के सर्वेश्वरत्व का सम्यक् वर्णन इसी अलंकार से हो सकता था। सचमुच तुलसी ने इसमें अर्थ-चारुत्व ला दिया है।

यदि इस अलंकार की कसौटी पर कवि यह कहते कि "राम में हवा के समान बल, सूर्य के समान प्रकाश और चन्द्रमा के समान शीतलता है" तो भी यह भिन्न धर्मा मालोपमा ही होती। लेकिन कवि ने यहां अलंकार-निर्देश में सूक्ष्मता दिखाई है और यहां के सारे प्रसंग में एक नवीन अर्थ-चमत्कार छा गया है। वह यह है कि राम केवल हवा के समान भीतल नहीं हैं, बल्कि असंख्य पवनदेव के समान उनका बल है, असंख्य सूर्य के समान उनका प्रकाश और असंख्य चन्द्रमा के समान उनमें शीतलता है। इस भांति, इस अलंकार से यहां अभिव्यंजना में विशेषता आ गई है।

लुप्तधर्मा

जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी।
तेसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ।। २/६५/७

यह सीता की उक्ति है, वन-प्रस्थान-काल में। वह राम को दिखाना चाहती है कि पुरुष के बिना स्त्री की दशा कैसी हो जाती है। इस उपमेय को कवि ने दो उपमानों में पुष्ट किया है, जैसे प्राण के बिना शरीर और जल के बिना नदी (निरर्थक) है, उसी तरह पुरुष के बिना स्त्री।

राम के वन-गमन की समस्या अचानक आई। एक सच्ची पतिव्रता के हृदय में कैसी दुख-भावना जगी है—इसी का निर्देश इस चौपाई में किया गया है। श्रीराम का आदेश है—घर में रहने का। लेकिन सीताजी कैसे स्वीकार कर सकती हैं? पति के साथ जाना अपना सर्वोच्च धर्म समझती है।

यहां पुरुष-रहित स्त्री उपमेय है। इसके दो उपमान रखे गए, अर्थ चमत्कार के सृजन हेतु। पहला है—"जिअ बिनु देह" अर्थात् जब किसी के पति का देहांत हो जाता है तो वह सती हो जाती है, प्राण दे देती है। यदि उस स्त्री में वैसी क्षमता नहीं होती तो वह पति के वियोग में सांसारिक भोग-विलास की वस्तुओं से सुदूर रहकर इस भांति जीवन बिता देती है, जैसे 'सूखी नदी' हो।

यहां कारुण्य-भाव में जो अर्थ-चमत्कार आया है वह मालोपमा के प्रयोग से। सीता के कहने का तात्पर्य यह है कि न तो मैं इस समय विधवा हूं और न पति-वियुक्ता, फिर इन दोनों की भांति विपत्ति मुझे क्यों देना चाहते हैं। यह संपूर्ण अभिव्यंजना इससे आविर्भूत हुई है, जो इसके अभाव में नहीं आ सकता था।

'मानस' में लगभग सभी प्रचलित अलंकार पाये जाते हैं—अनुप्रास, पुनरुक्ति-वदाभास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, वीप्सा, उपमा, मालोपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, स्मरण, रूपक, उल्लेख भ्रान्तिमान, संदेह, अपतुनुति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टांत, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा, परिकर, परिकरांकुर, अर्थश्लेष, पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति, व्याजनिंदा, आक्षेप, विरोधाभास विभावना, विशेषोक्ति, असंगति विषम, सम, विचित्र, अधिक, अन्योन्य, विशेष, व्याघात, कारणमाला, एकावली, सार, काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास, हेतु, अनुमान, यथासांख्य, पर्याय, परिवृत्ति, परिसंख्या, अर्थापत्ति, विकल्प, समुच्चय, समाधि, प्रत्यनीक, प्रतीप, तद्-गुण, अतद्गुण मीलित, उन्मीलित, सामान्य, उत्तर, सूक्ष्म, व्याजोक्ति, विकस्वर, प्रौढोक्ति, संभावना, मिथ्याध्यवसिति, ललित, प्रहर्षण, अनुज्ञा, तिरस्कार, लेश, उदाहरण, स्वाभा-वोक्ति, भाविक, उदात्त, विवृतोक्ति, विधि, असंभव, उल्लास, अवज्ञा, अनुगुण, लोकोक्ति, निरुक्ति, असम, विशेषक, संसृष्टि, संकर।

इनमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, आदि की प्रधानता है। पहले मालोपमा का उदाहरण दिया गया है। अब उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा का एक एक उदाहरण प्रस्तुत है।

उपमा—दो भिन्न पदार्थों के सादृश्य-प्रतिपादन को उपमा कहते हैं।

सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू।
ब्रह्म जीवन इव सहज सनेहू।। १/२१७/४

राजा जनक सम्पूर्ण समाज के साथ मुनि विश्वामित्र से मिलने आए हैं। राम-लक्ष्मण की अलौकिक सुषमा पर मुग्ध हो, जनक जी, विश्वामित्र से कहते हैं—मुने ! सुनिये तो। भाइयों में ब्रह्म और जीव की भांति सहज स्नेह है

ब्रह्म और जीव में भेद है कि एक ब्रह्म और दूसरा जीव है। परन्तु दोनों का धर्म एक हैं, इस भांति कि जीव ईश्वर को प्रिय लगे—सब मम प्रिय सब मम उपजाए। और ईश्वर का भी धर्म है कि वह सब जीवों को प्रिय लगे—ये प्रिय सबहिं जहां लगि प्रानी।

यहां जीव का ईश्वर के प्रति और ईश्वर का जीव के प्रति सहज स्नेह प्रकट है, तो ईश्वर और जीव, दोनों में भेद रहते हुए भी दोनों का धर्म (एक दूसरे के प्रति स्वाभाविक स्नेह) एक प्रतिपादित किया गया हैं। अतः उपमा है। राम-लक्ष्मण में परस्पर पूर्ण प्रेम है। इस पूर्ण प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने पूर्णोपमा का प्रयोग किया है। साथ ही 'बिदेह' शब्द जो ब्रह्मज्ञान लीनता का भाव लिए हुए है, उसमें 'मुदित' का भाव भरने के लिए यह पूर्णोपमा ने कमाल किया है। 'सम्पूर्ण मानस में सर्वाधिक संख्या में उपमा का प्रयोग मिलता है।

रूपक—उपमेय में उपमान के निषेधरहित आरोप को रूपक कहते हैं। प्रभाव की दृष्टि से तुलसी रूपक-सम्राट कहे जाते हैं। यहां एक उदाहरण देखें—

सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहि जय होई सो स्यंदन आना।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल विवेक दम परहित घोरे। क्षमा कृपा समता रजु जोरे।।
ईस भजन सारथी सुजाना। विरति चर्म संतोष कृपाना।।

दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा । बर बिग्यान कठिन को दंडा ।।
अमल अचल मन त्रोन समाना । संयम नियम सिलीमुख नाना ।
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा । यहि सम विजय उपाइ न दूजा ।।
सखा धरम मय असरथ जाके । जीतन कहंन कबहु रिपु ताके ।। —६/८०

युद्ध-प्रकरण के बीच में इस आध्यात्मिक रथ के वर्णन का मूल उद्देश्य है— त्रस्त विभीषण को सांत्वना और ढाढ़स बंधाना । अब प्रश्न है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कवि ने सांग रूपक का प्रयोग क्यों किया ? इससे क्या चमत्कार आया है ? यदि कवि को केवल त्रस्त विभीषण के भय को ही समाप्त करना था तो—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना ।
जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ।।

२तना कह देने से विभीषण का सन्देह समाप्त हो जा सकता था, लेकिन सांग रूपक के द्वारा आध्यात्मिक रथ के समस्त अंगों का वर्णन करने से विभीषण का अज्ञान तुरन्त समाप्त हो गया ।

कवि ने यहां सांग रूपक का प्रयोग दो कारणों से किया । पहला तो यह कि युद्ध का समय है, विभीषण जैसे मित्र का संदेह नाश आवश्यक था और तुरत में संदेह नाश होना चाहिए इसलिए कवि ने यहां सांग रूपक का प्रयोग किया ।

दूसरा यह कि राम मर्यादापुरुषोत्तम कहलाते हैं । इनमें केवल भौतिक वीरता ही नहीं है, बल्कि उत्तम से उत्तम आध्यात्मिक वीरता भी इनमें है । अतः इन दो प्रकार के अर्थ-सौन्दर्य के निरूपण के लिए कवि ने सांग रूपक का प्रयोग किया ।

उत्प्रेक्षा—उपमेय में उपमान की संभावना उत्प्रेक्षा अलंकार है इसके तीन भेद हैं—के भी दो भेद हैं—उक्त विषया ओर अनुक्त विषया । यहां उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा वस्तु, हेतु और फलोत्प्रेक्षा । यहां वस्तुप्रेक्षा का एक उदाहरण दिया जा रहा है । वस्तूत्प्रेक्षा का उदाहरण देखें । इसकी परिभाषा है—जहां विषय का कथन कर उसमें उपमान की संभावना की जाए, अर्थात उपमेय और उपमान दोनों का शब्दतः कथन हो वहां उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा होती है । यथा—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन राम हृदय गुनि ।।
मानहुं मदन दुंदुभी दीन्ही । मनसा बिस्व बिजय कहं कीन्ही ।।
१/२३०/१-२

सीताजी के आभूषणों की ध्वनि यहां उत्प्रेक्षा का विषय है । श्रीराम के मुख से कवि ने उत्प्रेक्षा कराई है कि मानो कामदेव ने सम्पूर्ण विश्व को वश में करने के लिए दुंदभी बजाई है ।

यहां एक वस्तु (आभूषण-गण) में दूसरी वस्तु (कामदेव की विश्व-विजय) घोषणा की सम्भावना की गई है और यहां उपमेय तथा उपमान दोनों शब्दतः कथित हैं, अतः उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा है ।

सीताजी के आभूषणों से निःसृत ध्वनि का वर्णन कवि रूपक और उपमा अलंकार के माध्यम से भी कर सकते थे, ऐसी अलौकिक प्रातिभ क्षमता तलसी में थी । लेकिन

उन्होंने वैसा नहीं कर यहां उत्प्रेक्षा का प्रयोग किया। उत्प्रेक्षा के प्रयोग से सीता के अत्यन्त कमनीय सौन्दर्य की झलक दिखाई गई है, जो अन्य अलंकार से सम्भव नहीं था।

सारांशत; तुलसी की अलंकार-योजना 'मानस' की भाषा में प्रभविष्णुता, प्राण-शक्ति, चारुत्व, परिनिष्ठितता, भव्यता आदि प्रस्तुत करती है। तुलसी के जितने भी अलंकार हैं, प्रायः स्वाभाविक हैं, चमत्कारयुक्त हैं। उनका मन अलंकारों के खेलवाड़ों में नहीं लगा है।

सूक्तिमयता

सूक्ति को सुभाषित भी कहा जाता है। लक्षण-ग्रंथों की तरह सूक्ति या सुभाषित ग्रंथों का अपना अलग महत्व है। ऐसे सूक्ति-ग्रंथों का उद्देश्य लौकिक तथा पारलौकिक जीवन में सुधार लाने के लिए रहता है। लेकिन हम किसी महाकाव्य में विविध प्रसंगों में प्रयुक्त ऐसी अनेक सूक्तियां पाते हैं, तब इनका महत्व और बढ़ जाता है। क्योंकि उपदेशात्मकता तो इनमें रहती ही है, साथ-साथ अनेकानेक परिस्थितियों और प्रसंगों को सशक्त अभिव्यंजना में तत्काल योग देती हैं।

तुलसी के 'मानस' में भी सूक्तियां भरी हैं, पर वे मात्र उपदेश की कोटि में नहीं, बल्कि प्रसंगतः अर्थ-चमत्कार में वृद्धि करती हैं। 'मानस' की महाकाव्यात्मक भाषा में ये सूक्तियां भी कुछ योगदान करती हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'जो उक्ति हृदय में कोई भाव जागृत कर दे, या उसे प्रस्तुत वस्तु या तथ्य की मार्मिक भावना में लीन कर दे, वह तो है काव्य।'[४६] 'मानस' की सूक्तियां मानस की काव्यभाषा में मिलकर एक समान तदाकार प्रभाव उत्पन्न करती हैं। संत और खल की एक साथ वंदना करने के क्रम में तुलसी कहते हैं।

भलो भलाइहि पैलहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु॥ १/५

यह सूक्ति मात्र सूक्ति-ग्रन्थों की तरह नीरस नहीं है। सज्जन और असज्जन की वंदना में प्रयुक्त भाषा की अभिव्यक्ति में यह सहायता देती है और सांकेतिक रूप से प्रसंग की पुष्टि में भाग लेती है। इसी भांति—

प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहलीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं।
बचन परमहित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥६।६

रावण के सभी मन्त्री ठकुरसुहाती बोलते हैं और उचित सलाह नहीं देते। क्योंकि ये सब मन्त्री मुंह पर मीठी बातें बोलने वाले हैं। ये भीतर से डरपोक भी हैं—शायद सच बात कहने से रावण बिगड़ न जाए। मन्त्रियों की इस प्रवृत्ति को लक्ष्य कर रावण का पुत्र प्रहस्त कहता है कि पिता जी! ये सभी खुशामदी मन्त्री ठकुरसुहाती कह रहे हैं। ये जैसा कहते हैं, वे स्वयं उस कसौटी पट खरे नहीं उतरेंगे। एक ही बन्दर समुद्र लांघ कर आया था, उसका चरित्र सब लोग अब भी मन ही मन याद करते हैं। ऐ मन्त्रियों! उस समय तुम लोगों में से किसी को भूख नहीं थी? बन्दर तो तुम्हारा भोजन ही है, फिर नगर जलाते समय उसे पकड़ कर क्यों नहीं खा लिया? पिता जी! इन मन्त्रियों ने आपसे ऐसी राय सुनायी है, जो सुनने में अच्छी है, पर आगे इससे दुःख ही होगा। संसार में ऐसे लोग

बहुत है जो मुंह पर मीठी लगने वाली बात ही सुनते और कहते हैं। हे पिता! सुनने में कठोर परन्तु परिणाम में परमहितकारी वचन जो सुनते और कहते हैं, वे मनुष्य बहुत ही थोड़े हैं।

प्रहस्त की भाषा में यह सूक्ति अधिक अभिव्यंजक बन गई है। ऐसा मालूम नहीं पड़ता कि यह उपदेशात्मक वाक्य है और उपदेश देने के लिये कवि ने जान-बूझ कर इसका प्रयोग किया है। 'मानस' में प्रयुक्त सूक्तियां भाषा-प्रवाह का एक अंग है और उनसे तथ्य के प्रकरीकरण में सहयोग मिलता है। यहां कुछ सूक्तियां प्रस्तुत की जाती हैं—

१. सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधातु सोहाई।१।३।६
२. पायस पलिअहिं अति अनुरागा। होंहि निरामिष कबहुँकि कागा।
३. आरत काह न करइ कुकरमू।२।२८४।४
४. सबते सेवक धरम कठोरा, २।२०३।४
५. बैर प्रीति नहिं दुरहिं दुराए, २।१६३।१
६. सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा, २।१६२।४
७. नहिं विष बेलि अमिअ फल फरही, २।१८६।४
८. हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस बिधि हाथ, २।१७१
९. जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभ प्रिय मिलन वियोगा।
काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं।
२।१५०।३
१०. दुइ कि होइ एक समय भुआला।
हँसब ठठाउ फुलाउब गाला॥ २।३५।३
११. समय फिरे रिपु होहि पिरीतें। २।१७।३
१२. निज हित अनहित पसु पहिचाना, २।१६।१
१३. काहु न कोउ दुख सुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सब भ्राता॥
१४. मुखिया मुख सों चाहिए खान पान को एक।
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक॥ २।३१५
१५. कौल काम बस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा।
सदा रोग बस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी।
तनु पोषक निंदक अधखानी। जीवन सब सम चौदह प्रानी॥६।३१

'मानस' की सूक्ति से अर्थ-गांभीर्य, अनुभव की गहनता, चिरंतन सत्य की सृष्टि, गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति, जीवन के अनुभवों के सार तत्व का निर्देश, आदि प्राप्त होते हैं। साथ ही मिथ, प्रतीक, बिंब इत्यादि की आधारचेतना का संकेत एवं कांतासम्मित उपदेश की सार्थकता प्रतीत होती है।

शब्द-अर्थ, सटीक वाक्य-योजना

सटीक वाक्य-योजना की विशेषता इस बात को लेकर है कि प्रत्येक शब्द प्रसंग,

परिस्थिति, पात्र आदि के अनुकूल अर्थ देने वाला हो तथा व्याकरण-सम्मतता से परिपूर्ण हो। वाक्य-योजना की सुषमा का आधार है शब्द और अर्थ का समुचित प्रयोग।

शब्द चाहे तत्सम हो या तद्भव, सामासिक हो या समास-हीन, उसका प्रसंगानुकूल और बोधगम्य होना ही सबसे महत्वपूर्ण है। सच्चा लेखक शब्दों के बाह्य चमत्कार में उलझ कर नहीं रह जाता, वरन वह विशिष्ट शब्द-वर्ण में निहित प्रेषण शक्ति को परखता है।[४७] कवि की शब्द-स्थापना विषयानुकूल होनी चाहिए, उसके अभाव में काव्य-रस बिगड़ जाता है।[४८] शब्दों का प्रयोग-नैपुण्य कवियों की उत्तमता का मापदंड रहा है।[४९] महाभाष्यकार ने लिखा है—

"एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः
स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति।"

शब्दों का सम्यक् और सुष्ठु प्रयोक्ता तो कवि ही होता है। इसीलिए कवि को एक विशिष्ट कोटि का मानव कहा जाता है। शब्द ही कवि का बहुत बड़ा सहारा होता है।[५०] शब्द ही कवियों का मूलाधार है। सचमुच कवियों का सक्रिय जीवन है शब्दों के साथ दीर्घ प्रेम-व्यापार करना।[५१] होरेस कहता है कि शब्दों को सूक्ष्मता और सावधानी से स्थान देकर अभिव्यक्ति को उत्तम बनाया जा सकता है। शब्दों के कलात्मक विन्यास से उनमें नवीन अर्थ भर जाता है।[५२] क्लियंथ ब्रुक्स ने कहा है कि कवि परम्परा से बंधा होता है, इसलिए कवि को भाव, साहित्यक धारणाएं, लय तथा साहित्यिक रूप आदि की प्राप्ति परम्परा से होती है। केवल एक ही वस्तु है जो कवि को उत्तराधिकार के रूप में नहीं मिलती और वह है उसकी अपनी भाषा।[५३]

ग्रियर्सन, एशिया के चार महान् लेखकों में से तुलसी को एक मानते हैं।[५४] संसार ने भी तुलसी को एक महान् कवि के रूप में स्वीकार किया है। उनके उत्तम कवि होने का एक प्रधान कारण शब्दों का सटीक और साभिप्राय गुम्फन भी है। और शब्दों के समवाय से वाक्य बनते हैं। तुलसी ने सहर्ष स्वीकार किया है कि उनकी कविता का आधार है शब्द और अर्थ ;

१. गिरा अर्थ जल बीचिसम, कहिअत भिन्न न भिन्न।१।१८
२. आखर अर्थ अलंकृत नाना, १।६।६
३. कबिहिं अरथ आखर बल थोरा,

भाषा के अंतर्गत सरलता और सुबोधता को स्वीकार किया है—

१. सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।१।१४
२. सरल बरन भाषा सरल, सरल अर्थमय मानि। वै० सं० ८

मध्यकालीन महाकवियों में सबसे व्यापक शब्दाधिकार तुलसी को ही था। उनके 'मानस' में शब्द-चयन की अपनी विशेषता है। उन्होंने तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज आदि सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग कर अपने उदार हृदय तथा समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिचय दिया।

रामचरितमानस में संस्कृत तत्सम शब्दों का प्राचुर्य है, लेकिन यह इस प्रकार से प्रयुक्त है कि कहीं भी अस्पष्टता, क्लिष्टता नहीं आने पाई है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सरस प्रसादात्मक शब्द स्वत: आकर वहां सुशोभित हो गए हैं।

तद्भव का भी उन्होंने सुन्दरता के साथ प्रयोग किया जहां उन्होंने इस शब्दावली का प्रयोग किया है, वहां की भाषा जन-साधारण की भाषा के समान हो गई है। जैसे तुराई, लावा, सचान, कदराई, सिअरे, बेसाह, भाथी, केवट, बांझ, गेह, अहेर, अहिवात।

देशज शब्दों के प्रयोग में भी भाषा की सहजता और मनोहरता दिखाई पड़ती है। कुछ शब्द ये हैं---डोंगर, डांग, गोड़, पेट, खोरी, डहकि, मोट, अवढर, ढाबर, कांकर गुडी, इसाई, लुकाई, ठग, टहल, कठौता, दोना, बनि, माजा, बागुर, साथरी, आगहुड आदि।

प्राकृत और अपभ्रंश का प्रयोग हुआ है पर ये निरुद्देश्य नहीं हैं। किसी भाव विशेष की अभिव्यंजना शक्ति में सहायक किन्तु आवश्यक अंग बन कर आए हैं। राम-चरित मानस के युद्ध-वर्णन के प्रसंग में ऐसे शब्दों का प्रयोग दृष्टव्य है, जिसमें भट्टा, घट्टा, चपंकहि, दमकंहि, खप्पर, कटक्टकर, कट्ठहिं, दपट्टहिं, खग्ग, अलुज्झि, जुज्झि आदि सांदर्भिक सौष्ठव से पूर्ण है।

विदेशज शब्दों का प्रयोग खूब हुआ है।

अरबी---गरीब, जिनिस जमात, बाग, जहाज, ढोल, नेब, लायक, रजाई, खबरि, सही, फौज, हाल, बजाज, सराफ, फराक, हुनर, मसखरी आदि।

फारसी---जहान, कागद, अंदेसा, करतूति, नेवाजे, पिरोजा, निसाना, जीन, बाजार, बकसीस, साज, लगाम, सिरताज, सहनाई, दरबार, कबूली, कमान, कबार, मजूरी, गुदारा, कोतल, बाज, गुमानी, बेचारा, हवाले, चौगान, नफीरि, बंदी-खाना, बाजीगर आदि।

एक स्थल पर पाली का भी प्रयोग हुआ है, जैसे---नहारू, जिसका अर्थ होता है---तात---'मारेसि गाइ नहारू लागी' २।१३१।३ इन विदेशज शब्दों को तुलसी ने अवधी भाषा की ध्वनियों के अनुरूप उनमें परिवर्तन कर ग्रहण किया है। कहीं-कहीं विदेशज शब्दों में हिन्दी के प्रत्यय लगा देते हैं। जैसे---नवाज से निवाजना,---'राम कपालु निषाद नेवाजा, २।२५०।४

भाषा की व्यंजना-शक्ति को बढ़ाने के लिए उन्होंने कहीं-कहीं संज्ञाओं या विशेषणों से क्रिया-रूपों की रचना की है, तो कहीं क्रिया-रूपों से संज्ञा-शब्दों की। जैसे---

संज्ञा से क्रिया-रूप---

अनुभव---अनुभयउ, २।३।३	अस्तमन---अथँयउ, २।१५६।३
अनुराग---अनुरागा, २।८।१	अनुसरन---अनुसरइ, २।१७२।४

विशेषण से क्रिया-रूपों की रचना---

आकुल---अकुलाइ, २।५७	अधिक---अधिकान, २।५१
कातर---कदराहू, २।७०।४	धवल---धवलिहउँ, २।१६०।३

इस तरह हम देखते हैं कि भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति की अभिवृद्धि के लिए उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश, अरबी, फारसी, गुजराती, मराठी, बंगला, ब्रजी, बुंदेली, भोजपुरी, खड़ी बोली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी आदि की शब्दावली को अपनी भाषा में स्थान दिया है।" तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में ऐसी सुदृढ शब्द-योजना की है कि उसमें परिवर्तन करना संभव ही नहीं है। मानस के इन सोपानों में शब्द इष्टिकाएं इस प्रकार जड़ी हैं कि उनमें से एक छोटी सी ईंट भी खिसका नहीं सकते।"[५५] सटीक शब्द-योजना वह है कि उसके स्थान पर दूसरा शब्द रखा ही नहीं जा सकता है। यदि रख दें तो अर्थ का सारा सौंदर्य विनष्ट हो जाएगा।[५६] सटीक शब्द-योजना के कारण ही साहित्यिक जगत् में तुलसी महाकवि कहलाते हैं। यहां कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

जिन्ह कैं कुछ विचार मन माही। चाप समीप महीप न जाहीं ॥१।२५०।८

धनुष-यज्ञ में जिन राजाओं के मन में कुछ विचार है वे धनुष के समीप नहीं जाते हैं। प्रश्न है कि उन राजाओं के मन में क्या कुछ विचार था? इसका स्पटीकरण 'महीप' शब्द से होता है। ये महीप (मही=पृथ्वी, प=पति) अर्थात् पृथ्वी के स्वामी हैं और सीता 'धरनिसुता' पृथ्वी की पुत्री हैं। तब तो पिता-पुत्री का सम्बन्ध है और धनुष तोड़ने का तात्पर्य है सीता से विवाह करना। अतः ऐसी भावना वाले राजा धनुष के समीप भी नहीं गए। यहां राजाओं के मन की पवित्र भावना को उभारने में 'महीप' शब्द इतना सटीक है कि इसके पर्यायवाची शब्दों को उस स्थान पर रख देने से अर्थ-सौंदर्य की सुरभि समाप्त हो जाएगी।

पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला ॥१।२४८

डॉ० उदयभानु सिंह के शब्दों में यहां "प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर जड़ा हुआ है, उसे हटाया नहीं जा सकता। सुमनों की जयमाला पाणि-सरोज में ही शोभा पाती है। लालायित भूपालों के लिए 'चितए' क्रिया और 'अवचट' क्रियाविशेषण का व्यवहार अत्यंत उपयुक्त है।"[५७]

सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरो विदेह कुमारी ॥१।२३०।८

सीता के सौंदर्य-वर्णन में कवि कहते हैं कि कवियों ने सब उपमाओं को जूठी कर दिया, अब विदेहकुमारी की तुलना किससे करूं। 'देहकुमारी' की उपमा तो मिल सकती है, परन्तु 'विदेहकुमारी' की उपमा असम्भव है। यहां 'विदेहकुमारी' शब्द किसी तरह हटाया नहीं जा सकता। यदि इसके स्थान पर सीता, जानकी आदि शब्द कवि रखते तो वह अर्थ-सौंदर्य की सृष्टि असम्भव थी। सबसे बड़ी विशेषता है तुलसी की भाषा की सफाई और वाक्य-योजना की निर्दोशिता।[५८] वाक्यों में कहीं शिथिलता नहीं है और न एकशब्द जबरदस्ती ठूंसा हुआ प्रतीत होता है। अर्थ-व्यंजकता में प्रत्येक शब्द समर्थ और सधा हुआ है। साधारण जन जिस विषय को बड़ी कठिनता से कह पाते हैं, उसे तुलसी थोड़े ही में सरलता के साथ अभिव्यक्त कर देते हैं। छोटे वाक्यों में सरलता तो है ही, बड़े-से-बड़े वाक्यों में शिथिलता नहीं आई है। यह कवि का शब्दाधिकार है :—

प्रभुकरि कृपा पांवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं ॥
चरन पीठ करुनानिधान के। जनु जुटा जामिक प्रजा प्रान के ॥

संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जनु जुग जीव-जतन के ॥
कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के ॥
भरत मुदित अवलम्ब लहेतें। अस सुख जस सियराम रहे तें ॥

—२/३१६

भावानुकूल भाषा

भावों के अभाव में सुन्दर काव्य का निर्माण असम्भव है। "काव्य का लक्ष्य भावों के उपयुक्त विषयों को सामने रखकर सृष्टि के नाना रूपों के साथ मानव-हृदय का सामंजस्य स्थापित करना है।"[५९] भाव ही काव्य का अथ और इति है।[६०] और तब कवि के लिए यह आवश्यक हो जाता है। कि भावों की अभिव्यंजना सफलता के साथ करें। कवि जब भाव और आवेश की अवस्था में बोलने लगता है तब उसकी भाषा भी तद्नुकूल विशिष्ट और असाधारण हो जाती है। इस समय की भाषा अलंकार, रूपक, बिम्ब आदि से पूर्ण रहती है अतः भावानुकूल भाषा का विधान कवि की सक्षमता का चिह्न है। पण्डित रामदहिन मिश्र के अनुसार कविता की भाषा व्यावहारिक, भावानुकूल तथा सांकेतिक होनी चाहिए। वे कहते हैं "भाषा भाव का वाहन है। भाषा द्वारा ही भाव का प्रकाशन होता है, अतः भाव के अनुकूल ही भाषा का होना आवश्यक है।"[६१] असल में कविता रागात्मक भाषा का उच्चतम रूप प्रस्तुत करती है जिसमें अभ्युदेशन को अभिवृत्तियों के अधीनस्थ और गौण बना दिया जाता है।[६२] अतः कविता की परिभाषा दी गई है कि भावमयी और लयमयी भाषा में मनुष्य के हृदय की मूर्त्त और कल्पनात्मक व्यंजना ही कविता है—"एबसोल्यूट पोएट्री इज दी कंक्रीट ऐण्ड आर्टिटिक एक्सप्रेशन ऑव द ह्यूमैन माइण्ड इन इमोशनल ऐण्ड रिदमिकल लेंग्वेज।"[६३]

तुलसी भी एक भावुक कवि हैं और भावुक कवि की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि मनुष्य के हृदय में घुसकर उसकी भावनाओं को उथल-पुथल लख ले और फिर उसका कलापूर्ण निरूपण करे।"[६४]

मनुष्य के समान भाव दो प्रकार के हैं—सुखात्मक और दुःखात्मक।[६५] .काव्यशास्त्रियों ने भी भावों के आधार पर नौ रसों का विवेचन किया है। रामचरितमानस में रसों का विशद विवेचन हुआ है। जहां भी जिस रस का वर्णन हुआ है, भाषा तदनुकूल होती गई है।

सौतिया डाह ईर्ष्याभरे हृदय की भाषा में व्यंग्यात्मक प्रहार की तीक्ष्णता दिखाई पड़ती है। कैकेयी के बदलते भावों के अनुकूल भाषा की सहजता देखें—

१. कटु वचन से तड़पन की भाषा—

भरत की राउर पूत न होंही। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही।
जो सुनि सर अस लाग तुम्हारे। काहे न बोलेहु बचन सँभारे ॥
देहु उतरु अबुकरहु कि नाहीं। सत्य संघ तुम्ह रघूकुल माहीं ॥
देन कहेहु अब जनि बर देहू। तजहु सत्य जग अपजस लेहू ॥
सत्य सराहि कहेहु बर देना। जानेहु लेइहि मागि चबेना ॥ २/३०

२. जलाने वाली भाषा—

कहइ करहू किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहि राउरि माया ।
देहु कि लेहु अज सुकरि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ।।
राम साधु तुम्ह साधु सयाने । राम मातु भलि सब पहिचाने ।।

३. मारने वाली भाषा—

दानि कहाउब अरु कृपनाई । होइ कि खेम कुसल रौताई ।।
छाड़हु बचन कि धीरज धरहू । जनि अवला जिमि करुना करहू ।। २/३५

राम के वन जाने का समाचार सुनकर सीता प्रभु से अनुनय-विनय करती है कि मुझे भी साथ ले चलें । इस पर श्री राम जिस भाषा में सीता को समझाते हैं, वह भावानुगामिनी है —

मानस सलिल सुधा प्रतिपाली । जिइअ कि लवनि पयोधि मराली ।।
नव रसाल वन बिहरन सीला । सोह कि कोकिल विपिन करीला ।।
रहहु भवन अस हृदय बिचारी । चन्द बदनि दुख कानन भारी ।। २/६२

यहां माधुर्य गुण-सम्पन्न शब्दावलियों की सुषमा दर्शनीय है । ऐसे स्थलों की भाषा में ऐसे अप्रस्तुतों और पदों की योजना है जो हृदय को दुःखित कर उत्साहहीन वातारण प्रस्तुत करती हैं ।[६६]

'रति' भाव के अनुकूल भाषा का एक उदाहरण यह है—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन राम हृदय गुनी ।।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्हीं । मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्हीं ।।
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा । सिय सुख ससिभय नयन चकोरा ।।
भए बिलोचन चारु अचंचल । मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल ।। १/२२९

'रति' जैसे कोमल भाव की व्यंजना के लिए कवि ने माधुर्य गुण की शैली अपनाई है । वर्णन के अधिकांश शब्दों की ध्वनियां अल्पप्राणात्मक हैं, जो कोमलता का संकेत करती हैं । नाद-सौष्ठव ने इस कोमलता को और भी बढ़ा दिया है ।" सम्पूर्ण अलंकार-शास्त्र का पांडित्य रखते हुए भी जब हम तुलसी के काव्य जगत् में प्रवेश करते हैं, तब चौपाइयों के बाद ऐसी चौपाइयां मिलने लगती हैं, जिनके पढ़ते ही हमारी आंखें छलछला पड़ती और ऐसा मालूम होने लगता है, मानो स्वयं हमारे ही अन्दर कोई आनन्दमयी वेदना जग पड़ी हो और हृदय के तन्तु पर मर्म के तार-पार-आघात कर रही हो ।"[६७] डॉ० राजपति दीक्षित की मान्यता है कि "हिन्दी-साहित्य में भवभूति के समान ही रसानुरूप शैली का व्यवहार करने वाला यदि कोई महाकवि है, तो वे हैं गोस्वामी तुलसीदास ।[६८] ग्रियर्सन ने भी तुलसी की इस भाषा-निपुणता को पहचाना था । वे कहते हैं कि तुलसी की शैली का उदाहरण देना समुद्र में से एक ग्लास पानी लेने के समान है । इसकी शैली विषय के साथ बदलती है । राम माता से कैसे बिदा मांगते हैं, यह दृश्य अपार करुणाजन्य है । युद्ध-वर्णन में कठोर भाषा का जन्म हुआ है ।[६९]

पर्यायवाची शब्द

काव्य भाषा में पर्याय शब्द भी कवि की वाक्सिद्धि एवं ज्ञान गरिमा का संकेत उपस्थित करते हैं । ऊपर से देखने में तो भेद नहीं मालूम पड़ता, लेकिन "ज्ञान नयन

निरखत मन माना।" इनमें सूक्ष्म अर्थ-भेद होता है।[७०] एक ही वस्तु के भिन्न-भिन्न स्वरूपों को प्रकट कर देने की शक्ति इनमें रहती है।[७१] पर्यायवाची शब्द अपने सूक्ष्म अर्थ-भेद के कारण ही महत्ता प्राप्त करते हैं और इसलिए कवि भी इस ओर झुकते हैं। इससे भाषा में नवीनता का समावेश होता है, भाषा-प्रवाह में निरन्तरता बनी रहती है। साथ ही औत्सुक्य भी आता रहता है। इससे कवियों का शब्द-भाण्डार वर्द्धित होता है। कल्पना तथा अनुप्रास में सहायक होने के कारण छन्द-निर्माण की सुविधा रहती है। कवि इसके द्वारा पुनरुक्ति-दोष का भी निवारण करते हैं। कभी-कभी उद्वेग और विशेष भावों की अभिव्यक्ति में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भी बन जाते हैं।

तुलसी के 'मानस' में पर्यायवाची शब्द-प्रयोग भी बिखरे मिलते हैं।

जुबतीं भवन झरोखहि लागी। निरखहिं राम रूप अनुरागी॥
१/२२०/२

लोभी लम्पट लोलुप चारा। जे ताकहिं परधन परदारा॥
२/१६८/३

डॉ० उदयभानु सिंह के शब्दों में 'निरखहिं' से द्रुत चित्त की तन्मयता व्यंजित होती है। 'ताकहिं' में कुदृष्टि से विलोकने का भाव है।

पर्याय शब्दों में कहीं-कहीं कवि ने अर्थाभिव्यक्ति के उत्कर्ष और अपकर्ष को भी व्यंजित किया है। सुमित्रा के आगे लक्ष्मण खड़े हैं, राम के साथ वन चलने की आज्ञा के लिए। इस पर सुमित्रा सोचती है—

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई॥
नतरु बोझ भलि बदि बिआनी। रामविमुख सुत तें हित जानी॥२/७५

यहां 'पुत्रवत' और 'बियानी' दोनों पर्याय होते हुए भी लोक में 'बियानी' क्रिया पशुओं में व्यवहृत होती है। यहां अर्थ-सौंदर्य की दृष्टि से दोनों में बड़ा अन्तर आ गया है।

भाव-विशेष की अभिव्यंजना में भी पर्याय शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो सान्दर्भिक दृष्टि से स्वाभाविक भी है राम के सेतु-निर्माण का समाचार मिलते ही रावण घबरा गया और इतना घबराया कि उसके दसों मुख से दस पर्यायवाची शब्द निकल आये। इसका वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं—

बाँध्यो बननिधि नीरनिधि, जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कम्पति उदधि पयोधि नवदीस॥ ६/५

कभी-कभी वे व्यक्तिवाचक संज्ञा के लिए पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग कर देते हैं। ऐसे स्थलों में कवि की दृष्टि अर्थ-प्राधान्य पर अधिक रहती है। सीता की बन्दना करने में तुलीसदास लिखते हैं—

जनक सुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना निधान की॥ १/१८/७

यहां सीता के चार पर्याय प्रयुक्त हैं—जनकसुता, जगजननी, जानकी, करुणा-निधान की **अतिशयप्रिया**।

विशेषण

महाकवि की कृति में विशेषण महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विशेषणों के प्रयोग से कवि भाषा के स्रष्टा का गौरवपूर्ण पद प्राप्त करता है।[७२] अन्यत्र भी दिनकर ने लिखा है—"कवि में जो प्रज्वलनवाला गुण है, प्रेरणा के आलोक में शब्दों को सजीव बना देने वाली शक्ति है, उसका सबसे बड़ा चमत्कार विशेषणों के प्रयोग में देखा जाता है।"[७३] विशेषणों का प्रयोग कवि शक्ति पर निर्भर है। इसलिए विशेषणों के प्रयोग से भी हम किसी कवि के व्यक्तित्व की झांकी पा सकते हैं। महान् कृति की भाषा में विशेषण व्याप्त रहते हैं।[७४] कवि भाव की गहराई में उतरता है तो स्वतः उनके अनुरूप विशेषणों कामंम्जुल रूप प्रवाहित होने लगता है। महाकाव्य में जीवन के प्रत्येक अंग, तत्व का सामंजस्यपूर्ण विवेचन रहता है, मानव-जीवन में विविधता, गहराई और शाश्वतता रहती है। जीवन में आई किसी आकस्मिक घटना की परिस्थितियों का चित्रण करने के लिए कवि तदनुकूल अनेक नये, सार्थक अभिव्यंग्य विशेषणों को अपना सहारा बनाता है। काव्य-भाषा का यह इतना महत्वपूर्ण अंग है कि इसके अभाव में इसकी रमणीयता भी घट सकती है। सचमुच कवियों की जांच विशेषणों के प्रयोग में होती है।[७५] विशेषणों के द्वारा ही कवि भाषा का निर्माण करता है।[७६] उपयुक्त विशेषणों का चयन भाषा की क्षमता को बढ़ाता है। मार्जोरी वाल्टन ने विशेषण की इस महिमा को कुछ कम दिया। वे कहते हैं प्रौढ़ कवि विशेषण से कम और क्रिया से अधिक प्रभाव अर्जित करता है।[७७] कविता में सम्प्रेषण अनिवार्य है इसलिए विशेषण के महत्व को सबने स्वीकार किया है। तुलसी का मानस विशेषणों का अम्बर है।

'बढ़भागी' विशेषण का प्रयोग वहां ही हुआ है, जहां राम या पूज्य के चरणों में प्रेम हो—

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना॥ ६/११
अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिन्दु अनुरागी॥ ७/१

'अलौकिक' विशेषण मात्र राम की लीलाओं से सम्बन्ध रखता है और यह सम्पूर्ण 'मानस' में केवल ९ बार प्रयुक्त है और वह भी प्रथम सोपान में ही—

कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। नहिं आचरज करहिं अस जानी॥
१/३३/४
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥
१/११८/८
मातु विवेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहिं अनुग्रह मोरे॥
१/१५१/३

मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा में मुनि के साथ चलते हैं—

'पुरुष सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनिभय-हरन।'

राम-लक्ष्मण रक्षा करने की भावना से चले, अतः हर्ष विशेषण दिया। यज्ञ रक्षा हो जाने पर मुनि ने जब जनकपुर की बात सुनाई तो—

धनुष यज्ञ सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिवर के साथा॥

यहां 'हर्ष' विशेषण इसलिए है कि मुनियों का भय दूर हो चुका है और अब नये-नये देश भ्रमण का अवसर मिल रहा है, अतः हर्षित होकर चले। अहल्योद्धार के बाद कवि जब उनका चलना लिखते हैं, तो 'हर्ष' विशेषण उठा देते हैं—

चले राम लछिमन मुनि संगा। गए जहां जग पावनि गंगा॥

यहां 'हर्ष' विशेषण का प्रयोग इसलिए नहीं किया कि ब्राह्मणी अहल्या को चरण से स्पर्श करा देने का पश्चाताप उनके मन में है—

दई सुगति सो न हेरि हर्ष हिए। चरण छुए को पछिताउ॥

गंगानदी में स्नान किए, दान किए, और प्रायश्चित किया। अब उनके मन का पश्चात्ताप समाप्त हो गया है। इसलिए कवि अब चलना क्रिया का विशेषण 'हर्ष' लगा देते हैं—

तब प्रभु ऋषिन समेत नहाये। विविध दान महिदेवन्ह पाये॥
हरषि चले मुनि बृन्द सहाया। बेगि विदेह नगर निअराया॥

शब्दशक्ति और काव्य-भाषा

शब्दशक्तियां सर्वाधिक रूप से भी काव्याभाषा को प्रस्तुत करती हैं। इनका शीर्षक ही है शब्द की शक्तियां। शब्द और शब्द के अर्थ में जो सम्बन्ध है, उसी सम्बन्ध का नाम शक्ति है। शब्दशक्तियों से काव्यार्थ की प्राप्ति होती है। शक्ति तीन हैं— अभिधा, लक्षणा और व्यंजना तथा इन तीनों से क्रमशः वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ निष्पन्न होते हैं। अभिधा तो साक्षात् संकेतित वस्तु या अर्थ को कहते हैं। अभिधा तो शब्द संकेतन ही है। अभिधा से बिम्ब निर्माण होता है। लक्षणा भी शब्द पर आश्रित है। इसमें वाच्यार्थ का बाध होता है और उसी के आधार पर नया अर्थ लक्षित होता है। जैसे—'तिन्हहिं सोहाइन अवध बधावा' में अवध (जमीन) बधावा नहीं बजा सकता, तब अवध से लक्ष्यार्थ है अवधवासी। इसके अर्थ के मूल में भी शब्द ही है। अभिधात्मक शब्द के प्रयोग के बिना लक्ष्यार्थ कभी नहीं मिल सकता। इससे भी बिम्ब-निर्माण होता हैं। लक्षणा का अतिशय प्रयोग काव्य में होता है। व्यंजना का काव्य में सबसे अधिक महत्व है। इसका आधार व्यंजना ही है। यह व्यंग्यार्थ अनेक रूपों में दर्शित होता है। व्यंजना में वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न अर्थ सौन्दर्य प्रतिपादित किया जाता है—

राम साधु तुम्ह साधु सयाने।
राम मातु भलि सब पहिचाने॥ —मानस, २/३३/७

राम, दशरथ, कौशल्या तीनों कैकेयी की नजर में छली और कपटी हैं। यहां 'साधु' और 'भलि' शब्द से यही व्यंग्यार्थ की झलक मिल रही है। लेकिन इस व्यंग्यार्थ का मूल अभिधा ही है। व्यंग्यार्थ सहृदयों की प्रातिभ क्षमता से ग्राह्य होते हैं। काव्यपारखी ही व्यंग्यार्थ का आनन्द ले पाते है। व्यंग्यार्थ की पकड़ का सारा चमत्कार, अर्थ-सौन्दर्य की सारी भित्ति किसी एक शब्द-विशेष पर रहती है, भले ही वह नींव की ईंट की तरह अदृश्य और बाधित ही क्यों न हो। इस तरह यह प्रमाणित हो जाता है कि शब्द शक्तियों के कारण काव्य की भाषा काव्यभाषा की समर्थता पाती है।

भाषा के श्री-वर्द्धन में शब्द-शक्तियां भी योगदान देती हैं। शब्द अपने अर्थ के कारण ही महत्व प्राप्त करता है। शब्द या वाक्य की सफलता, उसके अर्थ में है। यह अर्थ जिस व्यापार या शक्ति के द्वारा जाना जाता है, उसे शब्द-शक्ति कहते हैं। कवियों के लिए शब्द और अर्थ ही सहारा है—

कबहिं अरथ आखर बल साँचा।

तुलसी के मतानुसार दोनों में अभिन्नता है—

गिरा अर्थ जल बीचिसम,
कहिअत भिन्न न भिन्न। १/१८

आचार्यों ने शब्द-शक्ति के तीन भेद किए—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना।

शब्द-शक्ति ने मानस की शब्द-साधना में भी गरिमा लाई है।

अभिधा—इससे साक्षात संकेतित अर्थ का बोध होता है। अतः जिसके द्वारा शब्द के वाचक का बोध हो, अभिधा है। जैसे, सिंह कहने से सिंह नामक पशु का तत्काल बोध हो जाता है। साधारण जनता की भाषा का मुख्य आधार यही है। लक्षणा और व्यंजना से जो उत्तम काव्य की सृष्टि होती है, उसका मूलाधार अभिधा ही है।

रामचरितमानस की भाषा में अभिधा शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। इति-वृत्तात्मकता और कथा की साधारण स्थिति में यह शक्ति गतिमयता प्रदान करती है। कथा के अन्दर चलने वाले पौराणिक, धार्मिक आदि वातावरण को प्रकट करने में अभिधा का विशेष हाथ रहता है।

रूढ़— रबि ससि पवन बरुन धनधारी।
अगिनि काल जम सब अधिकारी॥
किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा।
हठि सबहीं के पंथहिं लागा॥ १/१८२

यौगिक— बस सृष्टि जहँ लगि तनुधारी॥
दसमुख बसवर्ती नर नारी॥ १।१८२

योगरूढ़— बारिदनाद जेठ सुत तासू।
भटमहँ प्रथम लीक जग जासू॥ १/१८०/६

लक्षणा—मुख्यार्थ से बाधित होने पर उससे ही संबंद्ध दूसरा अर्थ रूढ़ि या प्रयोजन के आधार पर लगने से लक्षणा शब्द-व्यापार होता है। विशेष और लाक्षणिक अर्थों के लिए कवि इसी शक्ति का सहारा लेता है, "भावुक कवियों की भाषा में लक्षक प्रयोगों की खंख्या बहुत अधिक होती है, विशेष रूप से। काव्य भाषा की चित्रमयता एवं प्रतीक-योजना में तो वाचक पदों के स्थान पर लक्षक पदों का ही व्यवहार होता है।"[७८]

मानस में हमें लाक्षणिक प्रयोग भी बहुत मिलते हैं। कुछ उदाहरण यहां दिए जाते हैं—

भरत की वेदना कितनी मार्मिक हो उठी हे, इन लाक्षणिक शब्दों और वाक्यों के चलते—

लखन राम सिय कहुँ बन दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा ।।
मोहि दीन्ह सुख सुजस सुराजू। कीन्हि कैकेई सब कर काजू ।।
एहि तें मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुमह टीका ।।
२।१८०

भरत कह रहे हैं कि कैकेयी ने लक्ष्मण, राम, सीता को बन का राज्य दिया, स्वर्ग भेज कर पति का कल्याण किया और मुझे, सुन्दर यश तथा उत्तम राज्य दिया। कैकेयी ने सब का काम बना दिया। उससे अच्छा अब मेरे लिए क्या होगा? उस पर भी आप लोग मुझे राजतिलक देने को कहते हैं।

यहां वैपरीत्य सम्बन्ध द्वारा 'पतिहित कीन्हा', 'सुख', 'सुयश', 'सुराज', 'नीका' आदि शब्दों में नितांत रूप से मुख्यार्थ को त्याग कर उनसे विपरीत अर्थ ग्रहण किए गए हैं।

सुनि बिलाप दुखहूँ दुख लागा। धीरजहूँ कर धीरज भागा ।।

विपत्ति की अधिकता और गहराई को दिखाने में कवि ने इस शक्ति का प्रयोग किया है। 'दुखू' और 'विपत्ति' कोई प्राणी नहीं है। यहां इनका लाक्षणिक प्रयोग किया गया है। और, अर्थ यह है कि सब लोगों को इतना अधिक दुःख हुआ कि जो कभी विपत्ति से विचलित नहीं होते थे, उन लोगों ने भी अपना धैर्य छोड़ दिया।

व्यंजना—अभिधा और लक्षणा के बाद शब्द की जिस शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ का बोध होता है, उसे व्यंजना कहते हैं। इसके दो भेद हैं—शाब्दी और आर्थी।

'मानस' की भाषा में व्यंजना-शक्ति का विशेष-विशेष स्थल पर प्रयोग हुआ है। अवसर-विशेष पर सशक्त अभिव्यक्ति के लिए तुलसी ने इसका प्रयोग किया है।

शाब्दीव्यंजना—अनेकार्थी शब्दों के एक अर्थ में नियंत्रित हो जाने के बाद, जिस शक्ति द्वारा उन शब्दों से दूसरा अर्थ ध्वनित होता है, उसे अभिधामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं। यथा :—

भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी।१।१० छन्द

यहां 'भव' के अनेक अर्थ हैं, पर शिव के अर्थ में निश्चित हो गया है, श्मशान की राख शरीर में लगाने के कारण। 'श्मशान की राख' के संयोग से भव का अर्थ यहां शिव मान्य है। व्यंजना से अर्थ निकला कि तुच्छ वस्तु भी महान की संगति में अच्छी लगने लगती है।

आर्थी व्यंजना—वाक्य, बोध्य, चेष्टा, काकु आदि के वैशिष्ट्य से जिस शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ की प्रतीति हो, उसे आर्थी व्यंजना कहते हैं।

वन-गमन के समय सीता की भाषा में जो व्यंग्यार्थ आया है, इसी शब्द-व्यापार के कारण। वह राम से कहती है—

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहिं उचित तप मो कह भोगू ।।

मानस की भाषा में अभिधा का प्रयोग कथात्मक गति पौराणिक वातारण के प्रकटीकरण तथा लोकभाषा की समीपता में अधिक हुआ है। लक्षणा और व्यंजना से कवि ने अपने अभीप्सित अर्थ सुरभि को दीप्ति देने और उनके फैलने में किया है।

गुणानुकूल भाषा

कवि और सहृदय, दोनों ही पक्षों से गुण का घनिष्ठ सम्बन्ध है काव्यभाषा से। भरत ने दोष-विपर्यय को, वामन ने काव्य के शोभा-कारक धर्म को, आनन्दवर्धन, ने रसाश्रित धर्म को गुण कहा है। वामन इसके प्रतिष्ठापक समझे जाते हैं। इनके अनुसार गुण, काव्य के शोभाकर्त्ता हैं। आनंदवर्धन, मम्मट तथा विश्वनाथ ने गुण को रसाश्रित माना। रसानुकूल काव्य-रचना में काव्य भाषा के तत्व को अस्वीकारा नहीं जा सकता। जगन्नाथ ने गुण का सीधा सम्बन्ध काव्य भाषा से स्वीकार करते हुए इसे शब्दार्थ का धर्म बताया है। गुण की संख्या में मतभेद है। भरत और दंडी ने दस, वामन ने बीस, भोज ने चौबीस, पुनः इसके तीन-तीन भेद होने से बहत्तर, अग्नि पुराण ने उन्नीस गुण बतलाए हैं। आनन्द व र्धन ने तीन गुण बताए हैं—माधुर्य, ओज और प्रसाद। वैसे तो अनेक भेदों में से भी ऐसे अनेक गुण है, जिनकी सत्ता स्वीकार्य है, पर अधिक प्रचलित यही तीन गुण हैं, अतः इन्हीं का संक्षिप्त विवेचन यहां प्रस्तुत है।

१. माधुर्य को अनेक आचार्यों ने अनेक शब्दों में कहा है। भरत ने श्रुति-मधुरता, दंडी ने रसमयता, वामन ने समास-राहित्य एवं उक्ति-वैचित्र्य, ध्वनिवादियों ने चित्तद्रावक गुण, मम्मट ने आल्हादकता कहा है। अब देखें, श्रुति-मधुरता, शब्द-योजना पर आधारित है। रसमयता तथा तथा चित्त की द्रवणशीलता साधारणीकरण से संभव है और यह साधारणीकरण भाषा पर आधारित है। समास-राहित्य, उक्ति-वैचित्र्य, तो स्पष्टतः काव्यभाषा की विभेषताएं हैं। आल्हादकता, काव्य-सौंदर्य से आती है और काव्य के सौंदर्य को भाषा ही पर्याप्तता देती है।

२. ओज का अर्थ है—तेज, दीप्ति, जो शब्द तथा अर्थ पर आश्रित हैः—

तद्व्यक्तिहेतू शब्दार्थावाश्रित्यौजौ व्यवस्थितम्। [७९]

इस गुण की निष्पत्ति के लिए सामासिक, संयुक्ताक्षर, तथा ट, ठ, ड, ढ, व, स का अधिक प्रयोग होना चाहिए। काव्यभाषा में ही ओजत्व का ऐसा वर्णन होता है। यह तो ओजत्व की अभिव्यक्ति है, जो भाषा का एक प्रधान गुण है।

३. प्रसाद का अर्थ है—प्रांजलता, सुस्पष्टता। मम्मट और दंडी के अनुसार सुनते ही अर्थ की प्रतीति, भरत के अनुसार सरलता, स्वच्छता, सहजग्राह्यता; वामन ने ओज के विरोधत्व को, तथा विश्वनाथ ने भावव्यंजक शब्दावली एवं अर्थ की रोचकता में प्रसाद गुण माना है। प्रसाद गुण की परिभाषा के सारे तत्वों से काव्यभाषा का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। तात्पर्य यह कि तीनों गुणों की प्रक्रिया एवं परिणाम काव्यभाषा पर आधारित है।

मानस की भाषा की यह भी विशेषता है कि इसकी भाषा गुणानुकूल है। एक ओर जहां कवि ने माधुर्य और प्रसाद गुणों से युक्त शैली का प्रयोग किया है, तो दूसरी ओर ओजगुण से दीप्त शैली का प्रयोग भी उसी सफलता के साथ किया है। यथा—

माधुर्य— कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्हीं। मनसा विस्व विजय कहँ कीन्हीं॥
—१।२३०।१-२

ओज— भट कटत तन सतखंड। पुनि उठत करि पाखंड।
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावहिं रुंड ॥ ३/२०

प्रसाद— बंदउ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥
अमिय मूरिमय चूरन चारु। समन सकल भव रुज परिवारु ॥१।१।१-२

गुण-त्रय का संगम ही 'मानस' को कहा जा सकता है क्योंकि 'रामचरित-मानस' में सब ही एक ठौरी है। अंग्रेजी भाषा में यदि शेक्सपीयर में माधुर्य और प्रसाद गुणों का विकास है तो ओज गुण की बहुत कमी है और मिल्टन में ओज गुण है, तो माधुर्य और प्रसाद गुण बहुत कम।[60]

प्रसंग गर्भत्व

इसे प्रसंग-संकेत भी कहा जाता है। अंग्रेजी अलंकारशास्त्र में इसे एल्यूजन कहते हैं। तुलसीदास का रामचरितमानस 'नानापुराणनिगमागमसम्मतं' है। अतः प्रसंगों के बीच-बीच में पुराणों की अंतर्कथाओं के कारण एक प्रकार की झंकृति का आगमन हो गया है। ऐसी पौराणिक कथाओं से विगत और वर्तमान, दोनों एक साथ जुट जाते हैं, जिससे भाषा में गहनता आ जाती है। ऐसी निगूढ़ एवं उत्कृष्ट अभिव्यक्ति 'मानस' में सर्वत्र बिखरे हुए हैं। स्थालीपुलाकन्याय से कुछ उदाहरण ये हैं—

१. अयत अजामिल गज गनिकाऊ। भए मुकुत हरिनाम प्रभाऊ ॥१।२६।७
२. कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा ॥१।१८७।३
३. गौतम नारी श्रापबस उपल देहधरि धीर।१।२१०
४. कद्रू बिनतहिं दीन्ह दुख तुम्तहिं कौसिला देब।२।१६
५. गाधिसून सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ॥१।२१२।२
६. नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगतसिरोमनि भए प्रह्लादू ॥
ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ॥१॥२६
७. बालमीकि नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी ॥१।३।३

रीति और काव्य भाषा

प्रथमतः वामन ने रीति को काव्य की आत्मा कहा है। वामन के टीकाकार तिप्पभूपाल ने तो रीति को काव्यजीवित कहा है और काव्यजीवित तो काव्यभाषा ही है।[1] संस्कृत-साहित्यशास्त्र में रीति के अनेक पर्याय मिलते हैं—रीति, मार्ग, प्रवृत्ति, पंथा, संघटना, वृत्ति, वर्त्म। विभिन्न आचार्यों ने रीति की परिभाषा भी अपने-अपने शब्दों में दी है। प्रायः सभी आचार्यों की रीति-विवेचना पद और वाणी पर आधारित है। वामन, शिंगभूपाल, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अच्युतराय, आनन्दवर्धन ने पद-योजना पर बल दिया। वाणीमूलकता को राजशेखर, नमिसाधु, शारदातनय ने अपनाया है; जिनके अनुसार वाणी-विन्यास, वाणी-भंगिमा की प्रणाली ही रीति है। इन दोनों वर्गों की रीति-धारणा से काव्यभाषा का सम्बन्ध अधिक स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि प्रदेश-विशेष के आधार पर रीति की संख्या आठ मानी गयी है—पांचाली, वैदर्भी, गौड़ी, लाटी, अवंतिका, मागधी या मैथिली, सौराष्ट्री और द्राविड़ी। तो भी इनमें प्रथम तीन (अर्थात् पांचाली, वैदर्भी,

गौड़ी) अधिक प्रचलित और स्वीकार्य है। अतः इन्हीं तीनों के उदाहरण तुलसी के मानस से दिए गए हैं—

वैदर्भी— तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना ॥१/४४/२
गौड़ी— माखे लखन कुटिल भौं भौहें। रदपट फरकत नयन रिसौहे ॥१/२५२/८
पांचाली—बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमे कमगोचरं।
गोबिंद गोपर द्वन्द्वहर विग्यानघन धरनीधरं ॥३/३२

साथ ही इसकी भाषा का सौन्दर्य वृत्तियों के सौकर्य में भी निहित है। परुषा, कोमला, उपनागरिका वृत्तियों के दर्शन तो इनके 'मानस' में पग-पग पर होते हैं।

रस और काव्य भाषा

रस-सिद्धान्त के अनुसार काव्य की आत्मा रस है। इससे काव्वयस्तु की प्रधानता लक्षित होती है, पर काव्यभाषा से भी इसका सम्बन्ध है। विभिन्न रसों के अनुरूप काव्य-रचना करने में काव्य भाषा की स्पष्ट झलक है। अनुभूति जब तक हृदय में मंडराती है, वह अरूप और मौन है पर जैसे ही अभिव्यक्त होती है तो किसी न किसी भाषा में ही। अभिनव गुप्त ने लिखा है कि शब्द-निष्पीड़न से काव्यानंद की प्राप्ति होती है।[८१] तो यह शब्द-निष्पीड़न काव्यभाषा का काम है। व्यंग्य रस को ध्वनित करने वाले तत्व हैं—वर्ण, पद, पदांश, वाक्य, संघटना आदि और ये सब काव्यभाषा के अंग हैं। भट्टनायक ने साधारणीकरण के विवेचन में अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व की स्थितियों का वर्णन किया है। भावकत्व की स्थिति में कविता द्वारा अभिव्यक्त भाव से प्रेक्षकों का तादात्म्य हो जाता है और भोजकत्व में रसोपभोग की क्रिया रहती है। तो भावकत्व और भोजकत्व, दोनों में काव्यभाषा ही आधार है। भाषा ही के बल पर दोनों स्थितियां आती हैं। अभिनवगुप्त ने अभिधा तथा व्यंजना को स्वीकारते हुए रसों की अभिव्यक्ति स्वीकार की है।[८२] आधुनिक रसवादी आलोचक डॉ० नगेन्द्र भी साधारणी-करण को भाषा (काव्य भाषा) का धर्म मानते हैं।[८३] अतः रस का सम्बन्ध काव्य भाषा से अविच्छेद्य है।

रामचरितमानस में काव्य-स्वीकृत सभी रसों की सुन्दर योजना की गई है। कवि तुलसीदास ने अपने भक्तयात्मक व्यक्तित्व के प्रभाव से भक्ति नामक भाव को 'भक्तिरस' में प्रतिष्ठित भी कर दिया है। रसों का सौन्दर्यात्मक विवेचन यहां सम्भव नहीं है। केवल एक एक उदाहरण प्रस्तुत है, जिनसे पाठक तुलसी की काव्यभाषा में रसोत्कर्ष की प्रांजलता देख सके।

आज तक रसों की स्वीकृत संख्या बारह तक पहुंची है। वे ये हैं— श्रृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शान्त, वात्सल्य, सख्य और भक्तिरस।

१. श्रृंगार रस—तुलसीदास भक्ति-रस के समर्थक हैं। परन्तु कवि-कर्म की दृष्टि से श्रृंगार रस का भी वर्णन जहां-जहां आया है, भाव चित्रों की रमणीयता बढ़ गयी है। श्रृंगार के दो भेद हैं—

(क) संयोग शृंगार—

असकहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ।।
भये बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजेउ दिगंचल ।।
थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें ।।
अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ।।
देखन मिस मृग विहगतरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि ।।—१/२३०-२३४

(ख) वियोग शृंगार—

मनक्रम बचन चरन अनुरागी। केहि अपराध नाथ हौं त्यागी ।।
अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना ।।
नाथसो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा ।।
बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहि सरीरा ।।
नयन स्रवहिं जल निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी ।। ५/३१

२. हास्य—

मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही ।।
जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली ।।
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसकाहीं ।।
मानस, १/१३४/४,१/१३५।१,

३. करुणा रस—

सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूप सीलु बलु तेजु बखानी ।।
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि तल बारहिं बारा ।।
बिलपहि बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहिं पुरबासी ।।
अँथएउ आजु भानुकुल भानू। धरमि अवधि गुन रूप निधानू ।।
—२।१५६।२–३

४. रौद्ररस—

मातु पितहि जनि सोच बस करसि महीस किसोर।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर। १/२६२
सहस बाहुभुज छेदनिहारा।
परसु बिलोकु महीप कुमारा ।। —१/७८/८

५. वीररस—

सुनहु भानु कुल पंकज भानू। कहौं सुभाउ न कछु अभिमानू ।।
जौ तुम्हारि अनुसासनि पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ।।
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक जिमि तोरी ।।
कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं। जो जन सत प्रमान लै धावौं ।।

तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बलनाथ।
जौं न करौं प्रभुपद सपथ, कर न धरौं धनु भाथ ।। १।२५३

६. **भयानक रस—**

पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघु रूप तुरंता ।।
निबुकि चढ़उ कवि कनक अटारी। भई सभीत निसाचर नारी ।।
हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्ठहास करि गर्जा कपि बढ़ि लागि अकास ।।
देह बिसाल परम तरुआई। मंदिर ते मंदिर चढ़ि धाई ।।
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला ।।
तात भानु हा सुनिअ पुकारा। एहि अवसर को हमहिं उबारा ।।
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप. धरे सुर कोई ।।
साधु अवज्ञा कर फल ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा ।।
५/२५-२६

७. **बीभत्स रस—**

नाना भाँति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची ।।
बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा ।।
—६/५२/२-३

८. **अद्भुत रस—**

जोजन भर तेहि बदनु पसारा। कवि तनु कीन्ह दुगुन विस्तारा ।।
सोरह जोजन मुख तेहि ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ ।।
जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दून कपि रूप दिखावा ।।
सत जोजन तेहि आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवन सुत लीन्हा ।।
बदन पइठि पुनि बाहर आवा। मांगा बिदा ताहि सिर नावा ।।
—५/२/७-१२

९. **शांतरस—**

तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी ।।
सरन गए मोसे अघरासी। होहिं सुद्ध नमामि अविनासी ।।
जासु नाम भव भेषज हरन घोर भय सूल।
सो कृपालु मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल ।। ७/१२४

१०. **वात्सल्य रस—**

(क) संयोग-वात्सल्य—

भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा ।।
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई ।।
निगम नेति सिब अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा ।।
धसर धरि भरें तनू आए। भूपति बिहंसि गोद बैठाए ।।

भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ ।
भाजि चले किलकत मुख दहि ओदन लपटाइ ।। -१/२०३

(ख) वियोग वात्सल्य—

जिअइ मीन बरु बारि बिहीना । मनि बिनु फनिक जिअइ दुख दीना ।।
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं । जीवन मोर राम बिनु नाहीं ।।
समुझि देखु जिअ प्रिया प्रबीना । जीवन राम दरस आधीना ।।
२/३३/१-२,२४५/१

११. सख्य रस—

पुर बालक कहि कहि मृदु बचना । सादर प्रभुहिं देखावहिं रचना ।।
सब सिसु यहि मिसु प्रेम बस परसि मनोहर गात ।
तनु पुलकहिं अति हरष हिअं देखि देखि दोउभ्रात ।।
सिसु सब राम प्रेम बस जाने । प्रीति समेत निकेत बखाने ।।
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई । सहित सनेह जाहिं दोउ भाई ।।
राम देखावहिं अनुजहिं रचना । कहि मृदु मधुर मनोहर बचना ।।
१२२४-२२५

१२. भक्ति रस—

कीन्ह दंडवत तीनिउं भाई । सहित पवन सुत सुख अधिकाई ।।
मुनि रघुपति छबि अतुल बिजोकी । भए मगन मन सके न रोकी ।।
स्यामल गात सरोरुह लोचन । सुंदरता मंदिर भव मोचन ।।
एकटक रहे निमेष न लावहिं । प्रभु कर जोरे सीस नवावहिं ।।
तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा । स्रवत नयन जल पुलक सरीरा ।।
कर गहि प्रभु मुनिवर बैठारे । परम मनोहर बचन उचारे ।।
आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा । तुम्हरें दरस जाहिं अघ खीसा ।।
बड़े भाग पाइब सत्संगा । बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा
संत संग अपबर्ग कर कामी भव पर पंथ ।
कहहिं संत कवि कोविद श्रुति पुरान सदग्रंथ ।। —७३३

पारिभाषिक शब्द

काव्य में पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग असंगतिपूर्ण नहीं हैं। ऐसे शब्दों का प्रयोग, जो किसी विशेष शास्त्र में ही हो, पारिभाषिक शब्द कहलाता है। पारिभाषिक शब्द सामान्य भाषा में दूसरे अर्थ में बोधित होते हैं। महाकवियों की रचनाओं में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग भाषा की शक्ति-वृद्धि के लिए होता है। इसलिए पारिभाषिक शब्द भी काव्य भाषा की एक शक्ति है।

रामचरितमानस में अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनसे मानस की काव्यभाषा में अर्थ-गांभीर्य की सृष्टि हुई हैं। यहां कुछ उदाहरण देखें—

१. सुवासिनी—विवाहित नवयुवतियां जब अपने माता-पिता के घर में रहती हैं, तो उसे सुवासिनी कहते हैं—

बहुरि बोलाइ सुआसिनि लीन्ही।
रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्ही ॥ (१/३५३/५)

२. कोहबर—विवाहोपरान्त दुल्लह-दुलहन को एक कमरे में रखा जाता है, वहां देवी-देवता की पूजा होती और दुल्लह को घी-भात खिलाया जाता है। इसी को कोहबर कहते है—

दूलह दूलहनिन्ह सहित सुँदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै। (१/३२६ छंद)

३. विज्ञान—विशेष आध्यात्मिक ज्ञान को विज्ञान कहा गया। इसी अर्थ में 'विज्ञान विशारद' भी किसी को कहा गया है—

जे मुनिवर विज्ञान बिसारद, (१/१२/५)
सोक निबारेउ सबहिं कर निज बिज्ञान प्रकास।(२।११५)
धीरज धरम ज्ञान विज्ञाना।(१।८४।७)
बिनु विज्ञान की समता आवै, (७/९०/३)

४. नेहरुआ—नदियों या तालाबों का गंदा पानी पीने से 'नहरु' रोग ही जाता है। यह भयंकर रोग है। इसमें मनुष्य की टांगें सूज जाती हैं। उसके अंदर मांस में सफेद लंबी डोरी-सी बन जाती है जो बहुत कष्ट देती है। रोगग्रस्त भाग की चमड़ी में छेद होने पर डोरी बाहर निकलने लगती हैं। लोग धीरे-धीरे खींच कर उसे निकालते भी हैं। यदि डोरी टूट जाती है, तो शेषांश से वह फिर उतनी ही लंबी बन जाती है और वह स्थान फोड़े की भांति दर्द करता है। डोरी वाले छिद्र के स्थान पर घाव बन जाता है। इस रोग से बेचैनी बढ़ती है और जलन अधिक होती है। तुलसी ने इसे ही ध्यान में रख लिखा है—

दंभ कपट मद मान नेहरुआ, (७/१२१/३५)

५. पुरोडास—संस्कृत में 'पुरोडाश' का अर्थ है–यज्ञ का हवि अर्थात् वह द्रव्य जिसकी आहुति दी जाती है। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए 'हवि' दिया जाता है। उसी 'हवि' को पुरोडास कहा गया है—

बिपति मोरि को प्रभुहिं सुनावा।
पुरोडास चह रासभ खावा॥ (३/२८/५)

६. तिजारी—एक प्रकार का बुखार जो हर तीसरे दिन जाड़ा लगकर आता है, इसे 'जूड़ी' भी कहा गया है।

त्रिबिध ईषना तरुन तिजारी, (७।१२१।३६)

७. पंजकवलि—यह भोजन की एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है, जिसमें पांच ग्रास पांच मंत्रों द्वारा खाए जाते हैं। खासकर शुक्ल ब्राह्मण इसका पालन करते हैं। पांच प्राणों के लिए अलग-अलग पांच ग्रास इस तरह मंत्रित होते हैं—

प्राणवायु के लिए—प्राणाय स्वाहा,
अपानवायु के लिए—अपानाय स्वाहा,

व्यानवायु के लिए—व्यानाय स्वाहा,
उदानवायु के लिए—उदानाय स्वाहा,
समानवायु के लिए—समानाय स्वाहा।

इसी प्रक्रिया को देखकर तुलसी ने अपने पात्रों से इस विधि का पालन करवाया है—

पंच कवलि करि जेवन लागे।(१/३३९/१)

८. **चूड़ाकरण**—इसका अर्थ होता है, चोटी रखना। यह दस संस्कारों में से एक है। यह जन्म से तीसरे और पांचवें वर्ष में होता है। इसमें गर्भ के बाल प्रथम बार मुड़वाये जाते हैं और चोटी रखी जाती है—

चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई।
विप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई॥—१/२०३/३

९. **अष्टादशभार**—यह संख्या बोधक शब्द है। बारह करोड़ तीस लाख, एक हजार छह सौ आठ वृक्षों की संख्या को अष्टादशभार कहा गया है—

रोमराजि अष्टादस भारा।—(६/१५/७)

१०. **मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार**—ये चारों दर्शन शास्त्र के पारिभाषिक शब्द हैं इनका प्रयोग कवि के शब्दों में—

परम प्रेम पूरन दोउ भाई।
मन बुधि चित्त अहमिति बिसराई॥ (१/२४१/१

यहां पर मन चार वृत्तियों में से संकल्प विकल्पात्मक रूप में हुआ है।

मन करि विषय अनल बन जरई।
होइ सुखी जो यहि सर परई। १३५/४

११. **ईश्वर राम**—राम सर्वेश हैं। मूलाधिदेव है। यही राम सृष्टि के कर्त्ता, पालक और संहारक हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश के भी देव हैं।

इनके दो रूप हैं—निर्गुण और सगुण। राम भक्तों के लिए निर्गुण से सगुण हो जाते हैं।

१२. **जीव**—यह जीव ईश्वर का अंश है। यह सत्य, चेतन एवं आनंदमय हैं। माया के कारण ही यह जीव मोह में पड़ता है—

ईस्वर अंसजीव अबिनासी।
चेतन अमल शहज सुखरासी॥
सो मायाबस भयउ गोसाईं।
बंध्यो कीर मर्कट की नाईं॥ (७/११७/२-३)

यह जीव अनेक है, मायावश्य है। हर्ष, विषाद, ज्ञान, अज्ञान अहंकार और अभिमान जीव के धर्म हैं—

हर्ष विषाद ज्ञान अज्ञाना।
जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥ १/११६/४

१३. माया—राम की अभिन्न भक्ति ही माया है। राम की आज्ञा से माया इस सृष्टि की रचना करती है। उनकी माया ही सीता है। माया दो प्रकार की होती हैं—विद्या और अविद्या माया—

मैं अरु मोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया।।
गो गोचर जहं लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। विद्या अपर अबिद्या दोऊ।।
एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव परा भवकूपा।।
एक रचै जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके।।
—३/१५/१-३

१४. जगत की सृष्टि—संसार रचने वाली माया ही प्रकृति है। प्रकृति में तीन गुण हैं—सत, रज, तम। राम की प्रेरणा से ये तीनों गुण अपना काम करते हैं। अगनित पिंड-ब्रह्मांड सब राम द्वारा निर्मित हैं। विश्व राम का विराट रूप है—

बिस्वरूप रघुबंसमनि, करहु बचन विश्वासु।
लोक कल्पना बेद कर, अंग-अंग प्रति जासु।।—(६/१४)

उपसर्ग

उपसर्ग से अर्थों की सृष्टि होती है। संज्ञा अथवा क्रिया के मूल अर्थ को रखते हुए उसमें विशिष्टता का सृजन करना उपसर्ग का काम है। विशेष भावों और क्षणों को कवि विशेष शब्दों में प्रकट करना चाहता है, इस हेतु उपसर्ग का महत्व स्वीकार्य है। प्रायः सभी महाकवि उपसर्ग का रमणीय प्रयोग करते हैं। इसी से यह स्पष्ट है कि कवि के विशिष्ट क्षणों, कल्पनाओं और भावनाओं को स्पष्ट करने में कितना सहायक है। इससे लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ प्रकट होता है। अतः उपसर्ग भी काव्य भाषा का एक अनिवार्य अंग है।

तुलसी के रामचरित मानस में अनेक प्रकार की भावाभिव्यक्तियों के लिए अनेक प्रकार के उपसर्गों का प्रयोग हुआ है। महाकाव्य की भाषा में अनेक स्तर और भंगिमाएं होती हैं। कभी चरित्र की गरिमा, कभी वस्तु की विशेषता, कभी भाव की कमनीयता के लिए उपसर्ग प्रयुक्त होते हैं। यहां अति संक्षेप में मानस के कुछ उपसर्गों का विवेचन प्रस्तुत है—

१. सुअसन, सु+अशन=सुन्दर, स्वादिष्ट भोजन।

सामान्य भोजन केवल असन है और स्वादिष्ट भोजन सुअशन है। यहां यह चमत्कार 'सु' उपसर्ग से निष्पन्न है—

मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा—(२/११०)

भूखा जिस प्रकार सुस्वादु भोजन से परमानन्द प्राप्त करता है, उसी प्रकार तापस-रूप तुलसी को भी राम दर्शन का वैसा ही परम सुख मिला। यह सारा अर्थ-सौंदर्य 'सु' उपसर्ग के कारण है।

२. **सुरुचि सुवास**—दोनों में 'सु' उपसर्ग के प्रयोग के कारण तुलसीदास ने गुरुवंदना में भक्ति अति काव्य कला का सुन्दर मिलन प्रस्तुत कर दिया है—

बंदउँ गुरुपद पदुम परागा ।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥ —(१।१।१)

केवल रुचि से सामान्य आदमियों से भेंट होगी, और सुरुचि जब है, तो गुरु से दर्शन होंगे। ठीक इसी प्रकार साधारण गंध तो मनुष्य को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकता है। पुष्प की सुगन्ध से आकर्षण पैदा होता है। यहा 'रुचि' और 'बास' में 'सु' उपसर्ग ने कवि के मन के झरोखे खोल दिए हैं। जिस प्रकार सुन्दर गंध से (साधारण गंध से नहीं) लोग पुष्प की ओर आकृष्ट होते हैं, उसी प्रकार हृदय में सुन्दर रुचि होने पर गुरु (ज्ञान) की ओर आकृष्ट होते हैं। यहां सारा चमत्कार उपसर्ग 'सु' से ही निःसृत है।

३. **बिलोचन**—आंख के लिए लोचन शब्द है और इस पर्याय में तुलसी ने इसका एक सौ पांच बार प्रयोग किया है। 'बिलोचन' का प्रयोग कवि ने 'विशेष लोचन, के लिए किया है। सभी पात्रों के नेत्रों को कवि 'विलोचन' नहीं कहते। तुलसी की अपनी मान्यता के अनुसार जो राम के प्रेमी, राम के प्रिय, राम के भक्त, संत आदि हैं उन्हीं के लिए 'विलोचन' का प्रयोग मानस में किया गया है—

गुरु—उघरहिं बिमल बिबेक बिलोचन, (१।१।७)
तेहिं करि विमल विवेक विलोचन, (१।१।२)
रामनाम—बरन बिलोचन जन जिय जोउ, (१।२०।१)
राम—राजीव बिलोचन भवभय मोचन, (१।२११ छन्द)
जनक—बारि बिलोचन पुलकित गाता (१।२१५।७)
राम—स्याम गात कल कंज विलोचन (१।२२१।५)
राम—भये विलोचन चारु अचंचल, (१।२३०।४)
राम—बिस्व बिलोचन चारे, (१।२४२)
सीता—भरे विलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर। (१।२५७)
दूत—बारि बिलोचन बाँचत पाती, (१।२६०।४)

इस तरह संपूर्ण मानस में कवि ने इस 'वि' उपसर्ग की विशिष्टता का सृजन किया और इससे उनकी राम विषयक भक्ति भी दिखायी पड़ती है। यह अर्थ-सौंदर्य 'वि' उपसर्ग से कवि ने उत्पन्न किया और उसे काव्यात्मक-पथ के एक निश्चित विचार-सांचे में भर दिया, जिससे एक ओर काव्यभाषा की सजगता है तो दूसरी ओर राम के प्रति अनन्य भक्ति।

४. **उतंग**—इसका अर्थ है बहुत अधिक ऊंचा। उसमें 'उत्' का योग है। उत् के साथ उत्तुंग>उतंग। समुद्र के पुल के लिए वानर सब काम कर रहे हैं—

अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहि उठाइ।
आनि देहि नल नीलहिं रचहिं ते सेतु बनाइ ॥ (६।१)

यहां 'अति तुंग, से कवि तुलसी को लगा कि जितनी ऊंचाई वे कहना चाह रहे हैं, कहा नहीं जा रहा है, व्यक्त नहीं हो पा रहा है। तब उन्होंने उपसर्ग का ध्यान लगाया। 'उत्' को तुंग में जोड़ दिया तब हुआ उत्तुंग। अब तुलसी को संतोष हुआ कि 'अति उतंग' से मन वाला ऊंचापन द्योतित हुआ। अतः यहां बहुत अधिक ऊंचाई जताने के लिए 'उत्'

उपसर्ग का प्रयोग कर तुलसी ने कवि-कर्म की सार्थकता और प्रवीणता दिखाई। यहाँ प्रयुक्त उपसर्ग ने कवि के हृदय में निवसित अर्थ को स्पष्ट कर दिया है।

५. **विज्ञान**—'वि'+ज्ञान=विज्ञान। सामान्य ज्ञान के लिए ज्ञान ही प्रयुक्त होता है। ईश्वर-पथ पर उन्मुख होने तक के आध्यात्मिक ज्ञान को ज्ञान कहा गया है, लेकिन 'वि' उपसर्ग ने विशिष्ट ज्ञान को प्रकट कर दिया है। परम आध्यात्मिक ज्ञान, जो सांसारिकता से ऊपर उठा हुआ है, संपूर्ण जगत् को सीयराममय देखता है, वही विज्ञानी है। यह अर्थ का सौंदर्य केवल 'वि' उपसर्ग से निःसृत है—

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी।
जेहि बिज्ञान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति ज्ञान विज्ञान बिरागा।
पुनि सब बइनहु सहित बिभागा॥—१।१११।१-२

६. **अकल, अनाम**—ईश्वर की अद्वितीयता प्रमाणित करने के लिए तुलसी को उपसर्ग की शरण में जाना ही पड़ा। 'अ' उपसर्ग ने ईश्वर की गरिमा बतायी—

अकल अनीह अनाम अरूपा।
अनुभवगम्य अखंड अनूपा॥—(७।१११।४)

पुरातन शब्द

काव्यभाषा में पुराने शब्दों के प्रयोग का भी अपना महत्व है। समय तथा परिवेश के संदर्भ में पुराने शब्दों का प्रयोग होता है। काव्य में तीनों काल समाहित रहते हैं या रह सकते हैं। इसीलिए पुराने शब्दों का प्रयोग संगतिपूर्ण है। शब्द इसलिए पुराने समझे जाते हैं कि उनका प्रयोग बिल्कुल ठप्प पड़ जाता है, कविगण अपनी प्रतिभा से उसका प्रयोग कर उसमें ताजापन ला देते हैं। पुराने शब्दों का प्रयोग काव्यभाषा के लिए उचित इस अर्थ में है कि ये शब्द काव्यभाषा के इतिहास में पूर्व प्रयोग की कड़ियां हैं। आज जिसे हम पुराना कहते हैं, अपने समय में वे ही शब्द नये कहलाते होंगे। अतः पुराने शब्द भी काव्यभाषा के लिए महत्वपूर्ण है। इसके प्रयोग से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं—

(क) भाषा में शब्द विकास के पूर्व प्रयोग का पता चलता है,
(ख) विस्मृत शब्दों का पुनरुद्धार होता है और उसमें ताजापन आता है,
(ग) पुराने जकड़े शब्दों का चमकाने में कवि की प्रतिभा और प्रयोग-कुशलता का परिचय मिलता है।
(घ) पुराने काल के चित्रों, वस्तुओं और भावों के विश्लेषण में सजीवता आती है।

पुराने शब्दों के प्रयोग में दो शर्त्तें हैं—बोधगम्यता और औचित्य। पुराने शब्दों में बोधगम्यता तो तत्काल इसलिए भी नहीं आएगी कि वह विस्मृत प्रयोग बहुत समय के बाद अपनाया गया। कवि या प्रयोक्ता के प्रयोग करते ही उसकी बोधगम्यता स्पष्ट हो जाती है। साथ ही उसका औचित्य भी देखना है कि जिस स्थल, प्रसंग अथवा भाव-विशेष के

अर्थद्वार खोलने के लिए शब्दों का प्रयोग हुआ है, वे उचित हैं या नहीं। यह उचितता प्रयोग के पश्चात् ही देखी जा सकती है।

'नानापुराणनिगमागम' को मानने वाले तुलसी का रामचरितमानस इनसे अछूता कैसे रहेगा ? इसमें (अति प्राचीन) चार कल्पों की कथा है, अतः पुराने शब्दों का प्रयोग कवि ने प्रसंगानुसार खूब किया है। एक बात ध्यातव्य है कि कवि ने जिन अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया, हो सकता है, १६वीं शती में उनका अर्थ कुछ वही हो; पर आज के लिए तो बिल्कुल अप्रचलित और पुराने प्रयोग हैं। इसी आधार पर मानस में प्राप्त पुराने शब्दों का कुछ परिचय देखें—

१. नासमझ	के लिए	अचेत—तब अति रहेउँ अचेत, (१/३०)
२. प्रकृति	"	अजा—अनादि सक्ति अबिनासिनि, (१/६८/३)
३. चबूतरे	"	अथाई—हाटबाट घर गली अथाई, (२/११/३)
४. बारबार कथन	"	अनुबाद—सुनत फिरउँ हरिगुन अनुबादा, (७/१/०/१२)
५. अनुमोदन, समर्थन	"	अभिनंदन—गुरु के बचन सचिव अभिनंदनु, (२/१७६/७)
६. अतृप्ति, चाह	"	अवसेरी—भये बहुत दिन अति अवसेरी, (२/७/६)
७. दिशा	"	आसा—देखि बिभीषन दच्छिन आसा, (६/१३/१)
८. इन्द्रिय	"	करन—विषय करन सुर जीव समेता, (१/११७/५)
९. भ्रांति	"	कलिल—मोह कलिल ब्यापित मति मोरी, (६/८२/७)
१०. जनेऊ	"	काखासोती—पिअर उपरना काखासोती, (१/३२७/७)
११. कभी	"	खाँग—राखौं देह नाथ केहि खाँगे, (३/२१/७)
१२. शीशफूल	"	चूड़ामनि—चूड़ामनि उतारि तब दयऊ, (५/२७/२)
१३. पहरेदार	"	जामिक—जनुजुग जामिक प्रजा प्रान के, (२/३१६/५)
१४. पोखर	"	डाबर—डाबर जोग कि हंस कुमारी, (२/६०/५)
१५. कर्ण कुंडल	"	ताटंक—छत्र मुकुट ताटंक सब, (६/१३)
१६. नीच, घटिया	"	प्राकृत—कीन्हे प्राकृत जन गुनगाना, (१/११/६)
१७. शीघ्रता	"	संभ्रम—संभ्रम चलि आई सब रानी, (१/१९३/१)
१८. अपयश	"	अपलोक—लहत सुजस अपलोक विभूती, (१/५/७)
१९. नीलकमल	"	कुबलय—कुबलय बिपिन कुन्त बन सरिसा, (५/१५/३)
२०. जनकपुर निवासी	"	जनकौरा—कोसलपति गति सुनि जनकौरा, (२/२७१/१)
२१. बरात	"	जनते—पहुँची आइ जनते, (१/३४३)
२२. इन्द्र	"	शक्र—गत सक्रसुत कथा सुनाएहु, (५/२७/५)
२३. दयालु	"	घृनी—सब निर्दंभ धर्मरत घृनी, (७/२१/७)
२४. कसाई	"	गवास—मरु मारव महिदेव गवासा, (१/६/८)
२५. हवा	"	बतास—कछु दिन भोजन बारि बतासा, (१/७४/५)

मानवीकरण

भाषा में व्यंग्यार्थ, विशिष्ट भावाभिव्यक्ति, वस्तु-चित्रण का वैचित्र्य, सूक्ष्मभावों की गहन व्यंजना के लिए मानवीकरण का प्रयोग किया जाता है। यह अंग्रेजी का सादृश्यमूलक एक अलंकार है, जिसे पर्सनीफिकेशन कहा गया है। जड़ पदार्थों, गुणों अथवा भावों का मनुष्यवत् आचरण चित्रित करने में मानवीकरण होता है। भारतीय काव्यशास्त्र में यह रूपक अलंकार का एक भेद है, जिसे क्रियारूपक कहते हैं। इससे उक्ति-वैचित्र्य और विशिष्ट भाव, व्यंजन का कार्य लिया गया है। इस तरह मानवीकरण से काव्य की भाषा पुष्ट होती है।

रामचरितमानस की काव्यभाषा में भी अनेक प्रयोग इसके किये गए हैं, जिनसे कवि ने विभिन्न अर्थ-सौंदर्यों की अभिव्यक्ति की है। कुछ उदाहरण ये हैं—

१. गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। (१/७/६)
२. धूमउ तजेउ सहज करु आई। (१/१०/६)
३. तहाँ वेद अस कारन राखा। (१/१३/२)
४. जासु कृपा नहिं कृपा अघाती। (१/२८/३)
५. सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी। (१/२६/१)
६. ···लता निहारि नवहिं तरु साखा।
नदी उमगि अंबुधि कहुँ धाई। संगम करहिं तलाब तलाई॥ (१/८५/१-२)
७. बन सागर सब नदी तलाबा। हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा॥
काम रूप सुन्दर तनु धारी। सहित समाज सहित बर नारी॥
गए सकल तुहिनाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा॥ (१/६४/४-६)
८. तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ, (१/६०/८)
९. राज समाजहिं लाज लजानी,
बल प्रताप बीरता बड़ाई। नाक पिनाकहिं संग सिधाई॥ (१/२६६/६-७)
१०. कर मुद्रिका चोरि चित लेई। (१/३२७/५)
११. सीय बिलोकि धीरता भागी। (१/३३८/५)
१२. सुनत कठिनता अति अकुलानी। (२/४१/१)
१३. सुनि बिलाप दुखहूँ दुख लागा। धीरज हूँ कर धीरज भागा। (२/१५३/८)
१४. सगुन कहै अस विग्रह नाहीं। (२/१६२/६)
१५. नाहित कोसल नाथ के साथ कुसल गइ नाथ। (२/२७०)
१६. लखिगति ज्ञान विराग बिरागे। (२,२६२/१)
१७. भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी। (२/३०३/६)
१८. मोहन अंध कीन्ह कोहि केहि। कोजग काम नचावन जेही॥
तृष्ना केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं जारा॥ (७/७०)

विदेशी शब्द

विदेशी शब्दों का प्रयोग भी भाषा की अभिवृद्धि ही है। प्रयोक्ता में ऐसी शक्ति होती है कि वह विदेशी शब्दों को भी स्वदेशी बना कर पचा डाले। जो शब्द किसी भाषा-

विशेष में रच-पच जाते हैं, उनका प्रयोग होना ही चाहिए। सक्षम भाषा में यह क्षमता रहती है कि वह दूसरी भाषाओं के शब्दों को अपना ले और हिन्दी की ऐसी पाचन-शक्ति बेजोड़ है।

तुलसी के रामचरितमानस में अनेक विदेशी शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसका कारण है कि मुस्लिम सभ्यता और शासन का दबदबा जनता पर था। और तुलसी अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचना चाहते थे। इसके लिए आवश्यक यह था कि उन शब्दों को अपनाएं, जिन्हें अधिकांश जनता बोलती थी। इसीलिए तुलसी ने अरबी और फ़ारसी के अनेक शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग किया है। कहीं-कहीं तो उन्होंने विदेशी शब्दों में हिन्दी के उपसर्ग प्रत्यय जोड़कर अपने अनुरूप ढालने की कोशिश की है। यहां अधिक विस्तार न देकर कुछ शब्दों का परिचय दिया जा रहा है।

(क) अरबी शब्द

१. गनी, गरीब—गनी गरीब ग्राम नर नागर, (१/२७/६)
२. साहिब—सरल सबल साहिब रघुराजू, (१/१३/७)
३. जिनिस, जमात—बहु जिनिस प्रेत पिसाच जोग जमात
बरनत नहीं बनै। (१/९३ छन्द)
४. बाग—देखन बाग कुंअर दुइ आए, (१/२२६/१)
५. जहाज—संकर चाप जहाज, (१/२६१)
६. ढोल—भेरि ढोल दुंदुभी सोहाई, (१/२६३/१)
७. नेब—लखन राम के नेब, (२/१६)
८. बिदा—मागहु बिदा मातु सन जाई, (२/७३/१)
९. लायक—भये राम सब बिधि सब लायक, (२/३/१)
१०. रजाई—राम रजाइ सीस सबही के। (२/२५४/८)
११. खबरि—खबरि लीन्ह सब लोग नहाए, (२/२०४/३)
१२. सही—राउरि सपथ सही सिर सोई, (२/२६६/८)
१३. फौज—कुंभकरन कपि फौज बिडारी, (६/६७/७)
१४. बजाज, सराफ—बैठे बजाज सराफ बनिक, (७/२८ छन्द)

(ख) फारसी के शब्द:

१. जहाना—जे जड़ चेतन जीव जहाना, (१/३/४)
२. कागद—सत्य कहौं लिखि कागद कोरे, (१/९/११)
३. नेवाजे—नाम गरीब अनेक नेवाजे, (१/२५/२)
४. पिरोजा—मानिक मरकत कुलिस पिरोजा, (१/२८८/४)
५. निसाना—सजहु बरात बजाइ निसाना, (१/२९४/८)
६. जीन—रुचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे, (१/२९८/४)
७. बकसीस—भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा, (१/३०६/३)
८. साज—राज समाज एक रथ साजा, (१/३०१/८)
९. लगाम—किंकिनि ललाम लगाम ललित, (१/३१६/ छन्द)

१०. सिरताज—भूप सकल-सिरताज, (१/३२६)
११. सहनाई—सरस राग बाजहिं सहनाई, (१/३४४/२)
१२. दरबार—भरि भूप दरबार, (२/२३)
१३. कबुली—कुबरी करि कबुली कैकेई, (२/२२/१)
१४. कुलह—कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली, (२/२८/८)
१५. कबाद—नहिं जानउँ कछु अउर कबारु, (२/१००/७)
१६. गुदारा—भा भिनुसार गुदारा लागा, (२/२०२/७)
१७. कोतल—कोतल संग जाहि डोरि आए, (२/२०३/४)
१८. ताजी—पारावत मराल सब ताजी, (३/३८/६)
१९. चौगान—खेलिहहिं भालु कीस चौगाना, (६/२७)
२०. नफीरि—भेरि नफीरि बाज सहनाई, (६/७९/६)
२१. गच—नाना रंग रुचिर गच ढारी, (७/२७/३)

तुलसी-प्रयुक्त बहुत से विदेशी शब्द तो अब हिन्दी के अपने प्रयोग हो चुके हैं। इन विदेशी शब्दों से अनेक प्रकार की रीति रिवाज़ और परिवेश उपस्थित किया गया है।

पात्र

महाकाव्य में विविध स्तर के विभिन्न पात्रों की परियोजना देखने में आती है। कवि-कर्म की निपुणता यही होती है कि पात्रों के स्तर के अनुसार भाषा-प्रयोग हो। पात्रानुसारी भाषा ही काव्यभाषा को जीवन्तता प्रदान करती है। पात्रानुसारी भाषा के साथ-साथ यह भी काव्यभाषा की गत्यात्मक क्षमता है कि अवसरानुसार एक ही पात्र की भाषा विभिन्न प्रकार की हो जाती है।

रामचरितमानस के पात्रों का वर्गीकरण अनेक दृष्टियों से हुआ है—लौकिकता के आधार पर, रामभक्ति के आधार पर, उम्र की दृष्टि से, उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के आधार पर, नगरवासी तथा वनवासी के आधार पर, लिंग के आधार पर (पुरुष पात्र और नारी पात्र), वर्णाश्रम के आधार पर किए गए हैं। इन सब में तारतम्यता नहीं है। जाति की दृष्टि से वर्गीकरण हो सकता है और यह अधिक व्यापक वर्गीकरण हो सकता है, जिसमें मानस के प्रायः सभी प्रकार के पात्र समाहित हो जाते हैं। इस दृष्टि से—

मानव के पात्र

(क) मानव १. आदर्श या असामान्य—राम, सीता, रावण, भरत, हनुमान आदि।
२. यथार्थ या सामान्य—दशरथ, लक्ष्मण, कैकेयी, मंथरा,
३. सामान्यतर—प्रजावर्ग, अयोध्यावासी, जनकपुर वासी,
४. सामान्यतम्—केवट, कोल-किरात, भील, शूद्र,
५. तपस्वी पात्र—अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, सरभंग, विश्वामित्र, वाल्मीकि, शबरी, अत्रि,

(ख) दानव १. रावण की ओर आकृष्ट पात्र—ताड़का, सूर्पणखा, खर-दूषण, अक्षय, मेघनाद आदि।

२. राम की ओर आकृष्ट पात्र—विभीषण, मंदोदरी, सुक, माल्यवान, लंकिनी, त्रिजटा आदि।

(ग) देव १. ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, शची, लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, जयन्त आदि।

(घ) वानर-भालू—बाली, सुग्रीव, जामवान, अंगद, हनुमान, तारा

(ङ) तिर्यक—जटायु, संपाती, काकरूप जयन्त, काक भुशुंडी, गरुड़, मकड़ी आदि।

इस वर्गीकरण में भी ध्यान यह रखना है कि कौन पात्र उत्तम है, मध्यम है और निकृष्ट है—इसकी एक ही कसौटी तुलसी के पास है, और वह है राम-प्रेम। जिस पात्र के हृदय में राम के प्रति प्रेम है, वह सत्पात्र है। जिनमें यह प्रेम नहीं है, वे निकृष्ट हैं। इसलिए उपर्युक्त वर्गीकरण के तपस्वी पात्र, रावण की ओर अनाकृष्ट पात्र, वानर-भालू के अंतर्गत के सभी पात्र अच्छे कहे जाएंगे। यहां एक-एक उदाहरण से पात्रानुसारी भाषा का परिचय देखें—

१. (क) **आदर्श पात्र**—राम, सीता, भरत, हनुमान, रावण आदि।

राम—

भगति स्वतंत्र सकल गुन खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य पुंज मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥
पुन्य एक जग महँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्रपद पूजा॥—(७/४५)

(ख) **यथार्थ पात्र**, कैकेयी—

भरत कि राउर पूत न होहीं। आनेहु मोल बेसाहि की मोही॥
जो सुनि सर अस लाग तुम्हारे। काहे न बोलहु बचन सँभारे॥
देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं। सत्यसंघ तुम्ह रघुकुल माहीं॥
देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजस लेहू॥—(२/३०)

(ग) **सामान्यतर पात्र**, प्रजा की भाषा—

मिलेहि माझ विधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी॥
यहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावक धरेऊ॥
निजकर नयन काढ़िचह दीखा। डारि सुधा विष चाहत चीखा॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुवंश बेनु बन आगी॥
पालव बैठि पेड़ु यहि काटा। सुख महँ सोक ठाठ करि ठाटा॥—(२/४७)

(घ) **सामान्यतम पात्र**, केवट आदि—

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटै दोष दुख दारिद दावा॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह विधि बनि भलि भूरी॥
अब कछु नाथ न चाहिए मोरे। दीनदयालु अनुग्रह तोरे॥—(२/१०२)

(ङ) **तपस्वी पात्र**, अत्रि की भाषा :—

नमामि भक्त वत्सलं, कृपालु शील कोमलं।
भजामि ते पदांबुजं, अकामिनां स्वधामदं॥

निकाम श्याम सुन्दरं, भवाम्बुनाथ मंदरं ।
प्रफुल्ल कंज लोचन, मदादि दोष मोचनं ।।—(३/४)

२. **दानव या राक्षस पात्र'**

(क) **रावण के पक्षधर पात्र**, सूर्पणखा—

बोली बचन क्रोध करि भारी । देस कोस कै सुरति बिसारी ।।
करसि पान सोवसि दिन राती । सुधि नहिं तब सिर पर आराती ।।
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी । नासहिं बेगि नीति अस सुनी ।।
—(३।२१)

(ख) **राम के पक्षधर पात्र**, विभीषण—

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी । जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी ।।
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा । करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ।।
तामस तन कछु साधन नाहीं । प्रीति न पद सरोज मन माहीं ।।
अब मोहि भा भरोस हनुमंता । बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता ।।
—(५।७)

३. **देव पात्र**, ब्रह्मा, शिव आदि—

शिव— मामभिरक्षय रघुकुल नायक । घृत बर चाप रुचिर कर सायक ।।
मोह महा घन पटल प्रभंजन । संसय बिपिन अनल सुर रंजन ।।
—(६।११५)

इन्द्र— जय राम सोभाधाम । दायक प्रनत विश्राम ।।
घृत त्रोन बर सर चाप । भुज दण्ड प्रबल प्रताप ।। —(६।११३)

४. **वानर-भालू आदि पात्र**, सुग्रीव की भाषा—

नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई । प्रीति रही कछु बरनि न जाई ।।
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ । आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ ।।
अर्ध रात्रि पुर द्वार पुकारा । बाली रिपु बल सहै न पारा ।।
धावा बालि देखि सो भागा । मैं पुनि गयउँ बंधु संग लागा ।। —(४।६)

५. **तिर्यक पात्रादि**, जटायु की भाषा—

धावा क्रोध वंत खग कैसे । छूटे पबि परबत कहुँ जैसे ।।
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही । निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ।। —(३।२९)

गरुड़ की भाषा—

सुनहु तात जेहि कारन आयउँ । सो सब भयउ दरस तव पायउँ ।।
देखि परम पावन तव आश्रम । गयउ मोह संसय नाना भ्रम ।। —(७।६४)

राम-प्रेमियों की भाषा में साम्य है, सामान्यतम् पात्रों और विपक्षियों की भाषा में काफी अन्तर है । भाषा की पात्रानुसारिता एवं अवसरानुकूलता मानस की काव्य-

सहृदय

भाषा का पूर्ण गठबन्धन पाठकों, सहृदयों से है। काव्य भाषा सहृदय पर आधारित है। भाषा के रूप और अर्थ के निर्धारण में सहृदय सबसे आगे है। महाकाव्यों में सहृदयों के विविध स्तरों के लिए भाषा के भी विभिन्न स्तरों का निर्वाह होता है। कवि इस पर ध्यान रखते हैं। पाठक भी अपनी क्षमता से आनन्द प्राप्त करता है। रामचरितमानस के सहृदय अनेक प्रकार के हैं—

१. **भक्त पाठक**

भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिक जीवन आसा।।
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम प्रन मोर निबाहा।।
हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते।।
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर।।
राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम।। —(२/१५५)

२. **साहित्यिक पाठक**

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरखत मन माना।।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा।।
राम सीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम।।
पुरइन सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई।।
छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा।।
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा।।
धुनि अबरेब कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती।। —(१/३७)

३. **सामान्य पाठक**

आगे चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्वत निअराया।।
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा।।
अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना।।
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहे सुजानि जिअ सयन बुझाई।।
पठाए बालि होंहि मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला।।
विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ अस पूछत भयऊ।।
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा।।
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कबन हेतु विचरहु बन स्वामी।। —(४/१)

कवि का व्यक्तित्व और भाषा

काव्य भाषा में कवि की प्रकृति और उसका व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। इसलिए भाषा, कवि या रचयिता की पूरी पहचान है। भाषा के विश्लेषण से कवि के सम्पूर्ण जीवन की झांकी मिल सकती है। प्रत्येक व्यक्ति, कलाकार के स्वभाव, जीवन-दर्शन आदि में भिन्नता रहने का कारण यही है कि उनकी प्रकृति भिन्न-भिन्न रही है।

भाषा से ही रचयिता की मनोवृत्ति, अवस्था स्पष्ट हो जाती है। भूषण की कविता में यदि वीर रस की दीप्ति मिलती है, तो सूर के गीतों में शान्त श्रृंगार आदि की कोमल भावनाएं। इस पार्थक्य का कारण है दोनों के व्यक्तित्व का अलग-अलग होना। रावण एक वीर योद्धा था वह लड़ने वालों से खोज-खोज कर युद्ध करता था। रावण का व्यक्तित्व ओजस्वी था। इसलिए वैसा योद्धा जब शिव की प्रार्थना करता है, तो भाषा से रणक्षेत्र में शस्त्रास्त्र की टकराहट, उसके खटाखट की कठोर आवाज निकलती मालूम पड़ती है।

शिव की स्तुति में रावण की भाषा—

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजंगतुंगमालिकाम् ।
डमड् डमड् डमड् डमन्निनादवड्मर्वयं
चकार चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम् ।।

इसी शिव की प्रार्थना जब शान्त चित्त वाले गोस्वामी तुलसीदास करते हैं, तो भाषा से प्रशान्तता, निश्चिन्तता दिखलायी पड़ती है। भाषा में दीर्घ स्वरों, गुरु वर्णों से भाषा की गति धीरे-धीरे आगे बढ़ती है। तुलसी लिखते हैं—

नमामीशमीशान निर्वाण रूपं ।
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ।।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं ।
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ।। —मानस, (७/१०८ छन्द)

इस उदाहरण से बिल्कुल स्पष्ट है कि व्यक्तित्व से भाषा पर कितना प्रभाव पड़ता है। एक ही विषय पर ही लेखनी चलाने वाले अनेक कवियों की भाषा में पार्थक्य का आना, भाषा से व्यक्तित्व के प्रकट होने की ही पुष्टि है।

रामचरितमानस में भाषा के आधार पर तुलसी के अनेक व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होते हैं। विस्तृत विवेचन तो प्रथम अध्याय में किया गया है, यहां केवल संक्षिप्त परिचय देखें। व्यक्तित्व की विविधता के अनुरूप भाषा के प्रयोग—

१. कवि रूप

कैकेयसुता सुमित्रा दोऊ। सुन्दर सुत जनमत मैं ओऊ।।
वह सुख सम्पत्ति समय समाजा। कहि न सकइ सारद अहिराजा।।
अवधपुरी सोहइ यहि भाँती। प्रभुहिं मिलन आई जनु राती।।
देखि भानु जनु मन सकुचानी। नदपि बनी संध्या अनुमानी।।
अगर धूप बहु जनु अँधियारी। उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी।।
मंदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इंदु उदारा।।
भवन बेद धुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समय जनु सानी।।
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइँ जात न जाना।।

—(१/१९५)

२. भक्त रूप

इसके दो भेद हैं, धार्मिक और उपदेशक।

(क) धार्मिक भक्त—तुलसीदास विशिष्टाद्वैत के मानने वाले थे, सेवक-सेव्य भाव भी भक्ति इनमें है, इसकी भाषा—

जय राम रमा रमनं समनं। भवताप भयाकुल पाहि जनं ॥
अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत मागत पाहि प्रभो ॥ —(७/१४)

(ख) उपदेशक

बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे ॥
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई ॥
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी ॥
सिमिटि समिटि जल भरहिं तलाबा। जिमि सद्गुन सज्जन पहिं आवा ॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ॥
हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखण्ड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ ॥ —(४/१४)

३. दार्शनिक की भाषा

अव्यक्त मूल मनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध साखा पंच बीस अनेक परन सुमन घने ॥
फल जुगल विधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार-बिटप नमा महे ॥ —(७/१३)

४. समाज-सुधारक

गुरु सिष बधिर अंधकर लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा ॥
हरै सिष्य धन सोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महुँ परई ॥
नारि मुई गृह सम्पत्ति नासी। मूड़ मुड़ाय भए सन्यासी ॥
सुत मानहिं मातु पिता तबलौं। अबलालन दीख नहिं जबलौं ॥
मानस, (७/९८-१०२)

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी ॥
वृद्ध रोग बस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
ऐसेहुँ पति कर किए अपमाना। नारि पाव जम पुर दुःख नाना ॥ —(३/५)

५. पण्डित रूप

(क) पौराणिक

गुरु श्रुति समंत धरम फल पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहेउ गालब नहुष नरेस ॥ —(२/६१)
रामहिं चितब सुरेस सुजाना।
गौतम श्राप परमहित माना ॥ —(१/३१७/६)

(ख) **ज्योतिषज्ञ**

जोग लगन ग्रह बार तिथि, सकल भए अनुकूल ।
चर अरु अचर हरषयुत, राम जनम सुखमूल ।।

(ग) **गणितज्ञ**

जोजन भरि तेहि बदन पसारा । कपि तन कीन्ह दुगुन बिस्तारा ।।
सोरह जोजन सुख तेहि ठयऊ । तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ ।।
जस जस सुरसा बदन बढ़ावा । तासु दून कपि रूप दिखावा ।।
—(५/२/७-१०)

(घ) **संगीतज्ञ**

जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं ।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खलदल गंजनं ।।

(ङ) **काव्यशास्त्रीय रूप**

वर्णानामर्थ संघानां रसानां छन्द सामऽपि ।
मंगलानां च कत्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ ।। —(१/श्लोक-१)
आखर अर्थ अलंकृत नाना । छंद प्रबंध अनेक विधाना ।।
भाव भेद रस भेद अपारा । कवित दोष गुन विविध प्रकारा ।। —(१/६)

रामचरितमानस की काव्यभाषा के विविध रूपों तथा अवसर, पात्र, विषयानुसारी भाषा के विविध स्तरों के अवलोकन से यह स्पष्टतः प्रतीत होता है कि कुल मिलाकर इसकी भाषा के तीन रूप सामने आते हैं—परिनिष्ठित रूप, मृदुमसृण रूप और लोकभापायी रूप ।

परिनिष्ठित भाषा में अनेक प्रकार के अलंकरण, जैसे—अलंकार, गुण, रीति, वृत्ति, विशेषण-औचित्य, मानवीकरण, क्रिया-वैचित्र्य आदि आ गए हैं। परिनिष्ठित भाषा में ऐसा मालूम पड़ता है कि इससे बढ़कर भाषा की सफाई और उत्तमता अब नहीं हो सकती है । वस्तुतः "जहां कविता करने के लिए तुलसीदास कवि की भाषा का प्रयोग करते हैं, वहां वे अद्वितीय नजर आते हैं ।"[८८] ऐसे वर्णनों में वे एक महाकवि के रूप में दिखाई पड़ते हैं, साथ-साथ विषय-वस्तु की निगूढ़ता तथा भाषा की सघनता में महाकवि की भाषा अपनी अंतिम ऊंचाई तक पहुंच जाती है । प्रबन्धकाव्य की प्रबन्धता भाषा के इस रूप के कारण अधिक गौरव पाती है । 'मानस' में स्थल-स्थल पर यह भाषा बिखरी हुई है । कुछ उदाहरण ये हैं—

गुरुपद रज मृदु मंजुल अंजन । नयन अमिअ दृग दोष विभंजन ।।
तेहिकर विमल विवेक विलोचन । बरनऊँ रामचरित भव मोचन ।।
... ...
बटु विस्वास अचल निज धरमा । तीरथ राज समाज सुकरमा ।।
सबहिं सुलभ सब दिन सबोसा । सेवत सादर समन कलेसा ।।१/२

इसी तरह मानस-सर का वर्णन भी परिनिष्ठित भाषा का सौष्ठव उपस्थित करता है । चौपाई का प्रत्येक चरण रूपक के सुरम्य ताल पर जैसे थिरक-थिरक कर नृत्य करता

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना । ज्ञान नयन निरखत मनमाना ।।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा । बरनब सोइ बर बारि अगाधा ।।
रामसीय जस सलिल सुधासम । उपमा बीचि बिलास मनोरम ।।
पुरइनि सघन चारु चौपाई । जुगुति मंजुमनि सीय सोहाई ।।१/३७

राम-लक्ष्मण, भरत-शत्रुघ्न के अवतरण-काल में अयोध्या नगरी की सुषमा का वर्णन कवि ने जो किया है, वह परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा में—

वह सुख सम्पत्ति समय समाजा । कहि न सकइ सारद अहिराजा ।।
... ...
भवन वेदधुनि अति मृदुबानी । जनु खग मुखर समय जनु सानी ।। १/१९५

चित्रकूट में राम-समाज में जनक-समाज के मिलन का वर्णन भी परिनिष्ठित भाषा में हुआ है:—

आश्रम सागर सांतरस पूरन पावन पाथ ।
सेन मनहुँ करुना सरित लिएँ जाहि रघुनाथ ।।
बोरति ज्ञान बिराग करारे । बचन ससोक मिलत नर नारे ।।
सोच उसास समीर तरंगा । धीरज तट तरु बर कर भंगा ।।
... ...
आश्रम उदधि मिली जब जाई । मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई ।।२/२७५-७६

मृदु-मसृण भाषा भी 'मानस' में पर्याप्त है । भाषा के इस रूप में साहित्यिक या काव्यशास्त्रीय विशेषताएं तो रहती ही हैं, इसके सरस, सरल, प्रसाद गुण ओतप्रोत रहते हैं। कवि ने जिस विषय का भी वर्णन किया है तो भाषा की ऐसी सजावट के साथ कि पढ़ने से मन कभी ऊबता नहीं, प्रतिदिन नवीन स्वाद हमें मिलता है ।

राम-लक्ष्मण सीता के वन जाने में, राह में मिलने वाले नर नारियों के हृदय में आई हुई भावना का वर्णन मसृण भाषा में हुआ है, जो स्वाभाविक और मधुर है—

सुनत तीर बासी नर नारी । धाए निज निज काज बिसारी ।।
... ...
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ।।
राम लखन सिय रूप निहारी । होहि सनेह बिकल नरनारी ।।

गांव की भोली-भाली नारियां किस लहजे में सीता से उनके पति और देवर का परिचय पूछती हैं तथा सीता किस तरह से उत्तर देती है, इसका वर्णन तो अति मृदुल हो गया है—

कोटि मनोज लजावनिहारे । सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ।।
सुनि सनेहमय मंजुल बानी । सकुचि सीय मन महुँ मुसुकानी ।।
भई मुदित सब ग्राम बधूटी । रंकन्ह राय रासि जनु लूटी ।।२/११७

रामचरितमानस के रचयिता तथा नामकरण के वर्णन की भाषा की मधुरता देखें—

रामचरित मानस यहि नामा । सुनत श्रवन पाइअ विश्रामा ।।
मनकरि विषय अनल बन जरई । होइ सुखी जौं यहि सर परई ।।

रामचरित मानस मुनि भावन । विरचेउ सम्भु सुहावन पावन ।।
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन । कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन ।।
रचि महेस निज मानस राखा । पाइ सुसमय सिवा सन भाषा ।।
तातें रामचरितमानस बर । धरेउ नाम हियं हेरि हरषि हर ।।१/३५

'मानस' के अधिकांश भाग की भाषा इसी स्तर की है। कहीं से भी इसका उदाहरण ढूंढा जा सकता है ।

'मानस' में लोकभाषा की झलक मिल जाती है। तुलसीदास ने अपने इस प्रबन्ध-काव्य में काव्यभाषा को इतना ऊंचा उठाया है कि वहां लोकभाषा को खोजना पड़ता है। केवट की भाषा में, कोल-किरातों की भाषा में, कैकेयी की भाषा में भाषा का यह रूप दिखलाई पड़ता है। कथा में गति लाने के लिए सीधी-सादी पंक्ति भी लोकभाषा का रूप धारण कर लेती है; जैसे—

आगे चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्वत निअराया ।।
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत दीख अतुल बलसीवा ।।४/१

अशोकवाटिका को उजाड़ने के अभियोग में हनुमानजी (स्वयं ब्रह्मास्त्र से बंधकर) रावण के सम्मुख लाए गए। रावण ने पूछा—तुमने किस अपराध से राक्षसों को मारा? इस पर हनुमान ने जो उत्तर दिया, इसमें लोकसभा का तत्व विद्यमान है—

सब के देह परम प्रिय स्वामी । मारहिं मोहि कुमारग गामी ।।
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे । तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारे ।।५/२६

केवट की भाषा तो बिलकुल लोकभाषा ही है—

छुअत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई ।।
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाइ । बाट पाइ मोरि नाव उड़ाई ।।
एहि प्रतिपालउँ सब परिबारू । नहिं जानउँ कछु अउर कबारू ।।
केवट राम रजायसु पावा । पानि कठवता भरि लइ लावा ।।
बहुत काल मैं कीन्ह मजूरी ।'आजु दीन्ह विधि बनि भलिभूरी ।।
—२/१००/१०२

संदर्भ

१. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, काशी, सं॰ २०२०, पृ ३१८ ।
२. हजारी प्रसाद द्विवेदी, सूर-साहित्य, १९६१, पृ० १६३ ।
३. सुमित्रानन्दन पन्त, पल्लव, १९५८, पृ० १९ ।
४. पं० रामदहिन मिश्र, काव्य में अप्रस्तुत योजना, पृ० ४६ एवं डॉ० नगेन्द्र, देव और उनकी कविता, उत्तरार्द्ध, पृ० १७३ ।
५. पं० रामदहिन मिश्र, काव्य में अप्रस्तुत योजना, पृ० ४६ ।
६. ई० ए० ग्रीनिंग लैंबोर्न, द रुडिमेन्ट्स ऑव क्रिटिसिज्म, पृ० ७० ।

८. लौंजाइनस, काव्य में उदात्त तत्व, अनु० डॉ० नगेन्द्र, दिल्ली, १९५८, पृ० ६६।
९. डॉ० नगेन्द्र, काव्यबिम्ब, दिल्ली, १९६७ पृ० ५।
१०. सी० डी० लेविस, दि पोएटिक इमेज, लंदन १९५८, पृ० १९।
११. डॉ० नगेन्द्र, काव्य-बिम्ब, दिल्ली, १९६७, पृ० १३।
१२. वारान्निकोव, मानस की रूसी भूमिका, अनु० डॉ० केशरी नारायण शुक्ल, लखनऊ, १९५५, पृ० ९०।
१३. हिन्दी साहित्य कोश, भाग.१, काशी, सं० २०२०, पृ० ५१५।
१४. विनयमोहन शर्मा, साहित्यान्वेषण, देहरादून, १९६९, अवलोकन।
१५. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, वौल्यूम २१५ पृ० ७००।
१६. वेबेस्टर, उद्धृत, विलियम टिंडल, दि लिटैरेरी सिम्बॉल, पृ० ६
१७. मीड्स, उद्धृत जॉर्ज व्हेले, पृ० १६६।
१८. आर्नल्ड हाउसर, सिम्बॅल्स ऐंड वैल्यूज, पृ० २३१।
१९. डॉ० जगदीश नारायण त्रिपाठी, आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार-विधान, कानपुर, पृ० १६६
२०. ई० अन्डरहिल, मिस्टीसिज्म, पृ० १३।
२१. डॉ० रमेश कुंतल मेघ, तुलसी : आधुनिक वातायन से, १९६७, पृ० २८६।
२२. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग.२, काशी सं० २०१७, पृ० ७१६।
२३. महावीर प्रसाद द्विवेदी, रसज्ञ-रंजन, पृ० १७।
२४. टी० शिप्ले, डिक्शनरी ऑव वर्ल्ड लिटररी टर्म्स, लंदन, १९५५, पृ० ३२७।
२५. डॉ० श्याम परमार, भारतीय लोक-साहित्य, बम्बई, १९५४, पृ० १८५।
२६. डॉ० राजकुमार पाण्डेय, रामचरितमानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन, कानपुर, १९३३ पृ० ३५३।
२७. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, काशी, सं० २०२०, पृ० ७५६।
२८. डॉ रमेश कुंतल मेघ, तुलसी : आधुनिक वातायन से, १९६७, पृ० २८७।
२९. डॉ० राजपति दीक्षित, तुलसीदास और उनका युग, काशी, सं० २०१८, पृ० ४३९।
३०. लाला भगवानदीन तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कवितावली टीका, प्रयाग, सं० २०१३, 'अंतदर्शन' पृ० ३१।
३१. डा० रमेश कुंतल मेघ, तुलसी : आधुनिक वातायन से, १९६७, पृ० २८८।
३२. द मैन दैथ हैथ नोट म्युजिक इन हिज सोल कैनडीड नेवर बी ए जीनियस पोएट बायोग्रेफिया लिटरेरिया, १५, पृ० ५९।
३३. सुमित्रानन्दन पन्त, पल्लव, १९५८, पृ० २८।
३४. भिखारीदास, काव्य-निर्णय, बम्बई, माघ संवत १९५३, दो० १७, पृ० ३।
३५. डा० उदयभानु सिंह, तुलसी काव्य मीमांसा, दिल्ली, १९६६, पृ० ३८७।
३६. कुंतक, 'वक्रोक्ति जीवित व्या० रामचन्द्र मिश्र (चौखम्बा, १९५८) १/१० की वृत्ति, पृ० ४८।
३७. रामचन्द्र शुक्ल, 'चिंतामणि' भाग-२ (काशी २००२ वि०) पृ० ५।
३८. लाला भगवानदीन तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कवितावली टीका, प्रयाग, सं० २०१३, भूमिका, पृ० २।
३९. वामन, काव्यलंकार, सूत्र, ११/१/२।
४०. सुमित्रानन्दन पंत, पल्लव, १९५८, भूमिका, पृ० १९।
४१. रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, काशी, सं० २०१९, पृ० १२९।

४२. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत भाग-२, काशी, सं० २०१७, पृ० ३४४।
४३. डा० नगेन्द्र, काव्य में उदात्त तत्व, दिल्ली, १९५८, भूमिका, पृ० १५।
४४. रामधारी सिंह 'दिनकर', मिट्टी की ओर, पटना, १९४६, पृ० ११५।
४५. सं० रामलाल वर्मा शास्त्री, अग्नि पुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, दिल्ली, १९६६, अध्याय ८; श्लोक-२, पृ० ७०।
४६. रामचन्द्र शुक्ल, रस-मीमांसा, काशी, सं० २०१७, पृ० ३०।
४७. हर्बर्ट रीड, इंग्लिश प्रोज स्टाइल, पृ० १५।
४८. महावीर प्रसाद द्विवेदी, रसज्ञ-रंजन, पृ० १३।
४९. आई० ए० रिचर्डस पोएट्रीज एंड साइंसेज, न्यूयार्क, १९७० पृ० ४३
५०. जॉन लिविंग्स्टन लोवेस, कॉनवेनशन ऐंड रिवोल्ड इन पोएट्री, लन्दन, १९३८, पृ० ५।
५१. उद्धत, दि वर्ल्ड ऑव पोइट्री, क्लाइव सैंसम, लन्दन, १९५९, पृ० २००।
५२. होरेस, ऑन दि आर्ट ऑव पोएट्री, अनु० टी० एस० डोर्थ, पेंडियन बुक्स, पृ० ८०।
५३. क्लियंथ ब्रूक्स, दि वेल रौट अर्न, लंदन, १९६०, पृ० १९७।
५४. ए० जी० ग्रियर्सन, जर्नल ऑव रॅवाहल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, १९०३, पृ० ४५५।
५५. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, गोसाई तुलसीदास, वाराणसी, सं० २०२२, पृ० ६६।
५६. डॉ० उदयभानुसिंह, तुलसीकाव्य मीमांसा, दिल्ली १९६६, पृ० ३५०।
५७. उपरिवत्।
५८. रामचन्द्रशुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, काशी सं० २०१९, पृ० १४८।
५९. रामचन्द्र शुक्ल, रस मीमांसा, काशी, सं० २०१७, पृ० १२९।
६०. आर० एच० फोगल, दि इमेजरी ऑव कीट्स ऐंड शेली, पृ० १७।
६१. पं० रामदहिन मिश्र, काव्यदर्पण, पटना, १९५५, भूमिका, पृ० २०।
६२. आई० ए० रिचर्डस, प्रिंसिपुल्स ऑव लिटररी क्रिटिसिज्म, लंदन, १९६३, पृ० २७३।
६३. वाट्स टंडन, इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, लंदन, १८८४।
६४. लाला भगवानदीन तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कवितावली टीका, प्रयाग, सं० २०१३, अंतदर्शन, पृ० १३।
६५. रामचन्द्र शुक्ल, रस मीमांसा, काशी, सं २०१७, पृ० १५३।
६६. डॉ० राजपति दीक्षित, तुलसीदास और उनका युग, वाराणसी, १९५३, पृ० ३७७।
६७. रामधरी सिंह 'दिनकर', मिट्टी की ओर, पटना, १९४६, पृ० ११५।
६८. डॉ० राजपति दीक्षित, तुलसीदास और उनका युग, वाराणसी, १९५३, पृ० ३६९।
६९. ए० जी ग्रियर्सन, जर्नल ऑव रॅवायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, १९०३, पृ० ४५१।
७०. डॉ० उदयभानु सिंह, तुलसी काव्य मीमांसा, दिल्ली १९६६, पृ० ३५०।
७१. सुमित्रानन्दन पंत, पल्लव, १९५८, भूमिका, पृ० २९।
७२. रामधारी सिंह 'दिनकर', मिट्टी की ओर, पटना, १९४३, पृ० ११८।
७३. दिनकर, काव्य की भूमिका, पृ० १४५।
७४. रेने वेलेक, एप्रिशिएसंस, ए हिस्ट्री ऑव मॉडर्न क्रिटिसिज्म, पृ० २९-३०।
७५. आजकल, अक्टूबर, १९५६ पृ० ६४।
७६. ई० ए० गीनिग लैंबोर्न, दि रुडिमेंट्स ऑव क्रिटिसिज्म ऑक्सफोर्ड, १९२५, पृ० ७५।
७७. मार्जोरी बाउल्टन दि एनोटोमी ऑव पोएट्री, लंदन, १९५९, पृ० १५५।
७८. डॉ० रामकुमार सिंह, आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा, कानपुर, १९६५, पृ० ११९।

७९. आनन्दवर्धन, 'ध्वन्यालोक' व्या० विश्वेश्वर सिद्धांत शिरोमणि, (वाराणसी, २०१६, वि० सं०) २१६, पृ०-९८ ।
८०. राजबहादुर लमगोड़ा, विश्व साहित्य में रामचरित मानस, रामवन, सतना, १९४४, पृ० १३ ।
८१. अभिनवगुप्त 'लोचन' आनन्दवर्धन, व्या० जगन्नाथ पाठक (चौखम्बा, १९३५,) पृ० १३४
८२. उपरिवत, पृ० १९९-२०० ।
८३. डॉ० नगेन्द्र, रस-सिद्धांत, (दिल्ली, १९६४, पृ० २१२ ।
८४. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, दिल्ली, १९६९, पृ० १०२ ।

उपसंहार

गोस्वामी तुलसीदास एक अद्वितीय भक्त महाकवि थे। हिंदी के बहुत कवियों को यह अवसर मिला, कि भाषा के विकसित-काल में उन्होंने रचनाएं कीं। भाषा की परम्परा उन्हें उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त थी। तुलसी को भी यह सुविधा प्राप्त थी। तत्कालीन भाषा ब्रजी में उन्होंने कवितावली, विनयपत्रिका, गीतावली आदि का प्रणयन किया। अवधी में रामचरितमानस की रचना कर वे इतने सफल हुए कि राम-काव्य पर तुलसी के बाद लिखने वालों के समक्ष उनका काव्य साहित्यिक उत्कृष्टता का मापदंड बन गया। राम काव्य के अन्य पूर्ववर्ती या परवर्ती कवि उस समर्थता तक नहीं पहुंच सके। उसके मूल में इनकी भाषा की क्रांतिकारी योजना तथा असाधारण दक्षता विद्यमान है। हिंदी साहित्य के भक्तिकाल को स्वर्ण-युगत्व प्रदान करने वालों में तुलसी प्रमुख हैं, जिसका श्रेय अंततोगत्वा उनकी भाषा को ही दिया जा सकता है। उसी काल में अनेक कवियों ने काव्य-सर्जना की; परन्तु तुलसी के काव्य की गहराई और सोद्देश्यता जैसी पहुंच उनमें देखने को नहीं मिलती।

उपनिषद् में कहा गया है कि "मन एव मनुष्यानां कारणं बंधमोक्षयो:।" साधारण सामाजिक व्यक्ति के जीवन के सारे कार्य-कलाप और कवि की रचनाएं, बहुत ठोस रूप में उनकी प्रकृति को लक्षित करती हैं। मध्यकालीन अवधी बोली को कवि की विमल क्रांति ने नये रूप में उपस्थित किया। 'मानस' की भाषा में उनका व्यक्तित्व व्याप्त है। भाषायी तत्व अप्रत्यक्ष रूप से कवि की आंतरिक प्रकृति को ही प्रकट करते हैं। कवि अपने समय को भी ठुकरा नहीं सकता। सब तरह की परिस्थितियां कुछ न कुछ कवि को प्रभावित करती हैं। तुलसी-काल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि सभी परिस्थितियां विश्रृंखल थीं। इनके व्यक्तित्व की महानता ने हीं इन परिस्थितियों को एक स्थान पर संग्रथित किया। महान् व्यक्तित्व के स्पर्श से भाषा भी स्वयं महीयसी बन जाती है। तुलसी के महान व्यक्तित्व के कारण ही उनके द्वारा रचित काव्य राम-काव्य का उच्चतम आदर्श बन गया। केशवदास ने भी रामचरित को ही अपना विषय बनाया, परन्तु उनकी 'रामचंद्रिका'' महान् व्यक्तित्व के अभाव में 'मानस' के टक्कर की नहीं हो सकी। कवि के जीवन-काल की ऐतिहासिक परिस्थितियों के वैषम्य को दूर करने का लक्ष्य महान् रचनाओं में रहता ही है क्योंकि कवि जागतिक वातावरण से स्वयं इतना ऊपर उठ जाता है कि उनके किसी वाक्य में अकल्याणकारी तत्व आ नहीं सकते हैं। तुलसी का व्यक्तित्व इतना ऊंचा था कि वस्तुत: काल-विशेष को उन्होने प्रभावित किया। इस अद्वितीय अक्षुण्ण व्यक्तित्व के अनेक रूप दिखलाई पडते हैं।

राजनीति और सामाजिक वातावरण की विशृंखला के शमन में उनका व्यक्तित्व समाज-सुधारक है। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के कारण जन-समाज की आंतरिक शांति विलुप्त हो चुकी थी। तुलसी के शक्ति, शील और सौंदर्य-सम्पन्न राम के रूप ने जन-मानस को एक सहारा दिया; भक्ति की भागीरथी में संतोष की सांस मिली एवं निरवलंब हृदयों को ठोस अवलंब मिला। भक्ति-भावना को काव्यात्मक अभिव्यक्ति मिली। चतुर्दिक ज्ञान-रश्मियों से दीप्त उनकी प्रतिभा में पंडित-रूप सम्पूर्णत्व को द्योतित करते हैं। वे आज निःसंकोच विश्वकवियों में एक कहे जाते हैं। उन्होंने बिल्कुल प्राचीन पद्धतियों का न अनुकरण किया है और न उनको उपेक्षित दृष्टि से देखा है। महान् कवि की अपनी कला होती है। तुलसी के 'मानस' की काव्यभाषा इसका प्रमाण उपस्थित करती है। प्राच्य साहित्य में दार्शनिक होना और भक्त होना परस्पर सम्बद्ध है, दोनों में विरोध नहीं। कवि की दार्शनिकता सम्बन्धी भाषा भी अपनी-अपनी विशेषता रखती है। सम्पूर्ण भक्ति-काल में इनका व्यक्तित्व अनुपम है।

'रामचरितमानस' में जो लोकप्रियता प्राप्त हुई, वह भारतवर्ष में किसी भी ग्रन्थ को नहीं। लोकप्रियता का प्रधान आधार है सहृदय या सामाजिक। केशवदास के पाठकों को जहां उनकी कृतियों में सिर्फ कलाबाजी हाथ लगती है, वहां तुलसी के पाठक भाव-सरिता में अवगाहन करते हैं। चाहे पाठक साहित्यिक हों, भक्त हों भोले-भाले ग्रामीण हों, महापंडित हों, राजनीतिक हों, सबको 'मानस' उनकी योग्यता और प्रभुता के अनुकूल संतुष्टि प्रदान करता है।

लोक-मानस के अन्तस्तल में पैठ जाना साधारण प्रतिभा का काम नहीं है। साधारण क्या, बड़े-से-बड़े कवि भी काव्य की समुचित अभिव्यंजना के अभाव में लोक-मानस के भीतर स्थान नहीं पाते हैं। कुछ कवि आदरणीय तो होते हैं, परन्तु व्यापक रूप में नहीं। 'मानस' की भाषा लयता, प्रवाह में व्यापकत्व है, और शाश्वत गुण हैं जिसके चलते हर तरह के पाठक, श्रोता लाभान्वित होते हैं। भाषा की अतिशय मधुरता से अनपढ़ पाठक भी सहसा आकृष्ट हो जाते हैं तथा विषय-वस्तु के महान् आदर्श के सम्मुख नतमस्तक हो जाते हैं। उनके 'मानस' में दार्शनिक को दार्शनिकता, भक्त को भक्ति, साहित्यिक पाठकों को साहित्यिकता, राजनीतिक को राजनीति तथा भावुक, भोले, अनपढ़ पाठकों को भाव-लहरियां मिलती हैं।

तुलसी ने रामकथा का उदात्त रूप प्रस्तुत किया उदात्त भाषा में। यह एक ऐसा रत्नाकर है जिसमें किसी तरह की इच्छा लेकर आने वालों को खाली हाथ लौटना नहीं पड़ता। पाठक या श्रोता की समस्याओं का तुलसी ने अच्छी तरह से अध्ययन और मनन किया था। इसलिए इस क्षेत्र में उन्हें आशातीत सफलता मिली। ऐसे, वक्ता की योग्यता के अनुकूल श्रोता की मान्यता कवि ने स्वीकार की है। पर यह निर्विवाद सत्य है किसी भी प्रकार के सहृदय के लिए 'मानस' की भाषा समस्या नहीं बनती है।

व्याकरण भी भाषा का एक अनिवार्य तत्त्व है। पर, लोकभाषा में प्रचलित व्याकरण के हू-बहू रूप को कवि अपनी भाषा में नहीं अपनाता; उसे परिष्कृत कर,

अपने अनुकूल बनाकर ग्रहण करता है। इसलिए व्यवहार और समाज में प्रचलित व्याकरण से कवि का काम नहीं चलता है। तुलसी के 'मानस' की भाषा में व्याकरणिक अंग भी महत्वपूर्ण हैं। कवि ने साधारण वर्णन में सर्वदा व्याकरण के नियमों का पालन किया है। लेकिन महाकाव्य में साधारण वर्णन तो केवल कथा में गति लाने के लिए होता है। अधिकांश स्थल तो भावात्मक उत्कृष्ट व्यंजना से सम्पन्न होते हैं। 'मानस' की भाषा यही रूप प्रस्तुत करती है। कवि ने विशेष भावों की अभिव्यक्ति के लिए सामान्य नियमों का बन्धन अस्वीकार किया है। तुलसीदास ने सामान्य स्थलों पर तो व्याकरण के बन्धनों को स्वीकारा है, परन्तु भाव-विशेष की अवस्था में जब सामान्य व्याकरण के नियम बाधक होने लगते हैं, तब वे उनकी अवज्ञा कर आगे बढ़ जाते हैं। तुलसी के समय में हिंदी व्याकरण का कोई भी व्यवस्थित रूप नहीं था। उनके प्रयोग ही व्याकरण के नियम बन गए। इस तरह की विषम स्थिति में भाषा को किसी तरह काम चलाऊ रूप दिया जा सकता है, परन्तु महाकाव्योचित भाषा का सुनिष्ठित रूप प्रदान करना वस्तुतः असाधारण कवि का काम है और यही हम 'रामचरितमानस' में पाते हैं। निष्कर्ष यह है कि तुलसीदास ने भाषा के बन्धनों को सहर्ष स्वीकार किया है। भावाभिव्यक्ति में सामान्य नियमों को अस्वीकार करना भी व्याकरण को मानना ही है। क्योंकि व्याकरण सटीक विचाराभिव्यक्ति की साधक है, बाधक नहीं।

काव्य की भाषा सदा लोकभाषा के आधार पर टिकी रहती है। पर वह स्वयं लोकभाषा नहीं होती। उसके निर्माण में लोकभाषा के तत्व अवश्य रहते हैं, परन्तु उससे वह अपने मूल रूप से भिन्न एवं परिवर्तित रूप में। विधा की दृष्टि से 'मानस' महाकाव्य है। यह तुलसी की सर्वोत्कृष्ट कृति है। इसकी भाषा में साहित्यिक माधुर्य है। इसकी संस्कृत साहित्यिकता के कारण इसमें लोकभाषायी रूप अत्यल्प हैं। 'मानस' में धार्मिक तत्व भी महत्व रखते हैं। भक्ति-संपन्नता के कारण यह ग्रन्थ पवित्र धर्मग्रन्थ का पर्याय बन गया है। पहले तो इसकी सर्वाधिक प्रसिद्धि धार्मिक भक्तों तक थी, अब भक्त तथा साहित्यिक, दोनों इसके मर्म-पीयूष से तृप्त होने लगे। कवि ने भक्ति को काव्यात्मक भाषा में अभिव्यक्त किया। साथ ही, काव्य के अनेक सारे तत्व भी अपनी समग्रता में विद्यमान हैं। तुलसी की प्रवृत्ति यह लक्षित होती है कि वे परिष्कृत कलात्मक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। जो कहना चाहते थे, इसे उच्च साहित्य का आकार मिला। लोकभाषा की भी उन्होंने अवहेलना नहीं की है। काव्यभाषा के बीच में निहित लोकभाषा भी प्रसंग और संदर्भ के साथ साधारण अभिव्यक्ति के बदले-विशेष भाव और अर्थ-द्योतन करती है। यह कैकेयी, केवट, कोल-किरात आदि की भाषा से स्पष्ट है। कवि ने जन-सामान्य की अवधी को तो साहित्यिक भाषा बना ही दिया, जहां ठेठ अवधी प्रयुक्त है, वहां भी कवि का कुछ विशेष अभिप्राय रहता है। ऐसे तुलसी ने 'ग्राम्यगिरा' में गाथा गायी, पर इनकी असाधारण शक्ति के कारण महाकाव्य की परिनिष्ठित भाषा हो गई।

'मानस' एक महाकाव्य है। महाकाव्य की जो आंतरिक, उदात्त विशेषताएं होनी

चाहिए, वह 'मानस' में विद्यमान है। इसकी भाषा बिल्कुल महाकाव्योचित है। महाकाव्य में राष्ट्र, मानव-जीवन, प्रकृति की विविध परिस्थितियों का अंकन रहता है। प्रधान कथावस्तु के साथ प्रासंगिक कथावस्तु एवं अनेक छोटे-छोटे प्रसंग भी समाहित रहते हैं। जीवन की शाश्वत मनोवृत्तियां रहती हैं। 'मानस' की महाकाव्योचित भाषा की सार्थकता इतनी अधिक है कि साहित्यिकों को यह श्रेष्ठ महाकाव्य प्रतीत होता है। महाकाव्य में कथोपकथन तथा विविध परिस्थितियों के अनुरूप भाषा का जो विन्यास "मानस' में मिलता है, वह अत्यन्त दुर्लभ है। यही कारण है कि केशव की 'रामचन्द्रिका' में गरिमामयी विषयवस्तु के रहते हुए भी महाकाव्योचित भाषा का विधान नहीं है। 'मानस' में जहां पर जिस तरह के प्रसंग आए हैं, भाषा की अनुरूपता तदनुकूल है कवि का कवि-व्यक्तित्व यहां सजग है।

महाकाव्य का क्षेत्र विस्तृत होता है, उसमें विविध प्रकार के पात्रों का विनियोग होता है। महाकाव्य में भाषा का नियमन पात्र भी करते हैं। 'मानस' में अनेक प्रकार के, अनेक स्तर के पात्र हैं और कवि ने प्रत्येक पात्र-वर्ग के अनुकूल भाषा रखी है। ऊंच, नीच, मध्यम, निकृष्ट, साधु-संत, देवता, छली-प्रपंची, पुरुष, नारी, सभ्य और असभ्य आदि सभी प्रकार के पात्रों के लिए भाषा भी तदनुकूल अनेक प्रकार की होती गई है। और यही महान् कवि की रचना-प्रक्रिया की विशेषता भी है। यही नहीं, कवि की सूक्ष्मेक्षिका भाषा के क्षेत्र में और भी आगे बढ़ती हुई दिखाई देती है। इन्होंने जीवन में आए हुए विभिन्न अवसरों के अनुकूल एक ही पात्र की भाषा भी विभिन्न प्रकार की दिखाई है, जो महाकाव्य की भाषा में एक विशेष गरिमा ला देती है। पात्रानुसारी तथा एक पात्र के विभिन्न अवसरानुसारी भाषा न तो 'रामचन्द्रिका' में है और न 'पद्मावत' में।

छन्द तो भाषा के ही विधान हैं। इसलिए काव्यभाषा का सम्बन्ध छन्द विधान से है। छन्दों के चयन में भी एक बारीकी रहती है, जो विषय-वस्तु को अधिक सशक्तता के साथ प्रकट करती है। जिस प्रकार पात्र के अनुसार विविध प्रकार की भाषा कवि रखते हैं, उसी प्रकार अनेक तरह के विषयों के निरूपण में तुलसी ने अनेक प्रकार के छन्द रखे हैं। कवि के जीवन-काल में जितनी शैलियां प्रचलित थीं, सभी में उन्होंने रचनाएं कीं। स्तुति में संस्कृत भाषा की मधुरिमा तथा हिंदी में अनेक छन्दों का प्रयोग सटीक है। तुलसी के पहले जायसी ने मात्र 'दोहा-चौपाई' का ही प्रयोग किया। तुलसी ने 'मानस' के प्रत्येक सोपान के प्रारम्भ में, और आवश्यकतानुसार बीच-बीच में भी संस्कृत छन्दों का विधान किया है जिसमें भाषा की विषयानुसारिता देखी जाती है। इसी प्रकार हिंदी में दोहा, चौपाई, दोहरा, चौपैया, हरिगीतिका आदि का प्रयोग भाषा की भंगिमाओं को ध्यान में रखकर किया गया है। जायसी की तरह तुलसी का काम मात्र दोहा-चौपाई से नहीं चल सकता था। अतः भाव तथा विषय के वैविध्य के लिए उन्होंने कुल इक्कीस प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया। प्रचलित छन्दों की अपेक्षा अनेक नये छन्दों के प्रयोग में भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति की वृद्धि ही उनका उद्देश्य है।

तुलसीदास ने अवधी में अनेक ग्रन्थ लिखे, जिनमें 'मानस' महाकाव्य है, 'रामाज्ञाप्रश्न', 'पार्वतीमंगल', 'जानकी मंगल' ये खण्डकाव्य हैं तथा अन्य मुक्तक हैं। भाषा की दृष्टि से 'मानस' जैसा सर्वाधिक सर्वांगपूर्ण उत्कृष्ट काव्य कोई दूसरा नहीं है। 'पार्वती मंगल' की भाषा में कुछ साहित्यिकता है। 'बरवैरामायण' की भाषा अलंकार-युक्त है, अन्य अवधी रचनाओं में काव्यत्व की दृष्टि से यह अद्वितीय है। अन्य रचनाओं की भाषा साधारण कोटि की है, हालांकि उनमें भी कहीं-कहीं भाषा के चमत्कार पाये जाते हैं।

'मानस' की काव्यभाषा के अनेक उपादान हैं। काव्यभाषा तो एक बनायी हुई भाषा है। इसके अंगों में व्याकरण, छन्द, सहृदय, पात्र, शिल्प के साथ-साथ वर्ण, शब्द, अर्थ, सटीक वाक्य-योजना, कोमलकांत, पदावली, संस्कृतनिष्ठता, विशेषण, पर्याय, शब्द-शक्ति, गुण रीति, वृत्ति, दोष, लय, नाद, चित्रात्मकता, बिंबात्मकता, प्रतीक, औपम्य, विरोध, अनुरणनात्मकता, संगीतिका, प्रसंगगर्भिता, धारावाहिकता, क्रिया-वैचित्र्य, अलंकार, विषयानुसारिता, पात्रानुसारिता, प्रबन्धकत्व आदि ने 'मानस' की भाषा को काव्यभाषा का रूप दिया है। इन तत्वों के कारण काव्यभाषा की दृष्टि से भी 'राम-चरितमानस' का स्थान हिंदी काव्य में अद्वितीय है।

तुलसी की भाषा की संपूर्णता के अनेक आधार हैं। युग ने इनकी भाषा को काफी प्रभावित किया है। सोलहवीं शती का चतुर्दिक वातावरण ही अस्तव्यस्त था। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक आदि परिस्थितियों में समन्वय और सामंजस्य स्थापित करना एक असाधारण व्यक्तित्व का कार्य है। कवि को इन सब परिस्थितियों से जूझना पड़ा है, यही कारण है कि इनकी भाषा में अनेक प्रकार के व्यक्तित्वों के दर्शन होते हैं एवं विविध व्यक्तित्वों के अनुरूप भाषा भी अनेक रूपों, अवस्थाओं, भावनाओं से संपन्न मिलती है। साधु-संगति से लेकर दुष्टमंडली एवं विद्वान से लेकर मूर्खों तक—सबकी संगति का उन्हें अनुभव था। वे भारतीय संस्कृति-वाङ्मय से पूर्णतया परिचित थे। यद्यपि 'मानस' में तुलसी के व्यक्तित्व के अनेक रूप द्रष्टव्य हैं और प्रत्येक के अनुरूप भाषा भी किंचित बदलती चलती है तथापि 'मानस' की भाषा का एक सर्वनिष्ठ तत्व है संस्कृतनिष्ठता।

विषयवस्तु ने भी कवि की भाषा को कम प्रभावित नहीं किया है। उन्हीं के समय में सूरदास कृष्णकाव्य की रचना कर रहे थे जिनकी भाषा ब्रजी थी। इनसे पूर्ववर्ती कवि जायसी ने अवधी में रचना की, परन्तु उनका विषय सूफी प्रेमाख्यानक रहा। परंपरा के विरुद्ध कवि तुलसी ने राम की कथा सम्मुख रखी। इसमें उनका बहुत बड़ा उद्देश्य छिपा हुआ था। वह यह कि कृष्ण की कथा से तथा प्रेमाख्यानक विषय से तत्कालीन समाज का कल्याण नहीं हो सकता था। अतः विषय-वस्तु की गरिमा के चलते भाषा में एक स्वाभाविक वैशद्य दिखाई पड़ता है।

उसी तरह 'मानस' की काव्यभाषा के स्वरूप-निर्धारण में शिल्प का भी एक स्थान है। प्रबंध-काव्य के भेदों में 'रामचरितमानस' महाकाव्य है। परंतु यह महाकाव्य, अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती सभी महाकाव्यों में उत्कृष्ट है महाकाव्योचित भाषा

के कारण। सूरदास ने महाकाव्य नहीं रचा। जायसी का 'पद्मावत' महाकाव्य है, परंतु 'मानस' जैसी महाकाव्योचित भाषा का विधान इसमें नहीं है। तुलसी सच्चे संत थे। देश की अवस्था को देख कर दुखित थे। अतः देश के सुधार के लिए सर्वगुण संपन्न आदर्श राम का आदर्श चरित्र उन्होंने प्रस्तुत किया है। वे भक्त महाकवि थे। इसलिए भक्ति के अतिरेक में कुछ स्खलन भी हो गये हैं। जैसे, राम जन्मकाल में, उनके विराट रूप दिखाने पर कौशल्या स्तुति करती है, तो कवि उनके मुख से राम के लिए 'खरारी' शब्द का प्रयोग करा देते हैं, जब कि खरदूषण का कोई प्रभाव वाला अस्तित्व भी नहीं था। इसी प्रकार राम की स्तुति में अहल्या उन्हें 'रावणरिपु' कहती है। ऐसे तो भाषा के निर्धारक तत्व अनेक हैं परन्तु युग और व्यक्तित्व का धरातल सबसे ऊंचा है।

'रामचरितमानस' की काव्यभाषा का निर्धारण मुख्यतया कवि का युग और कवि का व्यक्तित्व करता है। एक ही तुलसी अनेक व्यक्तित्व धारण कर काव्य-भाषा का भी बहुरंगी रूप प्रस्तुत करते हैं। कवि-व्यक्तित्व के अनेक रूप और कवि का अस्त-व्यस्त युग 'मानस' की भाषा में स्पष्ट परिलक्षित होता है। किन्तु जिस प्रकार कवि ने अन्य क्षेत्र में अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया है, उसी प्रकार काव्यभाषा में भी अपनी अद्भुत समन्वयकारिणी क्षमता का परिचय दिया है। 'मानस' की भाषा काव्यभाषा का एक संग्रथित रूप उपस्थित करती है, जो हिंदी-साहित्य में दुर्लभ है।

सहायक ग्रंथ-सूची

संस्कृत तथा हिन्दी

१. अरस्तू का काव्यशास्त्र, डॉ० नगेन्द्र, दिल्ली, सं० २०२३।

२. अभिनव भारती, अभिनव गुप्त पादाचार्य, बड़ौदा, १९३४।

३. अस्तित्ववाद और नयी कविता, प्रकाश दीक्षित, दिल्ली।

४. अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, सं० रामलाल वर्मा, दिल्ली, १९६९।

५. अभिज्ञान शाकुंतलम्, कालिदास।

६. अवधी-कोष, रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर', इलाहाबाद, १९५५।

७. आधुनिक समीक्षा, डॉ० देवराज।

८. आधुनिक साहित्य बोध : एक परिसंवाद, श्री शिक्षायतन कॉलेज, कलकत्ता।

९. आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार-विधान, डॉ० जगदीश नारायण त्रिपाठी, कानपुर।

१०. आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा, डॉ० रामकुमार सिंह, कानपुर, १९६५।

११. आचार्य दंडी एवं संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास-दर्शन, डॉ० जयशंकर त्रिपाठी, इलाहाबाद, १९६८।

१२. इतिहास और आलोचना, डॉ० नामवर सिंह।

१३. ईशादि नौ उपनिषद् गीताप्रेस, गोरखपुर।

१४. उक्ति व्यक्ति प्रकरण, दामोदर पंडित।

१५. कविप्रिया, केशव ग्रन्थावली, सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, इलाहाबाद १९५४ ई०।

१६. कवितावली टीका, ला० भगवानदीन एवं विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रयाग, सं० २०१३।

१७. काव्य के तत्त्व और जीवन के सिद्धांत, डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु', पटना, सं० २०१६।

१८. काव्यालंकार, रुद्रट, १६वां अध्याय।

१९. काव्यालंकार, भामह तथा काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, वामन, द्वितीय सं०।

२०. काव्यादर्श, दंडी।

२१. काव्यानुशासन, हेमचन्द्र।

२२. काव्य में उदात्त तत्त्व, डॉ० नगेन्द्र, दिल्ली, १९५८।

२२क. कादंब या विष, रामकुमार वर्मा।

२३. कविवर बिहारी, जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', काशी, १९५३।
२४. काव्यदर्पण, पं० रामदहिन मिश्र, पटना, १९५५।
२५. काव्य में अप्रस्तुत योजना, पं० रामदहिन मिश्र।
२६. काव्य-बिंब, डॉ० नगेन्द्र, दिल्ली, १९६७।
२७. काव्य-निर्णय, भिखारी दास, बंबई, माघ संवत् १९५३।
२८. काव्य की भूमिका, रामधारी सिंह 'दिनकर'।
२९. कुमार सम्भव, कालिदास।
३०. काव्यप्रकाश, मम्मट, पूना, १९२१ ई०।
३१. काव्य मीमांसा, राजशेखर, बड़ौदा, १९३४।
३२. काव्यशास्त्र, भगीरथ मिश्र।
३३. काव्य के रूप, डॉ० गुलाबराय।
३४. काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास, डॉ० शकुंतला दुबे।
३५. क्रांतिकारी तुलसी, श्री नारायण सिंह, प्रयाग, १९६५।
३६. कवितावली, गीताप्रेस, गोरखपुर।
३७. कृष्ण गीतावली, गीता प्रेस, गोरखपुर।
३८. काव्य, कला एवं अन्य निबन्ध, जयशंकर प्रसाद।
३९. कंबन और तुलसी की काव्य विषयक मान्यताएं, डॉ० पेमरश्वर दयालु अग्रवाल, मेरठ, १९६८।
४०. गूढ़ार्थ चंद्रिका (द्वितीय भाग), दण्डी स्वामी प्रज्ञानन्द सरस्वती, मानस-संघ, रामवन सतना।
४१. गोस्वामी तुलसीदास, रामचन्द्र शुक्ल, काशी, सं० २०१९।
४२. गोस्वामी तुलसीदास, शिवनन्दन सहाय, पटना, १९६१।
४३. गोस्वामी तुलसीदास, श्यामसुन्दर दास, इलाहाबाद, १९५२।
४४. गोसाईं तुलसीदास, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, काशी, सं० २०२२।
४५. गोस्वामी तुलसीदास, डॉ० रामदत्त भारद्वाज, दिल्ली, १९६२।
४६. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय-साधना, डॉ० व्यौहार राजेन्द्र सिंह, ना० प्र० सभा काशी, सं०वि० २०२६।
४७. गोस्वामी तुलसीदास और उनके ग्रन्थ, भगीरथ प्रसाद दीक्षित, लखनऊ, १९५५।
४८. गीतावली सटीक, गीता प्रेस, गोरखपुर।
४९. घटरामायण, तुलसी साहब, इलाहाबाद, १९६१।
५०. चिन्तामणि, रामचन्द्र शुक्ल।
५१. चिन्तन और कला, सं० इन्द्रनाथ मदान।
५२. चन्द्रलोक, जयदेव।
५३. छायावाद युग, डॉ० शम्भु नाथ सिंह।
५४. छन्दार्णव, भिखारीदास।
५५. छन्दः प्रभाकर, भानु।

५६. जायसी ग्रन्थावली, रामचन्द्र शुक्ल, काशी, वि० सं० २००३।
५७. जायसी की बिम्ब-योजना, डॉ० सुधा सक्सेना, दिल्ली, १९६६।
५८. जानकी मंगल, तुलसीदास गीता प्रेस, गोरखपुर।
५९. तुलसीदास और उनका युग, डॉ० राजपति दीक्षित, काशी, १९५३।
६०. तुलसीदास, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, प्रयाग, १९५३।
६१. तुलसीदास, चन्द्रबली पांडेय, काशी, सं० २०१४।
६२. तुलसी काव्य-मीमांसा, डॉ० उदयभानु सिंह, दिल्ली, १९६६ ई०।
६३. तुलसीदास की भाषा, डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव, लखनऊ, सं० २०१४।
६४. तुलसीदास और उनका काव्य, पं० रामनरेश त्रिपाठी, दिल्ली, १९५१।
६५. तुलसी ग्रंथावली, सम्पादक त्रय, दूसरा खण्ड, काशी, सं० २०१५।
६६. तुलसी के चार दल, सद्गुरु शरण अवस्थी, प्रयाग, १९३५।
६७. तुलसी : आधुनिक वातायन से, रमेश कुंतल मेघ, १९६७।
६८. तुलसी, राम बहोरी शुक्ल।
६९. तुलसी सन्दर्भ, डॉ० माताप्रसाद गुप्त।
७०. तुलसी-दर्शन, डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र।
७१. तुलसी दर्शन-मीमांसा, डॉ० उदयभानु सिंह।
७२. तुलसी साहित्य बदलते प्रतिमान, डॉ० चन्द्रभान रावत, मथुरा, १९७१।
७३. तुलसीदास के काव्य में नैतिक मूल्य, डॉ० चरणदास शर्मा, दिल्ली, १९७१।
७४. तुलसीदास, वस्तु और शिल्प. डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित, आगरा, १९५९।
७५. तुलसी नव मूल्यांकन, डॉ० रामरतन भटनागर, इलाहाबाद, १९७१।
७६. तुलसी का मानस, डॉ० मुंशीराम शर्मा, कानपुर, १९७२।
७७. तुलसी : व्यक्तित्व और विकास, हरिकृष्ण अवस्थी, लखनऊ, १९५२।
७८. तुलसी का गवेषणात्मक अध्ययन, राजकुमार 'कुमार', आगरा सं० २०१२।
७९. तुलसी एक विश्लेषण, डॉ० नगेन्द्र, दिल्ली, १९५६।
८०. तुलसी साहित्य की भूमिका, डॉ० रामरतन भटनागर, इलाहाबाद, १९४६।
८१. तुलसी रसायन, डॉ० भगीरथ मिश्र, लखनऊ, १९५४।
८२. तुलसी, प्रो० राम बहोरी शुक्ल, इलाहाबाद, १९५२।
८३. तुलसी का कथाशिल्प, रांगेय राघव, दिल्ली, १९५९।
८४. तुलसीदास, जीवनी और विचारधारा, डॉ० राजाराम रस्तोगी, कानपुर, सं० वि० २०२०।
८५. तुलसी साहित्य रत्नाकर, रामचन्द्र द्विवेदी पटना, सं० १९८६।
८६. तुलसी सूक्ति-सुधा, वियोगी हरि, सा० से० बनारस।
८७. देव और उनकी कविता, डॉ० नगेन्द्र।
८८. दशरूपक, धनंजय।
८९. दोहावली, तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर।
९०. दृष्टिकोण, आचार्य नलिन विलोचन शर्मा।

९१. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन।
९२. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि।
९३. नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, गजानन माधव मुक्तिबोध, दिल्ली, १९७१।
९४. नयी कविता, नयी आलोचना और कला, कुमार विमल, पटना, १९६३।
९५. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त शान्तिस्वरूप गुप्त, दिल्ली, १९६७।
९६. पल्लव, सुमित्रानन्दन पन्त।
९७. प्रसाद के नाटक, सत्य हरिश्चन्द्र।
९८. पद्मावत में लोकतत्व, डॉ० रवीन्द्र 'भ्रमर', इलाहाबाद, १९६२।
९९. पद्मावत, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, चिरगांव, सं० २०१२।
१००. पार्वती मंगल, तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर।
१०१. प्रपत्ति रहस्य, श्रीकान्त शरण, अयोध्या।
१०२. ब्रजभाषा व्याकरण, पण्डित किशोरीदास वाजपेयी।
१०३. बुद्ध चरित्र, रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९५।
१०४. बिहारी का काव्य, सं० हरिमोहन मालवीय, इलाहाबाद, १९६९।
१०५. बरवै रामायण, तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर।
१०६. भारतीय लोक साहित्य, डॉ० श्याम परमार, बम्बई, १९५४ ई०।
१०७. भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, डॉ० नगेन्द्र।
१०८. भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास, जगदीश प्रसाद कौशिक, जयपुर, १९६९।
१०९. मानस-व्याकरण, पण्डित विजयानन्द त्रिपाठी, रामवन सतना।
११०. मानस में रामकथा, डॉ० बलदेव मिश्र।
१११. मिट्टी की ओर, रामधारी सिंह 'दिनकर', पटना, १९४६।
११२. मा० पा० कोश, डॉ० नगेन्द्र, दिल्ली, १९६५।
११३. मानस की रूसी भूमिका, अनु० डॉ० केशरी नारायण, शुक्ल, लखनऊ, १९५५।
११४. मानस का कथा-शिल्प, डॉ० श्रीधर सिंह काशी, १९५९।
११५. मात्रिक छन्दों का विकास, डॉ० शिवनन्दन प्रसाद।
११६. महाभारत, व्यास।
११७. मानस-रहस्य, जयरामदास दीन।
११८. मानस की रामकथा, परशुराम चतुर्वेदी।
११९. मानस-पीयूष, महात्मा अंजनी नंदन शरण, गीता प्रेस।
१२०. मानस शब्द सागर, बद्रीदास अग्रवाल, कलकत्ता, १९५५।
१२१. मध्यकालीन हिन्दी साहित्य और तुलसीदास, शोध की दिशाएं, डॉ० भगीरथ मिश्र, भोपाल, १९६९।
१२२. मानस अनुशीलन, श्री शम्भु नारायण चौबे, काशी, सं० २०२४।
१२३. मानस-मयंक, श्री शिवलाल पाठक, बंकीपुर, सं १९२०।
१२४. मानदण्ड, आचार्य नलिन विलोचन शर्मा।
१२५. मानस का अयोध्याकाण्ड, डॉ० परमेश्वर दयाल अग्रवाल, मेरठ १९६८।

१२६. मानस के मंगलाचरण, श्री सुदर्शन सिंह, रामवन सतना।
१२७. युगकवि तुलसी, डॉ० सत्यकाम वर्मा, दिल्ली, १९६४।
१२८. रामचरित मानस, काशिराज संस्करण, सं०आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।
१२९. रामचरित मानस, सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, इलाहाबाद।
१३०. रामचरित मानस, गीता प्रेस गोरखपुर, सं० वि० २०१३।
१३१. रसज्ञ-रंजन, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आगरा, सं० २०१४।
१३२. रामचरित मानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन, डॉ० राजकुमार पांडेय, कानपुर, १९६३।
१३३. रामकथा, उत्पत्ति और विकास, डॉ० कामिल बुल्के, प्रयाग।
१३४. रसमीमांसा, रामचन्द्र शुक्ल, काशी, सं० २०१७।
१३५. रामचरित मानस (सिद्धान्ततिलक), श्रीकांतशरण, लहेरिया सराय, सं० २००१।
१३६. रामकाव्य की भूमिका, डॉ० जगदीश प्रसाद शर्मा, कानपुर, १९६८।
१३७. रामचरित मानस की पाश्चात्य समीक्षा, सुखवीर सिंह, दिल्ली, १९७१।
१३८. रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, शिवकुमार शुक्ल, कानपुर, १९६४
१३९. रामलला नहछू, तुलसीदास, गीता प्रेस।
१४०. रामाज्ञा प्रश्न, तुलसीदास, गीताप्रेस।
१४१. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन. डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, मेरठ, १९६६।
१४२. वाक्यपदीय, श्री भर्तृहरि।
१४३. विचार और विवेचन, डॉ० नगेंद्र, दिल्ली।
१४४. विक्रमोर्वशीय, हजारीप्रसाद द्विवेदी।
१४५. वक्रोक्तिजीवितम्, कुंतक।
१४६. विश्व साहित्य में रामचरितमानस, राजबहादुर लमगोड़ा, रामवन सतना, १९४४।
१४७. विचार और वितर्क, हजारी प्रसाद द्विवेदी, १९६१।
१४८. वाङ्मय विमर्श, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।
१४९. बाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, विद्या मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, १९६३।
१५०. विनयपत्रिका, तुलसीदास, गीताप्रेस।
१५१. वैराग्य संदीपनी, तुलसीदास, गीताप्रेस।
१५२. विनय पत्रिका (सिद्धांत तिलक), श्री कांतशरण, अयोध्या।
१५३. श्री रामचरितमानस की भूमिका, रामदास गौड़, कलकत्ता, तुलसी संवत ३०६।
१५४. श्री रामचरितमानस की काव्यकला, डॉ० हरिहरनाथ हुक्कू, आगरा, १९७३।
१५५. साहित्यालाप, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पटना, १९२९।
१५६. साहित्य-सरिता, सं० प्रो० शिवपूजन सहाय, पटना, सं० २००१।
१५७. साहित्य-दर्पण, आचार्य विश्वनाथ।

१५८. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, काशी, १९५३।
१५९. सूर साहित्य का छंद: शास्त्रीय अध्ययन, डॉ० शंकर मिश्र, इलाहाबाद, १९६९।
१६०. साहित्यालोचन, श्यामसुन्दर दास, प्रयाग, १९५६।
१६१. सिद्धान्त और अध्ययन, डॉ० गुलाब राय, दिल्ली, सं० २०१७।
१६२. सुवृत्त तिलक, आचार्य क्षेमेन्द्र।
१६३. संधिनी, महादेवी वर्मा, इलाहाबाद, १९७०।
१६४. सूर साहित्य, हजारी प्रसाद द्विवेदी, १९६१।
१६५. साहित्यान्वेषण, विनयमोहन शर्मा, देहरादून, १९६९।
१६६. साहित्य सम्राट तुलसीदास, गंगाधर मिश्र।
१६७. सूर की भाषा, डॉ० प्रेम नारायण टंडन, लखनऊ, १९५७।
१६८. हिन्दी शब्दानुशासन, पं० किशोरीदास वाजपेयी, काशी, सं० २०२३।
१६९. हिन्दी व्याकरण, श्री कामता प्रसाद गुप्त।
१७०. हिन्दी-साहित्य : बीसवीं शताब्दी, नंददुलारे वाजपेयी, इलाहाबाद, १९६३।
१७१. हिन्दी सिमेंटिक्स, डा० हरदेव बाहरी, इलाहाबाद, १९५९।
१७२. हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग—२, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, काशी, सं० २०१७।
१७३. हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, १९६९।
१७४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० राजकुमार वर्मा, इलाहाबाद, १९७१।
१७५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, सं० २००६।
१७६. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ० गणपतिचंद्र गुप्त।
१७७. हिन्दी साहित्यकोश, काशी, स० २०२०।
१७८. हिन्दी के मध्यकालीन खडकाव्य, डॉ० सियाराम तिवारी, दिल्ली, १९६४।
१७९. हिन्दी साहित्य, हजारीप्रसाद द्विवेदी, दिल्ली, १९५२।
१८०. हिन्दी साहित्य-आलोचना ग्रंथ-सूची, सं० यशपाल महाजन, दिल्ली, १९७१।
१८१. हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्य का विकास, डॉ० के० के० शर्मा, भोपाल १९७०।
१८२. हिन्दी की छायावादी कविता का कला-विधान, डॉ० बलवीरसिंह, दिल्ली, १९६४।
१८३. हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक-तत्व, रवीन्द्र 'भ्रमर', दिल्ली, १९६५।
१८४. हनुमान बाहुक, तुलसीदास, श्रीकांतशरण, अयोध्या।
१८५. हिन्दी-साहित्य, धर्मवीर भारती, इलाहाबाद।
१८६. हिन्दी नवरत्न, मिश्रबंधु, चतुर्थ संस्करण।
१८७. हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, विश्वंभरनाथ, प्रथम संस्करण।
१८८. हिन्दी नीतिकाव्य, भोलानाथ तिवारी, आगरा।

१८६. हिन्दी नीतिकाव्य का विकास, रामस्वरूप शास्त्री, आगरा।
१९०. हिन्दू संस्कार, चंद्रबली पांडेय, काशी।

पत्र-पत्रिकाएं

१. हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, सं० माताप्रसाद गुप्त, १९६०।
२. सरस्वती, महावीर प्रसाद द्विवेदी, काशी, १९०५, १९४३।
३. केशवदास की छंदोयोजना, भागलपुर विश्वविद्यालय पत्रिका, १९७२।
४. आजकल, अक्टूबर, १९५६।
५. युगप्रभात, केरल, १९७२।
६. मानस मणि, रामवन, सतना (१९५६ से अब तक)।
७. मानस संदेश, उत्तर प्रदेश, १९७१-७२।
८. सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग।
९. वीणा, हिं० सा० स०, इन्दौर।
१०. माधुरी, १९५०।
११. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी।
१२. तुलसीदल : मानस प्रेस, भोपाल।
१३. कल्याण, रामायणांक, हिन्दू संस्कृत अंक।
१४. इंडियन ऐंटिक्वेरी, १८९३।
१५. जर्नल ऑव रोवायल एशियाटिक सोसाइटी (१९०३, १९०७, १३, ३५)।
१६ ए स्केच ऑव हिन्दी लिटरेचर, सोसाइटी, बंगाल, १९१८।
१७. दि रामायण ऑव तुलसीदास, एफ० एस० ग्राउज, सोसाइटी, बंगाल, १९१८।
१८. आलोचना : इतिहास विशेषांक, सं० शिवदानसिंह चौहान, दिल्ली।
१९. परिषद् पत्रिका, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना (१९५८ से १९७३ तक)
२०. विश्वभारती, शांति निकेतन, पं० बंगाल (१९६० से १९७२ तक)

अंग्रेजी पुस्तकें

१. एन आउटलाइन ऑव दि रेलिजियस लिटरेचर ऑव इंडिया, जे० एन० फरवहार, १९२८।
२. ए हिस्ट्री ऑव हिंदी लिटरेचर, एफ० ई० की०, १९२०।
३. ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, वरदाचारी, इलाहाबाद।
४. ए हिस्ट्री ऑव मोडर्न क्रिटिसिज्म, रेनेवेलेक, लंदन, १९६१।
५. एप्रिशियेसन्स, ए हिस्ट्री ऑव मोडर्न क्रिटिसिज्म, लदन, १९६१।
६. ए स्टडी ऑव लिटरेचर, हडसन।
७. ए मिडसमर नाइट्स ड्रीम, विलियम शेक्सपियर, लंदन, १९६०।
८. वायोग्रेफिया लिटरेरिया, कॉलरिज।

९. भोज ज शृंगार प्रकाश, डा० वी० राघवन, मद्रास, १९६३ ।
१०. कनवेंशन ऐंड रिवोल्ट इन पोइट्री, जॉन लिविंग्स्टन लोवेस, लंदन, १९३८ ।
११. कॉमन प्रिंसिपुल्स इन साइकोलोजी ऐंड फियोलोजी, पी०टी० मेकैंडी, प्रथम सं० ।
१२. कोलेक्टेड एस्सेज इन लिटररी क्रिटिसिज्म, हर्बर्ट रीड, लंदन, १९५० ।
१३. डिक्शनरी ऑव वर्ल्ड लिटररी टर्म्स, टी० शिप्ले, लंदन, १९५५ ।
१४. डिसकवरिंग पोयट्री, एलिजाबेथ ड्रिस, न्यूयार्क, १९३३ ।
१५. इंग्लिश प्रोज स्टाइल, हर्बर्टरीड, बोस्टन, १९६३ ।
१६. एक्सपीरियंस इन्टु वर्ड्स, बी० डब्ल्यू हार्डिंग, लंदन, १९६३ ।
१७. इनसाइक्लोपीडिया ऑव रेलिजन ऐंड एथिक्स, ए०जी० ग्रियर्सन ।
१८. इलुजन ऐंड रियलिटी, कॉडवेल, दिल्ली, १९५६ ।
१९. इवोल्यूशन ऑव अवधी, डॉ० बाबूराम सक्सेना ।
२०. एपिक ऐंड रोमांस, डब्ल्यू० पी० करके ।
२१. एंग्लिश एपिक ऐंड हीरोइक पोइट्री, मैकनील डिक्शन, १९२१ ।
२२. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, वोल्यूम २१ ।
२३. फ्रॉम वर्जिल टु मिल्टन, सी० एम० बावरा, लंदन, १९६९ ।
२४. फोर्म्स इन मोडर्न पोयट्री, हर्बर्ट रीड, लंदन, १९५७ ।
२५. फंडामेंटल्स ऑव इंडियन आर्ट, दास गुप्त ।
२६. गोसाई तुलसीदास का जीवन-चरित्र, एडबिल ग्रीब्स काशी, १८९९ ।
२७. हाइवेज ऐंड वाइवेज ऑव लिटररी क्रिटिसिज्म इन संस्कृत, म० म० कुप्पू स्वामी शास्त्री, मद्रास, १९४५ ।
२८. हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, ए० बी० कीथ, लंदन, १९६१ ।
२९. ह्वाट इज लिटरेचर, जीन पॉल सार्त्र ।
३०. इंडो आर्यन, वोल्यूम, २ ।
३१. इन दि प्रोब्लेम ऑव स्टाइल, मिड्लटन मरी ।
३२. एन इन्ट्रडक्शन ऑव दि स्टडी ऑव लिटरेचर, हडसन ।
३३. लिटरेचर ऐंड फिलोस्फी, एफ० एम० ल्यूकस ।
३४. लिटररी क्रिटिसिज्म, ए शॉर्ट हिस्ट्री; विलियम के० विमसैत, जॉर्ज एवं क्लिमेंथ बुक्स, कलकत्ता, १९६७ ।
३५. लिंग्स्टिक सर्वे ऑव इंडिया, ग्रियर्सन, वोल्यूम ६ ।
३६. लिंग्स्टिक ऐंड लिटररी स्टाइल, डोनाल्ड सी० फ्रीमेन, न्यूयार्क, १९७० ।
३७. मोडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिंदुस्तान, एफ० एस० ग्राउज, कानपुर, १८८० ।
३८. मेकर्स ऑव लिटररी क्रिटिसिज्म, वी० राजन ऐंड ए० जी० जॉर्न, १९६५ ।
३९. मिस्टीसिज्म, ई० अंडरहिल ।
४०. न्यू विर्यारिंग्स इन इंग्लिश पोयट्री, एफ० आर० लेविस, १९६३ ।
४१. ऑन दि आर्ट ऑव पोयट्री, अरस्तू, पेंडिबन बुक्स, १९६५ ।

४२. ऑल फ्लावर्टस् मैनर एप्रिशियेसंस, जी० डी० मोमासां।
४३. ऑन दि वैदिक मिटर, गेटे।
४४. ऑन दि आर्टस ऑव पोयट्री, होरेस।
४५. पोयट्री ऑव दिस एज, जे० एम० कोहेन।
४६. पोयट्रीज ऐंड साइंसेज, आई० ए० रिचर्ड्स, न्यूयार्क, १९७०।
४७. पर्सनैलिटी : ए साइकोलोजिकल इंटरप्रेटेशन, जी० डब्ल्यू० आलपोर्ट, प्र० सं०।
४८. प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म, आई० ए० रिचर्ड्स।
४९. प्रिंस्पुल्स ऑव लिटररी क्रिटिसिज्म, आई० ए० रिचर्डस्।
५०. पोयटिक्स, अरस्तू, सं० टी० ए० माक्सन, १९४९।
५१. रेटरिक ऐंड पोयटिक ड्रामा, टी० एस० इलियट, १९२०।
५२. स्टाइल, वाल्टर रेले, लंदन, १९२९।
५३. संस्कृत पोयटिक्स, कृष्ण चैतन्य, बम्बई, १९६५।
५४. सिंबॅल्स ऐंड वैल्यूज, आर्नल्ड हाउसर।
५५. दि रामायण ऑव तुलसीदास, एफ० एस० ग्राउज, कानपुर, १८८०।
५६. दि डायर्स हैंड ऐण्ड अदर एस्सेज, डब्ल्यू० एच० ओडेन, न्यूयार्क, १९६२।
५७. दि वेल रोट अर्न, विलपेंथ बुक्स, लंदन, १९६०।
५८. दि वर्ल्ड ऑव पोयट्री, जान लिविंग्स्टन लोवेल, लंदन, १९५९।
५९. दि मिराकिल ऑव लैंग्वेज, न्यूयार्क, पंचम संस्करण।
६०. दि स्ट्रक्चर ऑव पोयट्री, एलिजाबेथ स्वेल, लंदन, १९६२।
६१. दि स्ट्रक्चर ऑव पोयट्री, रोबर्ट मिलर ऐंड यान क्युरी, लंदन, १९७०।
६२. दि लैंग्वेज ऑव लिटरेचर, लोठार लुत्से का निबन्ध।
६३. दि यूज ऑव पोयट्री ऐंड दि यूज ऑव क्रिटिसिज्म, टी० एस० इलियट, फेबर वेवर कबर्ड एडिसन।
६४. दि एपिक, एबर क्राम्बी।
६५. दि एनेटोमी ऑव पोयट्री, मार्जोरी वाउल्टन, लंदन, १९५९।
६६. दि पोयटिक एमेज, सी० डी० लेविस, लंदन, १९५८।
६७. दि लिटररी सिंबॅल, वेबस्टर।
६८. दि वर्ल्ड ऑव पोयट्री, क्लाइव सैंसम, लंदन, १९५९।
६९. दि इमेजरी ऑव कीट्स ऐंड शेली, आर० एच० फोगल।
७०. दि अनकंसस, मोर्टन प्रिस, लंदन, प्रथम संस्करण।
७१. दि रेलिजन ऑव एन आर्टिस्ट, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, लंदन, १९५२।
७२. दि प्रोलोग टु दि रामायण ऑव तुलसीदास, एफ० एस० ग्राउज, जे० आर० ए० एस०, बंगाल, १८७६।
७३. दि रामायण ऑव तुलसीदास, ए० जी० एटीकंस, दिल्ली, १९५५।
७४. दि वे ऑव सालवेशन इन दि रामायण ऑव तुलसीदास, डब्ल्यू० सी० मेक्डूनल, शिकागो, १९२६।

७५. दि फिलास्फी ऑव तुलसीदास, डॉ० रामदत्त भारद्वाज, आगरा, विश्वविद्यालय, १६५३।
७६. दि इंडेक्स बर्बोरम टु तुलसीदास'ज रामायण, सूर्यकांत, १६३७।
७७. दि सिगनिफिकेंस ऑव इंडियन आर्ट, अरबिन्द।
७८. दि फोर्म्स ऑव थिंग्स अन्नोन, हर्बर्ट रीड।
७९. दि फिलोस्फी ऑव मोडर्न आर्ट, हर्बर्ट रीड।
८०. दि मोडर्न मूभमेंट इन आर्ट आर० एच० वीलेंसकी।
८१. दि फ्यूचर ऑव पोयट्री, अरबिंद।
८२. दि फिलामफी ऑव आर्ट हिस्ट्री, आर्नोल्ड हाउसर।
८३. थियोलोजी ऑव तुलसीदास, जे० एन० कारपेंटर, मद्रास, सं० १६१८ वि०।
८४. थ्री एस्सेज फ्रॉम एप्रिसियेशंस, वाल्टर पेटर, लंदन, १६५७।
८५. अंडरस्टैंडिग पोयट्री, क्लियेंथ ब्रुक्स, न्यूयार्क, १६५०।
८६. दि रूडिमेंट्स ऑव क्रिटिसिज्म, ई० ए० ग्रीनिंग लैंबोर्न।
८७. कवितावली, एफ० आर० आलचिन, १६६४।
८८. ए हिस्ट्री ऑव इंडियन फिलोसफी, जे० एन० सिन्हा।
८९. हिन्दू इथिक्स, जे० मेकेंजी।
९०. मीनिंग ऑव गौड इन ह्यूमेन एक्सप्रियंस, होकिंग।